- नानेश वाणी -15
  ऐसे जीए (भाग-1)
- प्रवचनकार आचार्य श्री नानेश
- सम्पादक मुनि ज्ञान
- अक्षय तृतीया, मई 2002, 1100 प्रतिया
- मूल्य 30/-
- अर्थ सहयोगी श्री घेवरचन्दजी काकरिया, गोगोलाव
- प्रकाशक
  श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ,
  समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर
- मुद्रक
  अमित कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिन्टर्स, बीकानेर
  दूरभाष 547073

प्रकाशकीय

हुक्मगच्छ के अष्टमाचार्य युग पुरुष श्री नानेश विश्व की उन विरल विभूतियों मे हैं जिन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से समाज को सम्यक् जीवन जीने की वह राह दिखाई जिस पर चलकर भव्य आत्माएँ अपने कर्मों का क्षय कर मोक्ष की अधिकारिणी बन सकती हैं। यद्यपि आचार्य श्री जी के भौतिक व्यक्तित्व का अवसान हो चुका है तथापि उनके द्वारा चलाये गये विविध अभियानों मे वह सदा ही प्रतिच्छायित होता रहेगा। इस प्रकार उनका वह व्यक्त रूप ही पर्यवसित होकर उस कृतित्व में समाहित हो गया है जो उनके द्वारा विरचित साहित्य के रूप में उपलब्ध है। एक क्रान्तिदर्शी आचार्य का यह प्रदेय साहित्य की वह अनुपम निधि बन गया है जो सासारिक प्राणियों के लिए प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता रहेगा। इस स्तम्भ से विकीर्ण होने वाली प्रकाश रश्मियाँ युगों-युगों तक आलोक धारा प्रवाहित करती रहे, इसके लिए यह आवश्यकता है कि न तो उन साहित्य रश्मियो को क्षीण होने दिया जाये न ही उनकी उपलब्धता बाधित होने दी जाये वरन् आवश्यक यह भी है कि सर्व सामान्यजनो हित उनकी सुलभता सुनिश्चित रखी जाये। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ ने उस अनमोल साहित्यिक धरोहर को **'नानेश वाणी'** पुस्तक श्रृखला के अन्तर्गत प्रकाशित करने का निर्णय किया।

इस सन्दर्भ मे बैंगलोर निवासी सुश्रावक श्री सोहनलालजी सिपाणी ने अर्थ सबधी व्यवस्था में जो सद्प्रयत्न किया, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत कृति पूर्व में ऐसे जीए (भाग-1) नाम से प्रकाशित पुस्तक की नई आवृत्ति है। इसमें कुछ सशोधन परिस्करण भी हुआ है। इस कृति के प्रकाशनार्थ अर्थ प्रदान करने वाले उदारमना सुश्रावक श्री घेवरचन्दजी काकरिया, गोगोलाव के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना भी अपना दायित्व समझता हू।

यद्यपि सम्पादन-प्रकाशन में पूरी सावधानी रखी गई है तथापि कोई भूल रह गई हो तो सुधी पाठकों से निवेदन है कि वे हमें अवगत करायें ताकि आगामी सस्करणों में भूल का परिमार्जन किया जा सके।

निवेदक

शान्तिलाल साड

सयोजक

साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अ भा सा जैन सघ, समता भवन, बीकानेर

अर्थ सहयोगी परिचय

विरल विभूति आचार्य श्री नानेश की प्रस्तुत कृति का प्रकाशन उदारमना, सरलहृदयी, सर्वतोभावेन सघ समर्पित सुश्रावक श्री घेवरचन्दजी काकरिया के अर्थ सौजन्य से हो रहा है। आप स्व आचार्य श्री जी एव वर्तमान शासनेश आचार्य श्री रामलालजी म सा के प्रति अनन्य श्रद्धानिष्ठ है। अपने पितृ श्री स्व श्री झूमरमलजी एव मातुश्री स्व श्रीमती सुगनीदेवी काकरिया, जो पूर्व आचार्य श्री के प्रति अटूट आस्थावान थे और प्राय चातुर्मास के दौरान चौका करके सेवा का लाभ लिया करते थे, से विरासत मे प्राप्त सस्कारो को वृद्धिगत रखा। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कमलादेवी आपको धार्मिक/सामाजिक कार्यो मे सदैव सहयोग प्रदान करती है। आप अपने चार पुत्रो (सर्व श्री अजित कुमारजी, आनन्द कुमार जी, राजकुमारजी एव अनिल कुमार जी) एव चार पौत्रो- अरूण कुमार, रौनक कुमार, निशान्त कुमार एव निखिल कुमार के साथ सयुक्त परिवार मे रह रहे है, जो अनुकरणीय है।

आपकी जन्मभूमि गोगोलाव (नागौर) राजस्थान है और आपने तमकुही रोड, देवरिया (उत्तरप्रदेश) को कर्मभूमि बनाकर प्रतिष्ठा अर्जित की है। वहा व्यापार मडल, गौशाला, सस्कृत पाठशाला आदि सस्थाओ मे सक्रिय भाग लेकर उदारवृत्ति से उन्हे प्रभूत आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया है।

आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री अजित कुमार जी होनहार नवयुवक है जिनकी धर्मपत्नी श्रीमती उषादेवी है। युवावस्था मे ही आपने काफी नाम कमाया है। धार्मिक/सामाजिक क्षेत्रो में आप सक्रिय रूप से भाग लेते है। आप श्री साधुमार्गी जैन सघ, श्री समता युवा सघ, अरिहन्त जैन मडली, हायर परचेज एसो सूरत के उपाध्यक्ष, श्री अ भा सा जैन सघ, बीकानेर के कार्यकारिणी सदस्य, लायन्स क्लब ऑफ सूरत (सिल्क सिटी) के सेक्रेटरी है। आपका मोटर फाइनेन्स का व्यवसाय सूरत एव बडौदा मे है। व्यावसायिक व्यस्तता होते हुए भी आप समाजसेवी सस्थाओ मे सक्रिय भूमिका का निर्वहन करते है, जो श्लाघ्य है।

आप समता भवन ट्रस्ट, सूरत के मुख्य ट्रस्टियो मे से एक है और सघ के ही कार्य मे तन, मन, धन से सदैव तत्पर रहना आपकी विशेषता है। नानेशवाणी क्रमाक 15 के प्रकाशनार्थ प्रदत्त आपका अर्थ सहयोग सराहनीय है। एतदर्थ श्रीसघ की ओर से हार्दिक धन्यवाद।

सूरत

डालचन्द लूणिया

अनुक्रमणिका

1 चातुर्मास स्वय के लिए उपयोगी बने 9

2 जिनवाणी को समझे और स्वीकारें 14

3 ऐसे जीए 22

4 वेग हो सवेग का 27

5 आत्मा ही आत्मा का कर्त्ता और भोक्ता 31

6 वेद हो या निर्वेद का 35

7 परम शान्ति का महाद्वार-सम्यग् दर्शन 39

8 आस्था का सुमेरु 43

9 एकनिष्ट आस्था का चमत्कारिक प्रभाव 47

10 प्रभु के प्रति सर्वात्मना समर्पण हो 51

11 समर्पणा हो नवकार के प्रति 56

सम्यक् दर्शन- जीवन जीने की सुदृढ़ नींव

12 नि शक समर्पणा बने-जिनवाणी पर 61

13 नि शक और नि काक्ष बने 66

14 मूल्याकन करो वर्तमान का 70

15 स्याद्वाद और विचिकित्सा 74

16 सम्यक्तव का चतुर्थ आचार-अमूढ दृष्टि 79

17 उववूह 84

18 यात्रा आगम देश की 92

19 स्थिरीकरण 96

20 स्वधर्मी वात्सल्य 102

21 भौतिकता से हटो-आत्मलक्षी बनो 107

22 प्रभावना 113
23 आराधना और प्रभावना 120
24 स्नात-पवित्र करे आत्मा को ज्ञानालोक से 125

सम्यक् ज्ञान-वैचारिक जीवन जीने की कला

25 कालाचार 131
26 ज्ञान हो पर अनुभूति के साथ 136
27 महाप्रयाण 141
28 मृत्यु ही महोत्सव 145
29 ज्ञान का ज्ञान हो 151
30 विनयाचार-बहुमानाचार 159
31 उपधानाचार 170
32 अनिह्नवाचवार 180
33 व्यजन अर्थ-तदुभय 186

चातुर्मास स्वयं के लिए उपयोगी बने

इस विराट विश्व मे यदि कोई श्रेष्ठतम मार्ग है तो वह है, सम्यकदर्शन ज्ञान चारित्र रूप मोक्ष मार्ग। इस मार्ग पर चलकर आत्मा ऐसे स्थान पर पहुच सकती है जहा वह अनन्त–अनन्त सुख मे तल्लीन हो जाती है। इस मार्ग का अतीव सरस–वर्णन तीर्थकर महापुरुषो ने अपनी अमृतोपम वाचा के माध्यम से किया था। अनन्त उपकारी गणधरो ने उसे सूत्र रूप मे गूथा और वह आचार्यो की परम्परा से सुरक्षित रहा।

आज हमारा अहोभाग्य है कि हमे वही अमूल्य वाणी श्रवण करने को मिल रही है, पर हम सिर्फ उस वाणी के श्रवण तक ही सीमित न रहे, बल्कि गहन चितन मनन की स्थिति से उस आनन्ददायिनी सरिता मे अवगाहन करने की कोशिश करें। शास्त्रे मे जो वाक्यावलिया होती हैं, वे गहन अर्थ से परिपूरित होती हैं। शास्त्रीय शब्दो को याद कर लेना एक बात है और उसके अर्थ में अवगाहन करते हुए अपनी आचरण भूमि को सम्यक बनाना आत्म गुणों मे अपने आपको रमण करना दूसरी बात है।

आनन्द रस प्रवाहिनी वीतराग वाणी का महत्त्व यदि जानना है, तो श्रुति को अनुभूति का रूप प्रदान करे। शास्त्रीय वाक्यार्थ को जीवन मे उतारे। आपने कभी गन्ना चूसा होगा। गन्ना चूसते समय आप रस–रस तो चूस लेते हैं, और निस्सार को फैंक देते हैं। ठीक इसी प्रकार शास्त्र मे हेय, ज्ञेय, उपादेय तीनो ही विषयो का प्रतिपादन होता है। आप ज्ञेय की जानकारी करे हेय को निस्सार समझ कर छोड दे, और उपादेय रूपी मधुर रस को जीवन मे उतार ले, तो आपका जीवन अतीव मधुर बन सकता है।

मिलते रहने चाहिये। माता चाहे तो अपने बालक को कर्ण या भामाशाह बना सकती है। बालक को महावीर या भरत बनाना भी माता के हाथ मे ही है और चूहे की खडखडाहट मे घर छोडकर भाग जाने वाला बुजदिल बनाना भी माता के हाथ मे है। ब्रह्मचर्य के प्रज्ञापुज से दीप्तिमान भीष्म भी उसे माता बना सकती है और रावण बनाना भी उसी के हाथ है। बालक के जीवन पर एक सुशिक्षिता माता जो प्रभाव डाल सकती है, वहा सौ मास्टरो का प्रयास भी उसमे असफल रहेगा। माता का वीरत्व बालक को विश्व विजयी बना सकता है। बन्धुओ ! जो बात मैं आपको बतला रहा था, उस नटखट बालक को दीक्षा देने के लिये कहने वाले पिता को मैंने कहा कि " ऐसे बच्चे को आप हमे देना चाहते हैं ! यह यहा आकर भी क्या करेगा ? कहीं गुस्से मे आकर हमारे पातरे फोड बैठेगा।' तो वह बोला– आप तो उसे सुधार सकते हैं। तो मैंने कहा– सुधार सकते हैं पर कठिनाई यह है कि साधना के लिए तो सबसे पहले स्वभाव मे सौम्यता आना जरूरी है।

साधना मे बढने वाले जिज्ञासुओ को चाहिये कि आज से वे अपनी आत्मासाधना मे विशेष रूप से तल्लीन बन जाय। आत्मा के कर्म कलिमल को प्रक्षालित करने का सुन्दर अवसर प्राप्त हो गया है। सत–सतियो के समागम एव वीर–वाणी का अनवरत प्रवाह पुण्यशाली पुरुषो को ही मिलता है। ऐसे दुर्लभ अवसर को सार्थक बनाना है।

आज चातुर्मासिक पक्खी के प्रसग से सत–सतिया जिन विशेष नियमो मे आबद्ध हो जायेगे, उनका चातुर्मास पर्यन्त पालन करेगे। पक्खी की दृष्टि से आपको यह चितन करना चाहिये कि सत–सती वर्ग तो वर्षा ऋतु के कारण अपनी सारी प्रवृत्तियों मे कितनी यतना बरतते हैं, अपने सयमी जीवन को सुरक्षित रखने के लिये। वहा आप श्रावक–श्राविकाओ को भी "अहिसा, परमोधर्म' का पूरा–पूरा ध्यान रखना चाहिये। रात्रि भोजन करने वाला व्यक्ति कभी–कभी अपने जीवन को भी समाप्त कर देता है। अत रात्रि भोजन नहीं करना चाहिये। कच्चा पानी, जिसके अदर सात प्रकार के जीवो की नियमा बताई है। वे सात प्रकार के जीव ये हैं– पानी का मूल जीव, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पचेन्द्रिय, लीलन फूलन के जीव तथा समुच्चय के जीव। अत पीने के प्रसग से कच्चा पानी चातुर्मास मे काम मे नही लाना चाहिये। धोवन पानी पिये जो हर क्षेत्र मे सुलभता से मिल सकता है। सिर्फ विवेक रखने की आवश्यकता है। सचित पदार्थो का भी बनती कोशिश त्याग करना चाहिये। इस चातुर्मासिक अवधि मे ब्रह्मचर्य व्रत का सद् अनुष्ठान जीवन मे अपनाना चाहिये तथा परिग्रह वृत्ति का सकोच करना चाहिये। पुद्‌गलो से

ममता हटाकर आत्मोन्मुखी बने। क्रोधादि चार कषाय, अनन्त ससार वर्धक हैं। शास्त्रकारों ने कहा है–

"सिचन्ति मूलाइ पुणअब्भवस्स"

ये कषाय भव–भवान्तरो के मूल का सिचन करने वाले हैं। इनको जितनी मात्र मे जीतने का प्रयास करेगे, उतनी ही आत्मिक शक्तियो का अभिवर्धन होगा। बनती कोशिश असत्य वचनो का प्रयोग नही करना। किसी को धोखा नहीं देना। अपनी श्रद्धा कैसी है, इसका विचार करना और सुश्रद्धा को मजबूत बनाना। इन चन्द बातो को आप चिन्तन मनन के साथ आत्मलक्ष्यी बनकर जीवन में अपनावे तो आपके लिए चातुर्मास की सार्थकता सिद्ध होगी।

चातुर्मास काल मे साधु–साध्वी वर्ग के एक स्थान पर रहने का यही उद्देश्य है कि जीवो की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए आत्म आराधना मे तन्मय बनकर आध्यात्मिक जीवन की साधना सम्यकरूपेण कर सके। आध्यात्मिक जीवन की धार्मिक खेती को पनपाने का यह सौम्य प्रसग है। आध्यात्मिक जीवन की खेती अच्छी तरह करने के लिये आप कटिबद्ध बन जाय। चाहे कोई आपको कितना ही उत्तेजित करे, पर आप अपने क्षमा गुण से विचलित न होवे। चाटे का उत्तर चाटे से नही देवे। यह बात आपके जीवन को आदर्शमय बनाने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। रतलाम मे चातुर्मास का प्रसग आया। वहा सुनने को मिला कि व्याख्यान मडप मे व्यवस्था करने वाले भाई कन्हैयालालजी सा बोथरा के एक भाई ने आवेश मे आकर भरी सभा के बीच चाटा मार दिया। हालाकि वे स्वय स्वभाव के तेज बतलाते हैं, पर आध्यात्मिक वायु मडल का अनुपम प्रभाव कि उन्होने किसी भी रूप से कुछ भी प्रतिकार नहीं करते हुए हाथ जोडकर अपने क्षमा गुण का परिचय दिया। जीवन को सही ढग से जीने के लिये इस क्षमा को अपनावे।

बन्धुओ। क्षमा से बढकर अपेक्षा से कोई तप नहीं है। आप अन्य कुछ भी नहीं कर सके तो कम–से–कम क्षमावृत्ति का अधिकाधिक अपने जीवन मे विकास करने का लक्ष्य बनावे। क्रोध का निमित्त उपस्थित होने पर क्षमा के गुणो का चितन करने से क्रोध का निग्रह हो सकता है। क्षमा अमृत की धारा है जो क्रोध के विष को समाप्त कर देती है। अन्त करण को शाति से आप्लावित कर देती है। हमारी चित्तवृत्तियो को स्वस्थ बनाये रखती है। अत इस गरिमामय चातुर्मासिक अवधि को क्षमा–गुण के विकास के साथ सफल बनावे, इन्हीं मगलमय शुभ भावनाओ के साथ–

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

चातुर्मासिक चतुर्दशी
1785, सोमवार

तत्त्वो को नही जानता है, किन्तु उसको "तचेव सच्च नीशकज जिणेहि पवेयय' जो जिनेश्वर देव ने कहा है, वह सत्य है। जिनेश्वर भगवन्तो के वचन अन्यथा कदापि नही होते, ऐसी दृढ आस्था जिसको प्राप्त है, उसका सम्यक्त्व निश्चल है।

जो आत्मा अन्तर्मुहर्त भाव के लिए भी सम्यक्त्व का स्पर्श कर लेती है। उसका अनन्त ससार परिभ्रमण परिमित हो जाता है, अपार्ध पुद्गल परावर्तन से अधिक वह ससार मे परिभ्रमण नही करता, उसकी मुक्ति सुनिश्चित हो जाती है।

इस महिमामय सम्यक्त्व का प्रथम लक्षण "सम" है। जो गुण सम्यग्दृष्टि आत्मा मे अवश्य पाये जाते हैं, वे गुण सम्यक्त्व के लक्षण कहलाते हैं। सम्यग्दृष्टि आत्मा ' आत्मवत् सर्वभूतेषु" की दृष्टि को अपने जीवन मे प्रमुख रूप से स्थान देकर चलती है। वह यह मानती है कि जैसे सुख दु ख की अनुभूतियो का मैं अनुभव कर रहा हू वैसे ही सभी ससारी आत्माए सुख दु ख की अनुभूतिया करती हैं। अत जो दूसरो का व्यवहार मुझे अपने लिए अच्छा नही लगता है, वैसा व्यवहार मैं अन्यो के साथ कभी नही करू। 'सम' लक्षण जब अन्तर चेतना मे विकसित हो जाता है तो जीवन समुज्ज्वल बनते कोई देरी नही लगती।

सम्यक्त्व का दूसरा लक्षण है ' सवेग' जिसका तात्पर्य है, सम पूर्वक वेग अर्थात् गति। अपने जीवन की गति को सौम्य बनाना चाहते हैं तो सर्वप्रथम अपने जीवन मे समता भावो का सृजन करे। मन ड्राईवर है, शरीर रूपी गाडी हाकने के लिये। मन से गति हो रही है, पर यह विचारना है कि मन की यह गति समभाव से हो रही है या विषम भाव से हो रही है ?

जब मे सवाईमाधोपुर मे गया, वहा लगभव सवा सौ घर थे। बहुत से सामायिक, पौषध वगेरह हुए। व्याख्यान के प्रसग से मेंने जब वहा 'सम' शब्द की व्याख्या की तब एक परिवार मे देवरानी जेठानी के बीच झगडा हो रहा था। मेरे कहने से भाई तो परस्पर झगडा समाप्त करने के लिए तैयार थे, पर उनकी पत्निया सहमत नही हो रही थीं। जब मैंने उन बहिनो को समझाया तब जेठानी ने कहा कि मे तेले की, अठाई की तपस्या कर सकती हू, पर देवरानी के घर नही जाऊगी। तब मेंने समझाया कि तुम तेला क्या मासखमण भी करलो, परन्तु जब तक प्रत्येक आत्मा को अपनी आत्मा के समान देखने की भावना व सम्यक्त्व का भाव नहीं बनेगा, तब तक तुम्हारी तपस्या का

विशेष कुछ भी फल नही मिलने वाला है। उत्तराध्ययन' सूत्र मे प्रभु महावीर ने बताया है कि–

" मासे मासे जो बालो, कुसग्गेण तुभुजई।

न सो सुयक्खाय धम्मरस, कल अग्घइ सोलसि।।'

अर्थात् जो बालक अर्थात् अज्ञानी जीव प्रति मास तपश्चर्या करके पारणे मे कुशाग्र–मात्र आहार करता है, वह तीर्थकर देव के कहे हुए सुविख्यात धर्म की सौलहवीं कला को भी प्राप्त नही होता है।

सम्यक्त्व विहीन तपस्या का कुछ भी महत्त्व नहीं है और समभाव की सर्जना के बिना सम्यक्त्व की स्थिति जीवन मे नहीं रह पाती है। यह सुनकर वह बहिन जल्दी से सरल भावो के साथ सारा झगडा समेट लेती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक समभाव की वृत्ति जीवन मे नही आयेगी, तब तक सम्यक वेग की स्थिति भी जीवन में प्राप्त नहीं कर सकोगे। आत्म–शक्ति, जो तीन योग मे सम्बन्धित है। जब मन, वचन और काया मे सम्यक वेग आ जाएगा तो आत्म–शक्ति की अनूठी अपूर्व उपलब्धि हो जायेगी। मिथ्यात्व को जड मूल से उखाडने के लिए सवेग अति आवश्यक है। विभाव वृत्तियो से जितनी विषमता जीवन मे व्याप्त है, उसे स्वभाव वृत्तियो मे आकर समता मे बदलने का यह दुर्लभ मनुष्य जन्म का भव्य प्रसग मिला है।

जिसमे ज्ञान नही उपयोग नही वह जड तत्त्व है। जो जड है, उसमे चेतना नहीं होने से राग–द्वेषादि कुछ भी वृत्तिया नही होती हैं। राग–द्वेष सकल्प–विकल्प की स्थितिया चैतन्य में बनती हैं। वह चैतन्य अपने–अपने निज स्वरूप को छोडकर राग–द्वेषादि विभाव वृत्तियो मे बह रहा है। उसे विभाव से हटाकर स्वभाव मे लाना है। जब आत्मा स्वरूप मे पूर्ण विकसित हो जाती है, अर्थात् वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन जाती है, उस अवस्था मे, उसमे राग–द्वेष नहीं रहते हैं। वह चेतना राग–द्वेष रहित बन जाती है। वर्तमान में इस ससार मे रह रहे व्यक्ति बध से जकडे हुए हैं और दु ख भोग रहे हैं।

यह चतुर्गति रूप ससार एक तरह से जेल ही है। जहा यह जीवात्मा कर्म बेडियो मे बधी विविध यातनाए सहन कर रही है। पर आज भौतिक–ऐश्वर्य–विलास को प्राप्त मानव कहा मान रहा है कि मैं जेल मे हू । यही अनन्त शक्तिमय आत्मस्वरूप से अनभिज्ञ बन राग–द्वेष आदि वृत्तियो को विकसित करता हुआ इस पवित्र आत्मा को ससार रूपी जेल मे लम्बी स्थिति तक रखने का कार्य कर रहा है। यह मानकर चलिये कि राग द्वेष,

आसक्ति, मोह आदि-आदि जो आत्मा को मलिन बनाने वाली विभाव-वृत्तिया हैं, उनसे यह आत्मा जितनी-जितनी परे हटती है- उतनी-उतनी अपने निजी आनन्दमय स्वरूप की अभिव्यक्ति प्राप्त करती है। जितनी-जितनी त्याग वृत्ति जीवन मे पनपती है, उतनी-उतनी बधन से आत्मा मुक्त होती है।

तपश्चर्या शरीर से ममत्व हटाने पर ही हो सकती है। जब तक शरीर पर मूर्छा भाव है, तब तक आप तपश्चर्या मे अपना कदम आगे नही बढा सकोगे। आज कई व्यक्ति स्वय तो आसक्ति को नही छोडते पर जो अन्य आसक्ति छोडकर तपोमार्ग मे आगे बढना चाहते हैं, उसमे भी बाधक बनते हैं। मैं आपसे यही कहना चाहूगा कि आप तपस्या न भी कर सके तो कोई बात नही, पर अन्य-अन्य भी बहुत-सी ऐसी बाते हैं, जिनसे आसक्ति हटाकर अपनी आत्मा को कर्म से हल्का बना सकते हैं। जैसे व्याख्यान स्थल मे हो तो जमीन की आसक्ति को छोडे। स्वधर्मी अन्य भाइयो को भी बैठने का बराबर स्थान देवे। किसी के द्वारा धक्का लग जाय तो क्षमा गुण प्रगट करे।

आज के लोग, किसको महत्त्व दे रहे हैं, भौतिक सम्पत्ति को या आध्यात्मिक सम्पत्ति को ? पैसो का मूल्याकन करना है, अथवा भगवान् की आज्ञा का मूल्याकन करना है ? यदि आज आपके आमदनी ज्यादा होने वाली है ओर आप धार्मिक स्थल मे आने के समय मे अर्थात् व्याख्यान मे आने के समय मे भी दुकान मे बैठे हो तो किसका आप मूल्याकन कर रहे हैं- पैसो का या आत्मिक भाव की आराधना का ? आपकी आत्मा ऐसी वीर बन जाय कि पैसो से, भौतिकता से, आसक्ति छोड सवेग की स्थिति से मोक्ष प्राप्ति के तीव्र अभिलाषी बन कर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो जाय।

आत्म रमण रूप सामायिक का महत्त्व भी समझे। आपको ज्ञात होगा कि जब राजा श्रेणिक ने पूर्व निबद्ध नरक के आयुष्य को विफल करने का उपाय पूछा तब भगवान ने कहा कि यदि तुम श्रमणोपासक पूणिया श्रावक की एक सामायिक खरीद सको तो नरक से अपना बचाव कर सकते हो। दूसरे दिन प्रातःकाल ही राजा श्रेणिक पूणिया श्रावक के आगन मे पहुचा। राजा का बिना किसी कारण ओर बिना निमन्त्रण अपने आगन मे देख पूणिया श्रावक हर्ष विभोर हो उठा। प्रसन्नता के साथ राजा के आगमन को प्रश्न-चिन्ह बनाये खडा रहा। पूणिया श्रावक की प्रश्नायित आखो पर गौरव ओर याचना भरी एक निगाह डालते हुए श्रेणिक महाराज ने पूछा- 'क्या तुम प्रतिदिन सामायिक करते हो ? पूणिया श्रावक ने प्रत्युत्तर दिया- हा, राजन ! सामायिक मेरी जीवनयात्रा का प्रथम चरण है।

तब श्रेणिक महाराज ने कहा–तुमने तो बहुत सामायिके की हैं और कर रहे हो। क्या तुम मुझे अपनी एक सामायिक दे सकते हो ? यह सुनकर पूणिया श्रावक कहने लगा– स्वामिन् । मेरे पास जो कुछ है वह आपका ही है। मैं आपके किसी काम आ सकू तो उससे बढकर और क्या बात होगी और जब श्रेणिक महाराज एव पूणिया श्रावक लेने देने के लिए तत्पर हो गये तब भगवान् महावीर से सामायिक की कीमत पूछी, तो भगवान ने फरमाया कि–राजन् । तुम्हारे भण्डार में कितनी सम्पत्ति है ? सम्राट ने उत्तर दिया– भगवान् । बावन डूगरिया खडी हो जाय इतनी सम्पत्ति है। तब भगवान् ने कहा कि राजन् । आपकी यह सम्पत्ति तो पूणिया श्रावक की सामायिक की दलाली के लिये भी पर्याप्त नहीं है तो फिर सामायिक का मूल्य कहा से दोगे ?

बन्धुओ । सामायिक की दलाली का महत्त्व तो आप समझ ही गये होगे, तो फिर विचार करिये कि सामायिक का कितना क्या महत्त्व है ? आप स्वय अनुमान लगा सकते हैं। आप सामायिक की आराधना करते हुए वीतराग वाणी का श्रवण करे और इस बात का ज्ञान करे कि भगवान् की किस विषय मे क्या–क्या आज्ञाए हैं और उसका मूल्याकन कितना कर रहे हैं ?

भगवान ने 'स्थानाग' सूत्र मे बताया है कि सयमी वस्त्र क्यो रखता है ? इसके तीन कारण हैं, जैसा कि इस विषयक मूल पाठ है–

"तिहिं ठाणेहि वत्थ घरेज्जा, तजहा हिरिवत्तिय,

दुगुछावत्तिय परिसहवत्तिय"

अर्थात् तीन कारणो से साधु–साध्वी वस्त्र को धारण करे जैसे– लज्जा के कारण, लोग जुगुप्सा न करे इसलिए तथा शीत आदि परिषहो को रोकने के लिये। (स्थानाग सूत्र, तीसरा स्थान, तीसरा उद्देशक)।

बन्धुओ । साधु जो वस्त्र ग्रहण करता है, उसमे मैल तो हो ही जाता है, और यदि उसमे जू पड जाय तो उसकी सुरक्षा करना, खून पिलाना इत्यादि सारी यातना की वृत्ति भगवान् ने बताई है, पर जू आदि न पडे इसके लिये वस्त्र धोवन का वह वस्त्र किन पात्रे मे धोये इसके लिए साधु को विवेक बताया है। साधु को वस्त्र लेने के तीन कारणो मे से एक कारण–न दुगुछा यानी जुगुप्सा न करे यह भी बतलाया है। जब जुगुप्सा मिटाने के लिए वस्त्र का विधान प्रभु ने किया तो जो वस्त्र पहना जा रहा हो यदि वह इतना मलिन एव दुर्गन्धमय हो जाय कि जिससे जूए पडने लग जाय। प्रथम महाव्रत मे दोष का प्रसग आ जाय लोग दुगुछा करने लगे तो फिर क्या यह भगवान्

की आज्ञा होगी ? नही। अत वस्त्र भी ऐसा हो कि न लोग दुगुछा करे और न ही वह चाक चिक्य से युक्त हो। ऐसा वस्त्र पहनना भगवान् की आज्ञा मे है। इस आज्ञा को पालने के लिए यदि वस्त्र इतना मलिन हो रहा हो कि उसमे फूलन या जूए पडने की सम्भावना है तो साधु विवेक के साथ उसे ध ो ले ताकि प्रथम महाव्रत की, सूरक्षापूर्वक भगवान् की आज्ञा का भी पालन हो जाय।

महाप्रभु ने साधु को तीन तरह के पात्र रखने का भी विधान किया है–

"कप्पइ णिग्गथाणं वा, णिग्गथीण वा तओ पत्याइ, धारित्तए वा, परिहरित्तए वा, तजहा लाडयपाए वा दारुयपाए वा महियापाए वा।।"

अर्थात् साधु और साध्वियो को तुम्बी के, काष्ठ के ओर मिट्टी के बने हुए तीन प्रकार के पात्रे को ही ग्रहण करना और उनका उपयोग करना कल्पता है। –(स्थानाग सूत्र, तीसरा स्थान, तीसरा उद्देशक)

अत मिट्टी का बर्तन जो पुराना है, गृहस्थो के अब काम का नही है, उसे लेकर, वस्त्र धोवन योग्य बना कर उसमे साधु यदि विवेक के साथ वस्त्र धोता है, तो वह भगवान् की आज्ञा की आराधना करता है।

यह तो आपको जानकारी के लिए साधु जीवन सम्बन्धी बात भी बतला गया हू। अगर आप लोगो को पूर्ण आत्म–प्रकाश उजागर करना है तो जैसे–आप लोग शरीर की बाह्य मिट्टी को हटाने के लिए स्नान करते हो, साबुन लगाते हो, उसी प्रकार आत्मा को साफ करने के लिए सामायिक का स्नान करिये। ध्यान का साबुन लगाइये। यह स्नान महत्त्वपूर्ण है। इससे आपको आत्मा की उज्ज्वलता प्राप्त हो सकती है। आप यह हर समय ध्यान रखे कि मैं इस प्रकार के चिन्तन के साथ सम्यक् श्रद्धा मे मजबूत रहते हुए जितना तप, त्याग, तिविहार, चौविहार, सामायिक, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, ध्यान कर सकू, करू। इस प्रकार करने से आत्मा पवित्र और जीवन सफल बनेगा।

बन्धन से मुक्त होने के लिए स्वदार–मर्यादा और परदार का त्याग एव परिग्रह वृत्ति को सकुचित करिये। सम्पत्ति की मर्यादा कर विवेकपूर्वक उस प्रतिज्ञा की परिपालना करना। कषाय पतला करने मे यत्नशील रहना, दान, शील, तप भावना मे अधिक से अधिक अपनी आत्मा को जोडना उत्तेजना वाचक शब्दो को सुनकर भी क्षमाशील बन क्षमा गुण का विकास करना आत्म

पोषक है। इसके लिए विशेष रूप से आप सभी को चेतावनी है।

चातुर्मास काल मे प्रत्येक भाई–बहिनो को अत्यधिक उदारता का व्यवहार करना चाहिये। मेघकुमार के पूर्व भव का जीव हाथी, शशक का उदाहरण समक्ष रखकर हर आत्मा को साता पहुचाये। ज्ञान, दर्शन चारित्र की वृद्धि के लिए चातुर्मास काल प्रारम्भ हो चुका है अत रत्नत्रय की आराधना मे सलग्न हो जाये।

प्रत्येक आत्मा निश्चय और व्यवहार दोनो नयो को सम्बन्धित करके अपनी आत्मोन्नति का लक्ष्य प्रमुख रूप से निर्धारित कर वीतराग भगवान् की आज्ञा की आराधना करेगी तो अवश्यमेव उस आत्मा के लिए वर्षावास के ये दिन सार्थक बनेगे।

मोटा उपाश्रय — 2 7 85

घाटकोपर, बम्बई — मगलवार

3

ऐसे जीये

जिन आत्माओ ने, अनादि अनन्त कारण से आ रहे कर्मप्रवाह को अपुनर्भाव से व्यवच्छिन्न कर दिया है विभाव मे भटक रही आत्मा के स्वभाव को अभिव्यक्त कर दिया है, चेतना का भौतिक स्वरूप प्रकट कर दिया है, जिनके ज्ञान मे लोकालोक हस्तामलकवत् स्पष्ट परिलक्षित होते हैं, जिनके किसी भी प्रकार का राग–द्वेष अवशेष नही रहा है, मोह की दूर्भेद जडो को जिन्होने जड मूल से उखाडकर फैंक दिया है, विचारो के प्रवाह को सर्वथा रूप से सशोधित कर दिया है, ऐसी वीतराग दशा प्राप्त आत्मा को, भव्यात्माओ को प्रति समय स्मरण करते रहना चाहिये।

यह स्पष्ट सत्य है कि जिसका आकार मन मे बसाया जाता है, वह आदमी भी एक दिन उसी रूप मे बन सकता है। जिस प्रकार दर्पण के सामने जैसा बिम्ब होगा वैसा ही उसमे प्रतिबिम्ब पडता है। यदि सामने राक्षस का बिम्ब होगा तो दर्पण मे भी राक्षस का ही प्रतिबिम्ब पडेगा। इसी प्रकार जिस व्यक्ति का मन जिसके प्रति सर्वथा रूप से अनुरक्त होता है तो उससे उस व्यक्ति की आत्मा प्रभावित हुए बिना नही रहती है। ध्यान साधना का महत्त्व भी इसलिए है कि जिस साध्य को हमे पाना है उसका मन मे ध्यान किया जाय, मन को वह साध्य पाने के लिए मजबूत किया जाय। यदि मन उस साध्य को पाने के लिए मजबूत हो जाता है तो आत्मा की शक्ति मन से प्रवाहित हो मजबूत होकर वचन और काया मे भी परिणत होने लग जाती है। इसका आप व्यावहारिक अनुभव कर सकते हैं। कोई भी कार्य यदि आपको करना है तो उसका नक्शा पहले मन मे तैयार होगा। जब मन मे अच्छी तरह नक्शा जम जायेगा, तभी अस्खलित रूप से, उसी मन के विचारो के अनुरूप वचन का प्रयोग होगा और वही काया मे भी परिणित होने लगेगा।

जब आज के वैज्ञानिक मन की कोशिश से हजारो मील दूर रहने वाले व्यक्ति को प्रभावित कर सकते हैं तो क्या उस शक्ति से आत्मा प्रभावित नही होती ? बल्कि यो कहना चाहिए कि दूसरा व्यक्ति बाद मे प्रभावित होगा, पहले उसकी खुद की आत्मा प्रभावित होगी। जिस मालिक के लिए नौकर फूल तोडकर ले जा रहा है, वह मालिक तो फूल को हाथ मे आने पर ही सूघ सकेगा पर उसके पहले वह नौकर सुगन्ध को ले लेता है। वैसे ही हमारे विचारो से सबसे पहले हम ही प्रभावित होते हैं। यदि हमारे विचार अच्छे होगे तो हमारा चैतन्य देव भी पवित्र रहेगा और हमारे विचार बुरे होगे तो हमारी चेतना भी बुरी होगी।

जिस प्रकार क्रोध करने वाला व्यक्ति जिस पर क्रोध कर रहा है, गुस्से मे उबल कर अनर्गल बोल रहा है। वह व्यक्ति उस सामने वाले व्यक्ति के क्रोध ा को शात भाव से सहन कर लेता हे तो उसका तो कुछ नहीं बिगडता, बल्कि उसके तो शक्ति सचित होती है पर क्रोध करने वाले व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी तरफ से हानि होती है।

आज के युग मे मन की धारणाओ से होने वाले अनेक प्रयोग सामने आ चुके हैं। वैज्ञानिको ने प्रत्यक्ष कर दिखला दिया है कि मन के प्रयोग से कैसे विचित्र कार्य सघटित किये जा सकते हैं। चेकोस्लावाकिया की राजध ानी प्राह के अन्दर घटित बेतिस्लावकाफ्का का घटनाक्रम पढने को मिला था। उसमे बतलाया गया है कि वह प्राह' के बाहर बैठकर सकल्प करके वृक्ष पर बैठे पक्षियो को नीचे गिराकर खत्म कर देता था। उसके इस प्रयोग को देखने व जानने के लिए योरोप के लगभग 200 वैज्ञानिक उसके पास आये थे। उन्हे देखकर बडा आश्चर्य हुआ था। खोजने पर ज्ञात हुआ कि वह व्यक्ति अपनी सकल्प शक्ति से उन पक्षियो की प्राण ऊर्जा को खींच लेता था। इस प्रकार उन्हे खत्म कर देता था। सकल्प शक्ति के ऐसे अनेक परिणाम सामने आये हैं।

आगम के धरातल पर तो मन के विचारो का प्रभाव किस प्रकार पडता है यह स्पष्ट ही है। प्रसन्नचद्र राजर्षि के विचारो द्वारा आने वाला उतार–चढाव इसका पुष्ट प्रमाण हे। तदुल मत्स्य द्वारा हिसक मनोवृत्ति से होने वाली सातवीं नरक के बधन की स्थिति भी विचारो के परिणाम को स्पष्ट करती हे। इस प्रकार जब अशुभ विचार अपनी आत्मा को एव बाहरी आत्माओ को प्रभावित करने मे इतने समर्थ हैं तो शुभ विचार अपनी आत्मा को शुभ रूप मे प्रभावित करने मे कैसे नहीं समर्थ होगे ? अवश्य समर्थ होगे।

बन्धुओ ! इसलिए मैं प्रार्थना के माध्यम से अपने आप मे प्रभु का स्मरण करने के लिए कह रहा था। जब स्वय की सकल्प शक्ति, महाप्रभु के स्वरूप की ओर नियोजित होगी और उधर ही निरन्तर लगती जायेगी तो एक न एक दिन वह परम स्वरूप को प्राप्त करने के लिए भी समर्थ हो जायेगी। जैसा कि नीतिकार कहते हैं कि–

"याद्दशी भावना यस्य सिद्धिर्भवती ताद्दशी"

जैसी जिसकी भावना होती है, उसी रूप मे सिद्धि भी होती है। किन्तु जो आत्माए महाप्रभु के स्वरूप को स्मरण न कर इन्द्रियो की आसक्ति मे रत रहती हैं, भौतिक तत्त्वो को ही महत्त्वपूर्ण समझ कर चलती हैं ऐसी आत्माए कभी भी अपने आत्मिक स्वरूप को निखार नही पाती हैं और जब तक आत्मा का भौतिक स्वरूप नही निखरता तब तक वह सही रूप मे सुखी भी नही रह सकती।

जीवन तो सभी जी रहे हैं पर जीना कैसे चाहिये इसका बहुत कम लोगो को भान होता है। वे तो केवल एक आदत से जी रहे हैं। खाना खाना है इसलिए खा लेते हैं। पानी पीना है इसलिए पी लेते हैं। सोना है इसलिए सो लेते हैं किन्तु इन सब कार्यों को किस प्रकार किया जाय, इसे करते हुए मनोयोग की स्थिति कैसी होनी चाहिये, इन सब बातो की ओर आज के मानव का ध्यान बहुत कम जाता है। इसी का परिणाम यह है कि वह शारीरिक, मानसिक एव आध्यात्मिक किसी भी ढग से सुख की वास्तविक खोज नही कर पाता।

सुख से जीने के लिए सबसे पहले अपने विचारो को परिष्कृत करने की नितान्त आवश्यकता है। जब पीने की टकी मे रहने वाला पानी फिल्टर होगा, तभी नलो के माध्यम से आने वाला पानी भी साफ स्वच्छ आयेगा। यदि टकी का पानी साफ नही है तो नलो मे आने वाले पानी मे तो स्वच्छता आ ही नही सकती। क्योकि नलो मे वही पानी आता है जो टकी मे है। ठीक इसी प्रकार जब तक मानसिक जीवन स्वच्छ, नैतिक एव धार्मिक नही बनता तब तक व्यावहारिक जीवन मे नैतिकता, प्रामाणिकता एव सुख की वास्तविक स्थिति नही आ सकती। यदि ऊपरी सुख की स्थिति परिलक्षित भी हो तो वह चमकता हुआ काच का टुकडा है जो हीरे का आभास करा देता है, उसी रूप मे ही वह बाह्य स्थिति, सुख का आभास कराने वाली होगी। इसलिए भव्यात्माओं को ऐसी बाहरी सजावट से हटकर अन्तर की सजावट को करने

के लिए प्रयास करना चाहिये। सुख से जीने के लिए सबसे पहले मानसिक सतुलन आवश्यक है।

आज के कई भाई सुख पाने के लिए धन–सपत्ति को महत्त्वपूर्ण समझते हैं। वे धन से ही सूखपूर्वक जीने का प्रयास करते हैं। पर उनका यह मानना निरीह भ्रान्ति मूल है। केवल धन से कोई भी व्यक्ति सुख से जी नही सकता। एक पशु जिसे यह ज्ञात है कि इस जमीन के नीचे करोडो की सम्पति है। वह उसका सरक्षण करके भी चलता है। ध्यान भी रखता है कि कोई उसे उठाकर न ले जाय। किन्तु क्या वह पशु उस धन से सुख पा सकता है ? शाति से जी सकता है ? कदापि नही। बल्कि उसके सरक्षण के लिए चिन्तित होने से और अधिक दु खी बन जाता है। यही हाल मानव का भी हो रहा है। वह भी धन–दौलत के पीछे बेतहाशा भागता हुआ नजर आ रहा है। उसे यही लग रहा है मैं धन पाकर शाति से जी सकूगा। पर जब पा लेता है तो उसे ज्ञात होता है कि जो मैं सोच रहा था वह बिल्कुल गलत साबित हुआ। अत यह स्पष्ट है कि धन से सुख पाने के लिए भी मन को साफ करना होगा।

जीवन के किसी भी क्षेत्र मे जाकर जीने का प्रयास किया जाय, सभी जगह यह आवश्यक है कि मन का प्रयोग सही रूप मे हो। कहते हैं कि एक सन्यासी थे जो सुबह–शाम भोजन करते थे और दिन मे हल चलाया करते थे। ध्यान जप आदि वे कभी नहीं करते थे। उनकी यह स्थिति देखकर एक सुज्ञ व्यक्ति ने उनसे यह पूछ ही लिया कि आप यह सब क्या करते हें ? सुबह–शाम भोजन कर लेते हैं और पूरे दिन खेत मे हल चलाते हैं। तो फिर आप सन्यासी केसे ? यह सब तो गृहस्थ के कार्य हैं और वे ही आप करते हैं तो आप और हमारे मे अन्तर ही क्या रह जाता हे ?

सन्यासी उसकी बात को सुनकर मुस्कराये और शात भाव से बोले–हा भाई ! बाहरी दृष्टि से कोई अन्तर नही है और आत्मा की मोलिक दृष्टि से भी कोई अन्तर नहीं है। मैं भी भोजन करता हू और तुम भी भोजन करते हो लेकिन मैं जब भोजन कर रहा होता हू तब मैं केवल भोजन ही करता हू ओर कुछ कार्य नहीं करता और जब मैं हल चला रहा होता हू तो मैं केवल हल चला रहा होता हू। इसके अलावा और कुछ कार्य नही करता ओर जब मे सो रहा होता हू तब केवल सोता हू। इसके अलावा कुछ भी कार्य नहीं करता हू।

का नाम भले दे दिया जाय पर वह क्रिया ससारवर्द्धक होती है। वेज्ञानिको का अनुमान है कि एक बार के क्रोध से दो पोंड खून जल जाता है तथा अवशेष खून मे पॉइजन उत्पन्न हो जाता है। जिस पॉइजन का प्रयोग करने पर अनुमानत 80 व्यक्तियो का खात्मा भी हो सकता है। क्रोध के आवेश मे कभी–कभी मनुष्य के ज्ञान तन्तु भी फट जाते हैं, जिससे वह लकवा जेसी भयकर व मरणात बीमारियो का भी शिकार हो जाता है। इस प्रकार शारीरिक हानि तो होती है पर मानसिक हानि भी कुछ कम नही होती है। क्रोध के आवेग से मन की कोमलता नष्ट हो जाती है और वह कठोर बन जाता है। पर यदि मन का वह आवेग सवेग मे बदल जाय तो वही आत्मा अपना ससार परिमित कर लेती है। शास्त्रकारो का कहना है कि–

"कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोभो य पवड्ढमाणा।
चत्तारि ए ए कसिणा कसाया, सिचति मूलाइ पुणब्भवस्सा।।"

क्रोध, मान, माया और लोभ का जब तक सम्यक् निग्रह का प्रयत्न नही किया, तब तक सारी क्रियाये ससार वर्धक ही होगी। पर सवेग की प्रवृत्ति जीवन मे आ जाये तो अनन्तानुबन्धी आदि अतिशय ससार वर्धक कषाय का निग्रह सरलता से किया जा सकता है।

अपनी आत्मा को साधने के लिए जो क्रिया की जाती है, वह अध्यात्म है और जो चारो गति को साधने के लिए क्रिया की जा रही है, वह अध्यात्म नही है। जरा आप विचार करे, राम, सीता, लक्ष्मण ये तीनो वन मे थे। उस समय राम अन्य की भलाई की प्रवृत्ति मे सलग्न थे। लक्ष्मण भी उन्हीं का अनुकरण कर रहे थे और सीता जो कि पतिव्रता नारी थी, जिसकी पतिव्रता की भावना से ही क्रियाये चल रही थी, उस समय रावण की भी क्रिया हो रही थी। वह सोच रहा था कि महारानी सीता मेरी रानी बन जाय, यह उसकी मन की क्रिया थी। वह विचार कर रहा था कि सीता धार्मिक प्रवृत्ति वाली हे। मैं इसे जगल से उठाकर लाऊ पर लाऊ कैसे ? उसके मन मे मेरे प्रति जब तक अनुराग न हो तब तक वह मेरी होने वाली नही है। अत मुझे क्या करना चाहिये ? उसके मन मे उस समय विषम वेग था। विचार करते–करते उसके मन मे यह भावना हुई कि सीता आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाली है। उसे ध ार्मिक पोशाक से, धार्मिक अभिनय करके ही लाया जा सकता है। बताते हैं, उसने योगी की पोशाक बनाई। ससार बढाने वाली इस क्रिया का आश्रय लेकर कपट वेश से सीता के नजदीक पहुचा। तब सीता को बहुत प्रफुल्लता हुई, पर विचार आया कि यह योगी एकाकी कैसे ? फिर भी शिष्टाचारवश

उसे सत्कार देने की भावना से सीताजी कहने लगी–लो मैं आपको दान देती हू। लगभग ऐसा वर्णन तुलसीकृत रामायण मे मिलता है। तब वह कार (मर्यादा) के भीतर रहकर दान देने लगी तब रावण ने कहा कि कार से बाहर आकर दान दो और जब वह बाहर आयी तो रावण उसे उठाकर ले गया। यह तुलसीकृत रामायण की बात शिक्षा दे रही है कि इस कलियुग मे ऐसा रावण न हो जो जोगी के वेष मे आकर तुम्हारी सीता को उठाकर ले जाये अर्थात् एकाकी फिरने वालो से सावधान रहने की आवश्यकता है। साधु जीवन की चर्या का पूरा ज्ञान आपको रखना है। आध्यात्मिक वेष पहनकर धोखा देने वालो से सावधान रहना है। ध्यान और साधना के नाम से अनर्गल प्रलाप करने वाले तथाकथित साधुओ से भी सावधान रहना अत्यावश्यक है।

एक दिन मदोदरी रावण से कहने लगी कि–आप इस महान सती नारी को उठाकर ले आये हो, पर इसका परिणाम बहुत खराब होगा। आप इस अनीति का परित्याग करो। जाओ राम से क्षमा मागलो, जिससे आपके जीवन मे चार चाद लग जायेगे, और सारी कपट क्रियाओ से आपको मुक्ति मिल जायेगी। पर बार–बार कहने पर भी रावण ने मना कर दिया। रावण की यह तीव्र कषाय मोह की स्थिति थी। इसलिए अपराध की माफी मागने के लिए तैयार नही हुआ। गल्ती होने के बाद गल्ती को गल्ती मानकर क्षमा माग लेना श्रेष्ठ मानव का काम है।

गाव मे झगडा हुआ। झगडे का कारण मामूली सा था। एक व्यक्ति के कारण झगडा शान्त नहीं हो रहा था। वह व्यक्ति बीमार था। मैं दर्शन देने के लिए गया तब मैंने कहा कि यह आयुष्य अब कितने समय का है कौन जानता ? तुम क्षमायाचना करलो, पर उस मनुष्य के मन में ऐसी अनन्तानुबन्धी कषाय की स्थिति थी, कि उसने कितनी ही प्रेरणा देने पर खमत खामणा नही किया। उसकी गति तो क्या हुई यह तो ज्ञानी की दृष्टि मे है पर रावण की गति तो आप जान रहे हैं। बात–बात मे कषाय करने वाले का जीवन कभी भी अध्यात्म की स्थिति मे प्रवेश नहीं कर सकता है। अत कषाय को वशीभूत कर लेना चाहिये। इससे कोई कमी नही आती है। गगाशहर भीनासर की घटना है। दो भाई प्रमुख समाज–सेवी थे जीवराजजी ओर झूमरमलजी पर दोनो भाई कभी परस्पर नही मिलते थे। चातुर्मास समाप्ति का प्रसग आया। मैंने प्रवचन मे सामान्य रूप से वैर–विरोध विसारने की भिक्षा मागी कि किसी से भी वैर–विरोध है, तो वह मेरी झोली मे डाल दे। व्याख्यान उठने के बाद

प्राप्त होता है। मेरी आत्मा को सुखी–दु खी बनाने वाला मे स्वय ही हू। मेरे स्वय के विचार ही मुझे सुखी–दु खी बनाते हैं। यह ज्ञान जब किसी को हो जाय तो फिर क्यो वह अपनी आत्मा को दु खी बनायेगा ? कहा भी हे–

बोवोगे जेसा बीज, तरु वेसा ही लहरायेगा।
जैसा करोगे वैसा ही, फल आगे आयेगा।।
कुए मे एक बार, कुछ भी बोल देखिये।
जैसा कहोगे वैसा ही, वह भी सुनायेगा।"

बन्धुओ ! जीवन मे जैसा बीज बोओगे, वैसा ही फल प्राप्त होगा। आम बोने से आम और बबूल बोने से बबूल ही प्राप्त होगा। इसलिये आप ऐसा ही बीज बोये जिससे आपका यह भव भी सुखी बन जाय और आगे के लिये भी पुण्य की जहाज तैयार करले। भगवान् महावीर के आप मेहमान बनकर आये हो और मेरी इच्छा हो रही है कि मैं आपको अच्छा से अच्छा पकवान परोसू। वर्तमान मे जो शुभाशुभ कार्य किये जाते हैं उनसे जो कर्म–बन्ध का प्रसग आता है, अथवा आत्मशुद्धि का प्रसग बनता है उसका भूत–भविष्य दोनो ही स्थितियो मे प्रभाव पडता है। यदि हम अच्छा अनुष्ठान कर रहे हैं तो भूतकाल मे वे पाप यदि निकाचित नही हैं तो वे पाप अच्छे अनुष्ठानो को करने से पुण्य मे परिवर्तित हो जाते हैं और भविष्य उज्ज्वल बन जाता है। प्रसन्न चन्द्र राजर्षि का उदाहरण मिलता है कि प्रसन्न चन्द्र राजर्षि को जब निर्वेद की भावना बनी, तब विचार करने लगे कि ये तो ससार के कार्य हैं, चलते रहेगे। मुझे तो अपनी आत्म शुद्धि की ऐसी करणी करनी है जिससे इस जन्म मे ही अमित सुख की उपलब्धि कर सकू। तब पत्नी अपने नन्हे पुत्र को सम्मुख करके कर्त्तव्य का बोध कराती हुई मना करने लगी। तब राजन् कहने लगे–प्रिये ! तुम मेरी धर्मपत्नी हो। धर्म सहायिका हो। तुम मुझे धर्म मे सहायता प्रदान करो। पुत्र के विषय मे कह रही हो सो यह पुत्र स्वय पुण्यवान है। जिसके पिता बचपन मे ही गुजर जाये, विचार करो, उसका लालन–पालन कौन करता है ? यही नहीं अपना पुत्र स्वय पुण्यवानी लेकर आया है। अत इसकी चिन्ता मत करो। फिर इसकी सुरक्षा हेतु 500 मत्री इसकी सेवा मे रहेगे।

भगवान् महावीर ने कहा कि शक्ति रहते हुए सदनुष्ठान मे प्रवृत्ति करे। अत मैं अभी ही आत्मानुष्ठान मे प्रवृत्त होना चाहता हू। इस प्रकार समझा कर सारे ससारी कार्य से निवृत्त होकर प्रभु महावीर के चरणो मे दीक्षित होकर विशेष पराक्रम करने की दृष्टि से प्रभु की आज्ञा लेकर समवसरण भूमिका से

कुछ दूर जाकर दोनो हाथ ऊपर करके सूर्याभिमुख हो ध्यानावस्था मे खडे हो गए। इधर राजा श्रेणिक अपनी चतुरगिनी सेना से प्रभु महावीर के दर्शनार्थ जा रहे थे।

दो मनुष्य सुमुख और दुर्मुख रास्ते की सफाई का ध्यान रखते हुए उस चतुरगिनी सेना के आगे चल रहे थे। वे परस्पर बातचीत कर रहे थे। सुमुख ने प्रसन्न चन्द्र राजर्षि की भूरि–भूरि प्रशसा की तो दुर्मुख ने उनकी निन्दा की। मुनि ध्यान मे दोनो की बाते सुन रहे थे। सुमुख की प्रशसा करता हुआ कहता है कि धन्य हैं ये मुनिराज जो सब कुछ वैभव का त्याग कर सयम अगीकार कर चुके हैं। तब दुर्मुख ने कहा कि अरे क्या कहते हो तुम, यह तो कायर है। अपने पुत्र का भी पालन नही कर सका। उसे पाच सौ मन्त्रियो के हाथ मे सौंप कर चला आया है। पर मन्त्री उसे मारने का षडयन्त्र बना रहे हैं।

ये शब्द तब प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के कानो मे पडे तो वे विचारने लगे कि क्या मेरे मन्त्री नमकहराम हो गये हैं ? क्या वे मेरे बच्चे को मार कर राज्य हथिया लेगे ? विचारो का वेग तीव्रता के साथ बढने लगा। वे भूल गये कि मैं तो साधु बन चुका हू। उसे तो 'समो निदा पससासु' अर्थात् हर समय निदा ओर प्रशसा मे समभाव रखना चाहिये।

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के विचार इतने ओजस हो गये कि वे खडे तो ध्यान मे थे पर अन्दर मे विचारो से ही मन्त्रियो से युद्ध करने लगे और 499 मन्त्रियो को मार गिराया। एक मन्त्री बच गया। इसे मारने के लिये उनके पास कोई वैचारिक तीर नही बचा तो वे सोचने लगे कि इसे कैसे मारा जाये। फिर सोचा–मेरे मुकुट है। मैं मुकुट को भी इस तरह फैंकू कि वह मर जाये। इध र तो प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के विचारो मे इतनी हिसात्मक उत्तेजना आई हुई थी और उधर उसी समय श्रेणिक महाराज महाप्रभु के समवसरण मे पहुचकर महाप्रभु से पूछने लगे–भगवन् ! आपके अन्तेवासी शिष्य जो शहर के बाहर ध्यानस्थ है, वे यदि इस समय कालधर्म को प्राप्त हो तो कहा जाय ? महाप्रभु ने स्पष्ट फरमाया कि श्रेणिक ! यदि वह इस समय मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो सातवीं नरक मे जायेगा।

इसे सुनकर राजा श्रेणिक विचार करने लगे कि–अहो ! इतने बडे योगी की भी यह गति हो सकती है। उधर जब प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का हाथ मस्तक पर पहुचा और उन्हे ज्ञात हुआ कि मुकुट कहा है ? सिर तो मुडा हुआ

है। मैं तो साधु हो चुका हू। मुझे ससार से क्या मतलब ? विचारो ने मोड खाया और वे अपने इस कुकृत्य के प्रति 'निदामि, गर्हामि अप्पाण वोसिरामि' करने लगे। ठीक इसी प्रकार इधर फिर श्रेणिक ने पूछा– यह कैसे हो सकता है भगवन् ! तो भगवान् ने फरमाया कि यदि वह मुनिराज इस समय मृत्यु को प्राप्त हो तो स्वर्ग मे जाये। इससे श्रेणिक की जिज्ञासा और बढ गई। इधर राजर्षि के विचारो मे समीक्षणता आई और वे निरन्तर ऊर्ध्वता की ओर बढने लगे। थोडे ही समय के बाद सभी घनघातिक कर्म क्षय करके केवली भी हो गये। देवदुदुभि का निनाद हुआ और महाप्रभु ने श्रेणिक को बताया कि वे ही मुनिराज सर्वज्ञ हो गये हैं तो सम्राट को बहुत आश्चर्य हुआ। पर सर्व सशय हर्ता महाप्रभु ने उसका समाधान कर दिया।

बन्धुओ ! यह तो एक रूपक है जिसके भाव मैं आपको बतला गया हू। इस रूपक को सुनकर विचार करे कि विचारो का यह परिवर्तन जीवन मे कितना मोड ला सकता है। जब विचारो को कार्य रूप मे परिणत करने की शक्ति आ जाती है तो उसी प्रकार के कर्म बन्धन हो जाते हैं। शुभ–भावनाए व्यक्ति को उन्नत बनाने वाली हैं तो अशुभ भावनाए गिराने वाली होती हैं। उन्नति और अवनति दोनो उसी के हाथ मे है। इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए एक छोटा सा रूपक और देता हू।

एक व्यापारी जिसे सेव की आवश्यकता थी, उसने जाकर कदोई से कहा कि मेरे यहा विवाह का प्रसग है और बहुत सारी सेव की आवश्यकता है तो उस कदोई ने बहुत सारा बेसन लिया और उसको घोलकर उसमे नमक व मिर्च डालने वाला ही था कि एक दूसरा व्यापारी आया और कहने लगा कि मुझे जल्दी से जल्दी बेसन की चक्किया चाहिये। मैं तुझे दुगुने पैसे दूगा तो उसने उस बेसन मे नमक मिर्च की जगह बेसन की प्रक्रिया करके चासनी डाल कर चक्किया बनादी। ठीक वैसे ही पाप–अनुष्ठान मे प्रवृत्त व्यक्ति घोलन जैसी अनिकाचित कर्मो की स्थिति तक सम्भल जाये तो वह उस पाप रूपी घोल से पुण्य रूपी चक्किया प्राप्त कर सकता है।

मोटा उपाश्रय, 5–7–85

घाटकोपर, बम्बई शुक्रवार

वेद हो निर्वेद का

अनत स्वरूप वाले प्रशात रस मे निमग्न वीतराग प्रभु को नमन करके उनके सिद्धान्त का चिन्तन किया जा रहा है। मोक्ष का प्रथम सोपान सम्यक्त्व हे।

जब आत्मा अपने स्वरूप को क्षायिक सम्यक्त्व के साथ जान लेती है और एक बार भी उसे आत्मशक्ति की अनुभूति हो जाती है, आत्मरस मे वह अवगाहन कर लेती हे, तब वह तीन काल मे भी अपने आत्मिक स्वरूप को भूल नहीं सकती है।

आत्मा--परमात्मा का वर्णन कर लेना एक बात है, और उसकी अनुभूति करना दूसरी बात है। शरीर मे अनेक तत्त्व है। उनमे अनन्त ज्ञान राशि भी भरी हुई है जो कि इसी शरीर पिड मे विद्यमान आत्मा मे है। शरीर तो एकमात्र माध्यम है पर सारी शक्तिया आत्मा की स्व की हें। अनुभूति का आनन्द जुदा होता है। अनुभूतियो से ही निज स्वरूप की अभिव्यक्ति सम्यक्– रूपेण हो सकती है।

एक जगली मनुष्य बडे शहर मे पहुचा। बम्बई शहर जेसा। उसकी हवेलिया वगैरह देखकर आश्चर्य करने लगा। वहा की सर्वश्रेष्ठ मिठाई का स्वाद लिया और पुन जगल मे गया तब किसी ने पूछा कि बम्बई कैसी हे तो वह वृक्षादि की उपमा से बम्बई की हवेलियो की मोटाई बताने लगा तो कोई उसकी बात पर विश्वास नही करता। यही नहीं, मिठाई का स्वाद लोगो द्वारा पूछने पर भी उसका स्वाद कैसा हे यह वह नही बतला पाता लेकिन वहा के मनुष्य जिन्हे अपनी हवेलिया और खाई हुई मिठाई वगैरह के स्वाद की भलीभाति अनुभूति होने से क्या वैसे लोगो को सम्यक प्रकार से बता सकते हैं। उत्तर होगा नही क्योकि अन्यो को वैसी अनुभूति नही है और यह

अवस्था अनुभूतिगम्य ही हो सकती हे।

मैं जो आपको सम्यक्त्व के लक्षण बता रहा था कि सम्यक्त्व के पाच लक्षण हैं– सम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा एव आस्था। वास्तव मे अपने आप मे सम्यक्त्व है या नही, इसकी पहचान, ये पूर्वोक्त पाच लक्षण करा देते हें। सम और सवेग की सक्षिप्त विवेचना हो चुकी है। अब निर्वेद का प्रसग चल रहा है। एन्द्रियक विषयो से उदासीन होकर सिर्फ आत्मानन्द की प्राप्ति की तीव्र उत्कठा होना निर्वेद है। निर्वेद की स्थिति मे भी जब तक आत्मा ससार मे रहती है, तब तक जल कमलवत् निर्लिप्त रूप मे रहती है। जैसे 'उत्तराध्ययन' सूत्र के 29 वे अध्याय मे बतलाया है।

"निव्वेदेण भन्ते ! जीवे कि जणयइ ? निव्वेदेव दिव्य माणुस तेरिच्छिएसु कामभोगेसु निव्वेय हव्यमागच्छइ। तव्वांवसएसु चिरज्जइ। सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरम्भपरिच्चाय करेई। आरम्भपरिच्चाय करेमाणे ससारमग्गे वोच्छिन्दई सिद्धिमग्गं पडिबन्ने य हवई।"

गौतम स्वामी ने पूछा–भगवन् ! निर्वेद भाव से जीव क्या प्राप्त करता है ?

भगवान ने फरमाया–गौतम ! निर्वेद भाव से जीव, देव, मानव एव तिर्यच सबधी विषयो से शीघ्र ही निर्वेद प्राप्त हो जाता है। सभी विषयो में विरक्त हो जाता है। सभी विषयों से विरक्त होता हुआ आरभादि से भी विरक्त हो जाता है। आरम्भादि का त्याग करता है। ससार व्यवच्छित कर लेता है, और एक दिन सिद्धि मार्ग को प्राप्त हो जाता है।

ससार से कितनी मात्र मे उदासीनता आयी है, इसका मापदण्ड कैसे किया जाय। इसके लिए एक उदाहरण देता हू।

एक मनुष्य को जहरीले सर्प ने डक मारा और जहर उस व्यक्ति को भरपूर चढ गया। तब वह मत्र जानने वाले के पास गया, और जहर उतारने के लिए कहा। तब वह कडवे नीम के पत्ते उसे खिलाता है। उस समय उस व्यक्ति को वे कडवे पत्ते भी मीठे लगते हैं। तब उसने यह जाना कि इसको जहर काफी मात्र मे चढा हुआ है। तब उसने जहर उतारने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। जैसे–जैसे प्रयत्न सफल होता है, जहर उतरते जाता है, वैसे–वैसे उसको नीम के पत्ते कडवे लगने लग जाते हैं। इसी तरह निर्वेद आपके जीवन मे हे या नहीं, इसका परीक्षण करने की विधि अपनाये कि सासारिक पाच इन्द्रियो का विषय जब तक आपको मधुर–मधुर महसूस होता है, तब तक

समझना चाहिये कि अभी मोह रूपी सर्प का डक पूरे जोर से आपके भीतर मे विष व्याप्त कर रहा है पर यह वीतराग वाणी रूपी मत्र उस जहर को उतारने मे सक्षम है।

इस वीतरागवाणी रूपी मत्र श्रवण से पाचो इन्द्रियो का कटुक फल अतीव विपाक रूप मे महसूस हो रहा है और आप ससार के प्रपचो से उदासीन बन रहे हैं, तो समझना चाहिये कि मोह रूपी सर्प के डक से व्याप्त विष उतर रहा है, और आप अपने निज स्वरूप मे प्रवेश कर रहे हैं। आप जरा सोचिये–कितना लम्बा समय हो गया है कि यह मोह का पॉइजन आपकी आत्म–शक्तियो पर छाया हुआ है, अत जो भी क्रिया करे, वह सभी आत्म–स्वरूप की अवाप्ति के लिए ही हो। जब लडका माता के गर्भ से बाहर आता है, तब वह रोता है, और सकेत करता है कि मैं भूखा हू। मुझे दूध पिलाओ। जब उसकी क्षुधा की पूर्ति हो जाती है तो वह सतुष्ट हो जाता है। इसके बाद जैसे–जैसे बडा होता जाता हे वैसे–वैसे वह माता के दूध से निर्वेद को पाकर अपनी आवश्यकतानुसार क्रिया करता रहता है। उसी प्रकार जब भव्य पुरुष ससार मे निर्वेद को पा जाते हैं, तब वे विषयादि से निरपेक्ष होकर शाश्वत शाति की ओर प्रगति करने लगते हैं। प्राय प्रत्येक मानव पुण्य–पाप दोनो का उपार्जन करता रहता है। जैसा कि बतलाया है कि वह सात–आठ कर्म का बधन प्रति समय करता रहता है। अब आप चाहे कि हमारी पुण्यवानी ही अधिक से अधिक बढती रहे, पर यह चाहने मात्र से पुण्यवानी प्राप्त नही हो सकती है। गौतम स्वामी ने जो यह प्रश्न पूछा कि–भगवन् ! सुबाहुकुमार ने क्या खाया ?

यह प्रश्न क्यो और किसलिए किया गया है ? चितन करने पर आप जान पायेगे कि यह प्रश्न भी आत्म–चितन की खुराक दे रहा है। क्याकि भोजन करते समय मे भी पुण्यवानी बाध सकते हैं। आप भोजन करते समय यही आत्म–चितन करे।

मैं भोजन सिर्फ धर्म साधन मे निमित्त इस शरीर के स्वास्थ्य को सुरक्षित और तन्दुरस्त रखने के लिए कर रहा हू ताकि यह शरीर मुझे आत्म–साधना मे सहायक बन सके। इस प्रकार के प्रशस्त चितन से जो भोजन करता है वीतराग भगवान् ने बताया कि वह खाता–खाता भी सात–आठ कर्मो को तोड सकता है।

आप ज्यादा–ज्यादा ससार का वैभव चाहते हो या आत्मा का वैभव ? यदि आत्म–वैभव की इच्छा रखते हो और प्रयत्नरत रहते हो तो आत्

वैभव के साथ ससार का वैभव तो आपको मिल ही जायेगा। गृहस्थ हो या साधु, जो भी प्रशस्त आत्म चिंतन की स्थिति से भव्य भावना भाते-भाते भोजन करते हैं तो अष्ट कर्म बधन से हल्के बन जाते हैं।

'नमो अरिहताण' इस पद का उच्चारण करते हुए चिंतन करे कि अरिहत प्रभु भी भोजन करते थे। प्रभु महावीर को जब तीन दिन के वासी बाकुले चन्दनबाला ने बहराये तो महाप्रभु ने उन्हे समभाव के साथ ग्रहण किया था। इसी प्रकार की समभाव की स्थिति लाने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिये।

साधु-साध्वियो का सयोग मिलने पर विशुद्ध भावो के साथ उन्हे प्रतिपालित भी करना चाहिये। कभी-कभी भावो की विशुद्धि नही होने पर महापुरुषो को बहराते-दान देने से भी आत्म शुद्धि नही होती और भावो की विशुद्धि होने पर बहराने का निमित्त न मिलने पर भी आत्म शुद्धि का प्रसग बन जाता है।

जीर्ण सेठ जो चार माह पर्यन्त प्रभु को आहार बहराने की भावना भा रहा था। भगवान के चार माह की तपश्चर्या थी। पारणे के दिवस पर भावना भाते-भाते जो पुण्यवानी जीर्ण सेठ ने बाधी, जो प्रशस्त निर्जरा की, वह तो उनके चालू ही थी, पर प्रभु महावीर जब पूरण सेठ, जो कृपण था, के द्वार पर पहुचे और दासी के हाथ से बाकला बहर कर पारणा किया, पारणा होते ही देव दुदुभी बजी। देव दुदुभी बजते ही जीर्ण सेठ की भव्य भावना पर ब्रेक लग गया। क्योकि उसे यह ज्ञात हो गया कि अब भगवान मेरे यहा नही पधारने वाले हैं। फिर भी भावना भाता-भाता देवलोक की पुण्यावली बाध ली। किन्तु पूरण सेठ अपनी गलत भावना के कारण दान देकर भी विशिष्ट पुण्यवानी नही बाध सके।

पुण्य-पाप हर आत्मा बाध रही है, पर पाप को पुण्य मे और पुण्य को पाप मे परिवर्तन करने की स्थितिया कैसी क्या जीवन मे बनती हैं, इसे आप शनै शनै सम्यक् प्रकार से जानते हुए सम्यक्त्व के लक्षणो को बोध प्राप्त कर उन्हे क्रियान्वयन की दृष्टि से जीवन मे स्थान देते हुए आगे बढे तो निश्चय ही जीवन मगलमय बनेगा। इसी मगलमय शुभ भावना के साथ।

मोटा उपाश्रय 6 7 85

घाटकोपर, बम्बई शनिवार

परम शान्ति का महाद्वार-सम्यग् दर्शन

परम पवित्र परमात्मा का स्वरूप अपनी आत्मा को पवित्र करने के लिए स्मृति पटल पर उभारने का प्रयास करना है, क्योकि आज के लोगो की आत्माए प्राय कर्मो से आबद्ध होकर हिताहित के विवेक से विकल बन रही है। इस विकलता से विलग होने के लिए वीतराग वाणी को सुनने एव जीवन मे उतारने का प्रसग प्राप्त हो रहा है। यह वीतराग देव की वाणी किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित न होकर सम्पूर्ण प्राणी वर्ग के लिए हे। जिस प्रकार पानी किसी व्यक्ति विशेष का न होकर सम्पूर्ण प्राणी वर्ग के लिए होता है वह सभी की प्यास बुझाता हे उसी प्रकार वीतराग वाणी भी सभी भव्यात्माओ की अन्तर की आत्मिक प्यास बुझाने मे समर्थ हे, किन्तु आज के मानव इस वाणी को उपेक्षित कर एक बहुत बडी भूल कर रहे हैं। इस भूल के कारण ही वे आज तक ससार मे भटकते आ रहे हें। इस भूल को हटाने के लिए सम्यग्दर्शन की अत्यन्त आवश्यकता हे।

सम्यग्दर्शन के बिना ससार मे अधकार ही अधकार दिखाई देता हे। जिस प्रकार कि हॉल मे सभी प्रकार की वस्तुए होते हुए भी बिना प्रकाश कुछ भी दिखाई नही देता हे वैसे ही सम्यग्दर्शन रूप प्रकाश के बिना ससार को वस्तुओ का यथातथ्य ज्ञान नही हो सकता। इस सम्यग्दर्शन का महत्त्व बतलाने के लिए आचार्य उमास्वाति ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' के पहले अध्ययन के प्रथम सूत्र मे कहा है- "सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्रणि मोक्ष मार्ग"। इस सम्यग्दर्शन का ज्ञान कवल मस्तिष्क से कर लेने मात्र से आत्मशुद्धि नही हो सकती। आत्म विशुद्धि हेतु उसका ज्ञान हृदय से करना तथा आचरण की भूमिका पर उस ज्ञान को रूपातरित करना अतीव आवश्यक है। जैसे-विक्षेप

आवरण व्यक्ति के सद् विवेक को लुप्त कर देते हैं, उसी प्रकार मिथ्यात्व का आवरण भी व्यक्ति के अतरग ज्ञान को विलुप्त कर देता है। जैसे विक्षेप से मन चचल बनता है, वैसे ही मिथ्यात्व के कारण मन रूप सरोवर मे चचलता की तरगे उठने लगती है। जैसे कि लखपति, अरबपति बनने की और अरबपति, खरबपति बनने की भावना रखता है। इसी भावना के वर्द्धन मे, धन के सरक्षण मे ही उसका जीवन समाप्त हो जाता है। यह तो एक देशीय भावना का रूपक है, किन्तु ऐसी अनेक भौतिकी भावनाओ को लेकर चलने वाले प्राणियो का जीवन बीच मे ही समाप्त हो जाता है। और वह आत्मज्ञान किवा अध्यात्म–सुख से वचित रह जाता है। अपने अमूल्य जीवन को निरर्थक खो बैठता है तथा जन्म मरण की लम्बी परम्परा मे भटक जाता है।

स्थिति को स्पष्ट करने के लिए मैं एक प्रचलित रूपक सुना देता हू। एक अरबपति सेठ के मन मे आया कि मेरे पास मे कितनी सम्पत्ति है। इसकी जरा लिस्ट बनवा कर देखू ? मुनीमो को आदेश दिया गया। पाच मुनीमो ने मिलकर लिस्ट बनाई और कहा कि "आठ पीढी खाये, इतना धन आपकी तिजोरी मे है।" यह सुनकर सेठ के मन मे प्रसन्नता तो नही आई, किन्तु और अधिक चिन्ता व्याप्त हो गई कि आठ पीढी तक तो खाने के लिए सम्पत्ति है, पर नवीं पीढी क्या खायेगी ? यही चिन्ता उन्हे सताने लगी। वे दु खी हो गये और चित्त विक्षेप से दिन प्रतिदिन रुग्णता को प्राप्त होते गये। डॉक्टर, वैद्य, हकीम आने लगे, किन्तु इस मानसिक रोग को मिटाने के लिए कोई भी समर्थ नही हुआ।

एक दिन एक मानसिक चिकित्सक आया और उसने मनोवैज्ञानिक ढग से सेठ के मन की बात भाप ली तथा उनके मुह से यह बात कहलवा दी कि आठ पीढी खाये इतना धन तो मेरे पास है पर नवी पीढी का क्या होगा ? बस मुझे यही चिता खा रही है। तब मनोवैज्ञानिक ने कहा कि पहले मुझे तुम यह बताओ कि तुम्हारे लडके कितने हैं तो सेठ कहने लगा कि– लडका तो मेरे एक भी नही है, और अब होने की आशा भी नही है, तब उस चिकित्सक ने कहा कि तो फिर तुम किसकी चिन्ता कर रहे हो ? कहा नवी पीढी आने वाली है जबकि तुम्हारे बाद भी तुम्हारे इतने धन का उपभोग करने वाला कोई नहीं है। सेठ के बात समझ मे आ गई, उसकी सारी बीमारी नौ दो ग्यारह हो गई। तो बन्धुओ, यह विचारने की बात है। आज का व्यक्ति भी क्या सोच रहा है, बस एक अपनी इच्छापूर्ति मे सलग्न बना भौतिकता मे रमण करता हुआ, भौतिकता मे ही भटकता हुआ सम्यग्दर्शन को भी खो,

बैठता है ओर जिन्दगी को विनाश के कगार पर ला खडा कर देता हे।

जीवन को शातिमय बनाने के लिये सम्यग्दर्शन के गुणो को अपनाना ही होगा। इन गुणों मे महत्त्वपूर्ण गुण है– अनुकम्पा का– अनुकूल कम्पन इति अनुकम्पा । दूसरे के दु ख को अपना दु ख समझ कर आत्मीय भावना से उसे दूर करने की अतीव तीव्र (उत्कट) भावना अनुकम्पा है। भाई–भाई के साथ, प्राणी–प्राणी के साथ आत्मीय भावना रखी जाय– 'आत्मन् प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत' यानी आत्मा से प्रतिकूल आचरण दूसरो के लिए नही करना सम्यग्दर्शन का मूल है।

सज्जनो । आज के इस आधुनिक युग मे क्या–क्या देखने को मिल रहा है। देखिये इस बम्बई शहर को ही, जहा वर्षा की बाढ मे हजारो प्राणी बेघरबार हो रहे हैं, और इधर वे रईस लोग अपनी इम्पोर्टेड प्उचवतजमकद्ध कारो को लेकर वर्षा का मोसम देखने के लिए फाइव–स्टार होटलो मे ऐश करने के लिए हजारो–लाखो रुपये खर्च कर रहे हें। कहा है आज के लोगो मे अनुकम्पा ? कहा है आज साधर्मी भाइयो के प्रति वात्सल्य ? अधिकाश लोग अपने स्वार्थ मे डूबे हैं। जहा हजारो लोग मर रहे हैं वहा चन्द लोग गुलछर्रे उडा रहे हैं और यह सोचते हें। मरे वो दूजा हम कराये पूजा' लेकिन यह कब तक चलने वाला है ? आत्मीयता के प्रतिकूल यह आचरण कितना भयानक, घातक परिणाम दिखला सकता है, शाति पाने के लिए सम्यग्दर्शन का विशिष्ट लक्षण अनुकम्पा को जीवन मे उतारना होगा।

जिसे आप अनार्य देश समझते हैं, उस अमेरिका के प्रेसिडेट (President) अब्राहम लिकन की बात सुनी होगी जब वे एसेम्बली (S M L) जा रहे थे, उस समय रास्ते मे उन्होने कीचड मे एक सुअर को छटपटाते देखा तो उनके मन से अनुकम्पा जागृत हुई ओर वे स्वय ही बग्घी से नीचे उतरे तथा उस कीचड मे से सुअर को निकालने का प्रयत्न करने लगे। सुअर के पैर पछाडने से उनके कपडे खराब होने लगे तो भी वे अपने कपडो की चिन्ता किए बिना उस सुअर को निकालने मे प्रयत्नशील रहे। आखिर उन्होने उसे बाहर निकाल ही दिया। एसेम्बली का टाईम हो जाने से वे टाईम के पक्के अब्राहम लिकन उन्ही कपडो मे एसेम्बली पहुच गये। सभी को उनके कपडे देखकर आश्चर्य हुआ। लोगो ने उनसे पूछने का तो साहस नही किया पर उनके नौकर से पूछा–तब उनके नौकर ने सारी घटना सुना दी।

अपनी अज्ञानता से, बहुत सारी हिसात्मक मनोवृत्ति से पाप का सचय कर गया, और अनिकाचित पुण्य प्रकृति को भी पाप मे परिवर्तित कर दी। यह तो एक दृष्टान्त है, पर आज कौन ऐसा मनुष्य होगा जो पाप उपभोग करना चाहेगा ? पर वीतराग भगवान की वाणी है कि जो पाप करता है, उसका फल उसको ही भोगना पडता है, अन्य उसे नही भोग सकते हैं। एक नन्हा बालक मिर्ची का बीज खाता है तो मुह भी उसी का जलने लगता है, ठीक इसी प्रकार पाप के बीज मोह के अधीन हो जो बोता है, तो उसका फल समय आने पर उसे ही भोगना पडता है। पुण्य–पाप का फल भुगतने के लिए कोई अन्य ईश्वर आदि की कल्पना उपयुक्त नही। जो कर्त्ता है, वही भोक्ता भी है जैसे कि –

एक डॉक्टर, किसी रोगी के पास पहुचा और देखा कि उस रोगी के शरीर मे कई प्रकार के रोग के कीटाणु कार्य कर रहे थे। अत डॉक्टर ने कहा कि मैं सभी प्रकार के रोगो की गोलिया देता हू। मलेरिया, टाइफाइड, नमोनिया तथा सन्निपात सभी की गोलिया डॉक्टर ने दी, और मरीज ने सभी गोलिया पेट मे डाल दी। अब आप बताओ कि अन्दर कौन बैठा है, जो उन गोलियो का अलग–अलग रोग पर अलग–अलग असर कराता है। इसी प्रकार व्यक्ति शुभाशुभ कर्म करता है, जिससे कर्म वर्गणा आती रहती है, और अलग–अलग रूप मे उनका स्वभाव भीतर बनता रहता है, और अलग–अलग फल देने की शक्ति उनमे उत्पन्न हो जाती है। इन सबमे मुख्य कार्यकारी शक्ति आत्मा ही है। यह विषय अत्यधिक सूक्ष्मता से, गहराई से जो भव्य मनुष्य जान लेता है तो वह पाप का क्षय कर पुण्य का बन्ध कर निर्जरा के प्रशस्त मार्ग पर आगे बढ सकता है। इसके लिये धैर्य और साहसादि आत्मिक गुणो की विकास की अति आवश्यकता है। चाहे गृहस्थाश्रम मे हो या साध ुता की साधना पर आरूढ हो, सभी को धर्म करणी करते हुए धैर्य और आस्था अतीव अपेक्षित है। कर्म सिद्धान्त का आत्मा पर कैसे प्रभाव पडता है, इसका भावात्मक अध्ययन करने के लिये भगवान ने चार अनुयोग का स्वरूप बतलाया है। उसमे चरितानुयोग से हर गूढ तत्त्व को समझने मे सहूलियत रहती है। एक रूपक है––

एक चित्रकार एक रगीन डिब्बिया लेकर बालको को कहे कि इसमे हाथी, घोडा, हवाईजहाज आदि है। इस प्रकार कहने पर क्या कोई विश्वास कर सकता है ? पर जब वह सलाई लेकर उसी रग के चित्र चित्रित कर दे तो उसे सबही मान लेते हैं। वैसे ही आत्मा मे भी सब प्रकार की शक्तिया

समाहित है। आवश्यकता हे सत्पुरुषार्थ द्वारा उन्हे जागृत करने की। धैर्य और साहस का मधुर फल इसी जीवन मे ओर अगले जीवन मे दोनो ही जीवन मे मिलता है।

वह पुरुषार्थ आगमानुसार है या नही। यहा यह भी जान लेना योग्य है। आगम मे सभी तरह का विषय आता है। उसमे हेय ज्ञेय, उपादेय तीनो ही तरह के विषय आते हैं। उन सभी विषयो मे जो विशेष रूप मे उपयोग योग्य बतलाया जाता है, वह पालनीय होता है। वैसे शास्त्रे मे द्रौपदी का कथन आया भी है ओर उसके पाच पति भी बतलाये हें। इस पर कोई यह सोचते हो कि द्रौपदी ने पाच पति किये तो अच्छा किया है ओर वह सती कहलाती हे तो हम भी ऐसा करे, तो वह सही नहीं होगा। द्रौपदी को पाच पति होने से सती नही कहा है अपितु पतिव्रत धर्म पर एकनिष्ठ होने से तथा दीक्षित होने से महासती कहा है। पाच का प्रसग उसके पूर्व कर्मोदय का परिणाम था जो सभी के लिए ग्राह्य नही हो सकता। यह ज्ञेय विषय है उपादेय नहीं। पुराण मे द्रौपदी को लेकर उसके सतीत्व की अवस्था बतलाते हुए एक रूपक दिया हे–

एक बार श्रीकृष्ण के साथ पाचो पाण्डव ओर सती द्रोपदी एक बगीचे मे जा रहे थे। प्रवेश के साथ ही सबको फल तोडने का निषेध कर दिया गया था पर सब तो आगे–आगे चल रहे थे और भीम जो भारी शरीर के कारण पीछे चल रहा था उसने देखा कि वृक्ष पर एक सुन्दर फल लगा हे तो उसे देखकर मन चलायमान होने से भीम ने फल तोड लिया ओर श्रीकृष्ण ने उसे देख लिया। तब श्रीकृष्ण ने उसे प्रायश्चित करने के लिए कहा–प्रायश्चित कर लेने पर ही आगे बढेगे। घर मे जितने सदस्य होते हैं और जो पाप घर मे होता है उसके भागी घर के सभी सदस्य होते हें। श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम सभी इस भीम के द्वारा कृत पाप के भागीरत हो अत धर्मराज तुम सर्वप्रथम प्रायश्चित करो कि आज दिन तक मेरा जीवन पवित्र रहा हो अन्य स्त्री की तरफ मेरी भावना नही गई हो तो हे फल। तू मेरी पवित्र स्थिति क बलबूते से पुन डाली पर लग जा। कृष्ण महाराज के कहने के अनुसार धर्मराज क कहने पर फल एक हाथ ऊपर उठ गया। इसी प्रकार सभी भाइयो ने कहा और वह फल एक हाथ ऊपर चढता गया। जब द्रौपदी ने कहा कि यदि मैने अन्य पुरुष की आकाक्षा नही की हो तो फल तुरन्त डाली के ऊपर लग जा तो हुआ क्या ? वह फल जो पाच हाथ ऊपर उठा हुआ था धडाम स पृथ्वी पर गिर गया। द्रोपदी लज्जाशील बनी। एकदम मूक बन गयी। पाण्डवो को

आत्मा पुस्तक से श्रोता को जो ज्ञान होता हे, वह जीवन्त ज्ञान हे। केवल पुस्तको से आन्तरिक अनुभव प्राप्त नही हो सकता। अनुभवो की उपलब्धि कराने वाला हमारा ही चैतन्य हे।

मगध सम्राट ने जब बगीचे मे आन्तरिक अनुभूतियो से ओतप्रोत अनाथी मुनि का आभा–मडल देखा तो वह आश्चर्यचकित सुख की अनुभूति करने लगा। जब सम्राट श्रेणिक ने अनाथी मुनि से सनाथ–अनाथ को लेकर चर्चा की तो अनाथी मुनि ने बतलाया कि सनाथ–अनाथ का स्वरूप बाहरी उपाधियो एव परिधियो से नही समझा जा सकता है। इसके लिए आगमिक धरातल पर आन्तरिक अनुभूति होना आवश्यक है। क्योकि वही विशेष लाभदायक है।

बन्धुओ ! यह स्पष्ट है कि जगत के सभी प्राणियो के साथ आन्तरिक अनुभूति एक–दूसरे के साथ अनुरजित हो। सहृदयता रखते हुए एक–दूसरे के सहयोग एव उसकी अनुभूतियो से अपने जीवन का विकास करने का यदि प्रयत्न किया जाय, तो सफलता श्रीचरणो मे चेरी बनकर खडी रह सकती है।

एक पतिव्रत धर्म को लेकर चलने वाली सती मे भी कितनी शक्ति आ सकती है, यह गाधारी के उदाहरण से समझा जा सकता है तो परिपूर्ण आत्माराधना करने वाले मे कितनी शक्ति आयेगी यह अवक्तव्य है।

महाभारत का युद्ध, जिसमे युद्ध करते–करते कौरव पक्ष जो कि प्राय समाप्त सा होने लग गया, तब दुर्योधन मन मे विचार करने लगा कि मैं कितनी–कितनी भावना लेकर चल रहा था, पर वह सब मटियामेट होने जा रही है। अब अतिम समय युद्ध भीम के साथ सम्पन्न होने वाला है। उसी से विजय का निर्णय होने वाला है। अब मैं क्या करू ? किसके पास जाऊ ? किससे ऐसा उपाय प्राप्त करू ? चाहे मैं कितनी ही नीति शास्त्रे की बाते पढलू, पर मक्खन निकालने की सक्षमता मुझमे नही आ सकेगी। मैं क्यो न चैतन्य देव की चौपडी से इसका हल निकाल लू ? चैतन्य देव की चौपडी युधि ाष्ठिर धर्मराज है। हालाकि वे मेरे प्रतिपक्षी हैं, फिर भी उनका व्यवहार बहुत तटस्थ है। वे सत्यनिष्ठ हैं। अत दुर्योधन को यह बात जच गई कि मैं युधि ाष्ठिर के पास जाऊ और उनसे हल पूछू। जरूर मुझे हल मिलेगा और मेरा सारा कार्य सिद्ध हो जायेगा। देखिये शत्रु पर अटल विश्वास कर दुर्योधन जहा युधिष्ठिर थे, वहा पहुचे। पूर्व के युद्धो मे नैतिकता की स्थिति रहती थी। जब युद्ध का समय पूर्ण हो जाता था, तब एक–दूसरे के नजदीक

जाकर उनकी सारसभाल करते थे। दुर्योधन ने जाकर धर्मराज को नमस्कार किया। धर्मराज बडे प्रेम से उनकी तरफ दृष्टि डालते हैं और मधुर शब्दो से सत्कार–सम्मान करते हैं। बहुत प्रसन्न भावो से धर्मराज ने दुर्योधन से आगमन विषयक कारण पूछा, तब दुर्योधन ने कहा कि अब मेरा भीम के साथ गदा युद्ध होगा। इसमे मैं कैसे विजय प्राप्त करू इस समस्या का हल प्राप्त करने के लिये आपके पास आया हू। अत कृपा करके मुझे वह उपाय बताओ।

बन्धुओ ! यदि आपके समक्ष ऐसा प्रसग आ जाय तो आप क्या करोगे ? आप अपने शुत्रु का हित चाहे या न चाहे पर धर्मराज विचार करने लगे कि इनकी विजय से पाडवो की हार होगी, पर जो मुझसे सलाह लेने मेरे द्वार आया है तो मुझे इसे अनुभूति के आधार से सही उपाय ही बताना है। वे कहने लगे कि दुर्योधन ! तुम्हारे घर मे ही इसका उपाय विद्यमान है जिससे तुम अपना शरीर वज्रमय बना सकते हो। इसका उपाय तुम्हारी मा गाधारी है जो शुद्ध शीलवती पतिव्रता नारी हे। उसके पास जाकर तुम नम्रतापूर्वक निवेदन करो। यदि वह तुम्हारे सारे शरीर पर मा की ममता भरी दृष्टि प्रक्षेप करे तो तुम्हारा सारा शरीर वज्रमय बन जायेगा। दुर्योधन फूला नहीं समाया और धर्मराज से स्वीकृति प्राप्त कर बाहर निकलने लगा। इधर कृष्ण महाराज को पता चल गया था। अत उन्होने आगे–पीछे की सारी बात का ख्याल करके दुर्योधन से कहा कि तुम अपनी जीत के लिये धर्मराज के पास गये थे ना ! उन्होंने क्या उपाय बताया ! देखो मुझसे मत छिपाना मुझसे कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। तब दुर्योधन ने सारी हकीकत कह दी। तब कृष्ण महाराज ने सलाह दी कि तुम इतने बडे राजन पति राजा होकर अपनी मा के सामने सारा बदन खुला कर केसे जाओगे। कम से कम गोपनीय स्थान पर वस्त्र रखकर जाना। गदा का प्रहार वहा तो होगा नहीं, तब दुर्योधन इस बात को स्वीकार कर उसी तरह मा के सामने आकर खडा हुआ। मा की जहा–जहा दृष्टि पडी वह भाग तो वज्रमय बन गया, लेकिन वस्त्र से अनावृत अग कच्चा रह गया। खैर यह कहानी तो बहुत बडी है। मैं जो सम्यक्त्व की बात कह रहा था, और इस कथा भाग से हमे बहुत तरह से पुष्टि मिल रही है। यदि आप निर्मल द्रष्टा हैं तो अपकी दृष्टि मे वह तेज प्राप्त हो सकता है। चेतना मे इतनी शक्ति हे कि हमारी सारी समस्याओ का हल हमारी चेतना से, हमारी सम्यक्त्व स्थिति से ही हो सकता है।

जब पति के प्रति एकनिष्ठा प्राप्त हो जाने पर गाधारी मे भी दुर्योधन को वज्रमय बनाने की शक्ति आ सकती हे, तो जो भव्यात्मा परमपिता परमात्मा के प्रति अचल आस्था एव एकनिष्ठा रखती है उसमे कितनी शक्ति आ सकती है ? यह चिन्तन करिये। यह आस्था सम्यक्त्व से ही आ सकती है। दृढ सम्यक्त्वी के सामने मानव की तो बात जाने दो, देवता भी झुक जाते हैं। उनकी शक्ति भी सम्यक्त्वी के सामने फीकी पड जाती है। उदाहरण के रूप मे ज्ञाताधर्मकथाग सूत्र मे वर्णित अरणक श्रावक की धर्म–निष्ठा के सामने देव झुक गया था। श्रेणिक राजा की अचल आस्था के सामने भी देव प्रणत हो गया था। अत यह स्पष्ट है कि दृढ सम्यक्त्वी मे सम्यक्त्व तेज से विशेषता आ जाती है।

आत्मशक्ति को जागृत करने के लिए सबसे पहले सम्यक्त्व का जागरण आवश्यक है। वह सम्यक्त्व का जागरण गाधारी की तरह, वीतराग देव के प्रति एकनिष्ठ बने। इसके लिए सम्यक्त्व के आठ आचार हैं। उनका ज्ञान होना भी अतीव आवश्यक है।

मोटा उपाश्रय — 9 7 85

घाटकोपर, बम्बई — मगलवार

प्रभु के प्रति सर्वात्मना समर्पण हो

वीतराग देव ने जो आध्यात्मिक ज्ञान का प्रवाह प्रवाहित किया था, वही ज्ञान का प्रवाह आज भी भव्यात्मा तक पहुच रहा है। ज्ञान ज्ञानी के पास ही जाता है। आकाश से जैसे पानी बरसता है तो वह खेती को सरसब्ज बनाता हुआ, लोगो की प्यास बुझाता हुआ आखिर समुद्र मे ही जाकर मिलता है। ठीक इसी प्रकार तीर्थकरो ने जो ज्ञान प्रवाह प्रवाहित किया वह गणधरो के कर्ण कुहरो मे समाहित होता हुआ और उनके जरिये से जो निर्झर फूटा, उससे आज हम सभी लाभान्वित हो रहे हैं।

जो ज्ञान आज हमे मिल रहा है उसे हमें हृदयस्थ करना है। यदि हम परिपूर्ण समर्पण के साथ ज्ञान को आत्मस्थ बनाने के लिए तत्पर बन जाये तो वह ज्ञान हमारी सुषुप्त चेतना को जागृत कर सकता है। आत्मा के सर्वांगीण विकास के लिए प्रभु के प्रति परिपूर्ण समर्पणा अति आवश्यक है। जैसे माता के गर्भ से जिस सन्तान का जन्म होता है, वह सन्तान जन्म लेने के साथ ही साथ माता के प्रति अपने आपका समर्पण कर देती है, तभी वह बालकपन से यौवनवय को प्राप्त होता है। बिना मा के प्रति समर्पण हुए उस बच्चे का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं है। यह समर्पण भी अपनत्व जहा होता है, वहीं परिपूर्णरूपेण बनता है। पिता की अपेक्षा माता का अपनत्व सन्तान पर विशेष होता है। इसलिये सन्तान का पिता की अपेक्षा मा के प्रति विशेष आकर्षण होता है। छोटे बच्चे को माता के कहने का परिपालन करते हुए देख हम यह सचोट कह सकते हैं कि बच्चे का मा के प्रति इतना अधिक समर्पण मा के अपनत्व के कारण ही होता है।

मेरे स्वय के बचपन का एक प्रसग है–बचपन मे मुझे जब माताजी(चेचक–ओलीमाता निकली) हो गये थे, तब मुझे मेरी माताजी रोटी के साथ पतासा लगाकर प्रतिदिन खिलाया करती ताकि रोटी कडवी नही लगे। एक दिन किसी काम से वे नही खिला सकी और पिताजी खिलाने लगे तो मैंने मना कर दिया कि मैं आपसे नही खाता। तब पिताजी कहने लगे कि "मैं तुझे जहर तो नही खिला रहा हू। फिर भी मैंने नही खाई और जब माताजी ने आकर खिलाई तो जल्दी से खाली। कहने का तात्पर्य यह है कि मा के प्रति बच्चे की जितनी समर्पणा होती है, उतनी अन्य किसी के प्रति नही। लोग कहते हैं कि सृष्टि का कर्ता ईश्वर है पर जैन दर्शन की दृष्टि से मैं यह कह सकता हू कि बालक की सृष्टि का कर्ता मा है। उसमे वह ईश्वरीय शक्ति है कि वह कुम्भकारवत् अपने बच्चे को सस्कारित कर अपने मनोभावो के अनुरूप बना सकती है। महाराजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित जिसे माता तारा के ऐसे सुसस्कार मिले कि वह देव के प्रलोभन मे आकर भी अपनी क्षुधा शात करने को तेयार नही हुआ, कारण उसकी अपनी ममतामयी माता के प्रति परिपूर्णरूपेण समर्पणा थी और उस समर्पणा का ही पुण्य प्रसाद था कि उसका जीवन बचपन से सुसस्कारित, उच्च कुल का प्रतीक था। इसी प्रकार वीतराग के मार्ग पर वीतराग की आज्ञाओ पर यदि परिपूर्णरूपेण समर्पणा हमारी हो जाती है तो हमारी आत्मा का विकास परिपूर्णरूपेण सम्भवित है। यदि हमे वीतराग की आज्ञा का सम्यक् बोध नही है और हम चारो तरफ के तथाकथित धर्मो को अपना कर ससार के प्रवाह मे बह रहे हैं, तो जैसे कहावत है कि "सात मामा का भाणजा भूखा ही रह जाता है"– वही हाल हमारी हो सकती हे। अतएव वीतराग की आज्ञाओ का सम्यक् बोध करके उसी पर परिपूर्ण समर्पणा, कृष्ण के प्रति रुक्मणी की तरह हमारी प्रभु के प्रति बन जाय तो जेसे कृष्ण महाराज रुक्मणी की सर्वतोभावेन समर्पणा से उसे सप्राप्त हो गये, ठीक वैसे ही वीतराग की आज्ञा के प्रति हमारी परिपूर्णरूपेण समर्पणा से हमे अपनी आत्मिक उपलब्धिया प्राप्त हो सकती हें।

कई शाति के इच्छुक लोग मत्र के विषय मे प्रश्न करते हैं ओर जव नवकार मत्र उनको बताया जाता हे तो वे उसके महत्त्व को नही पहचान पाते हें ओर अन्य मन्त्रे को जानने की आकाक्षा करते रहते हें, पर आप नवकार मत्र के प्रति समर्पणा ओर उस समर्पणा से होने वाली उपलब्धि को समझने के लिए एक छोटा सा रूपक ध्यान मे ले। जेसे कि एक व्यक्ति राष्ट्रपति के प्रति

समर्पित है और एक व्यक्ति साधारण सिपाही के प्रति। जो राष्ट्रपति के प्रति समर्पित होकर उसकी उपासना करने वाला व्यक्ति है, वह यदि ठोकर खाकर कही गिर जाता है तो उसकी सारसभाल करने वाले कितने उपस्थित हो जायेगे ? जबकि सिपाही की उपासना करने वाले की यह स्थिति बनने पर अर्थात् ठोकर खाकर गिर जाने पर उसकी सारसभाल करने वाले कितने लोग उपस्थित होंगे ? यदि मान लो उसका इष्ट वह सिपाही उसको सहायता दे भी दे तो भी अन्य सिपाही उसमे बाधक भी बन सकते हैं। ठीक इसी प्रकार 64 इन्द्रो से वदनीय नमस्कार मत्र है और सिपाही की उपासना करने वाले व्यक्ति के समान अन्य मत्र हैं। नमस्कार मत्र की उपासना, जो व्यक्ति परिपूर्ण समर्पणा के साथ करते हैं उनकी उपासना राष्ट्रपति की उपासना करने वाले व्यक्ति के समान हर समय, हर परिस्थिति मे कामयाब हो सकती है। आपत्ति से हमे उबारने के लिए आत्मबल प्रदान करने मे समर्थ हो सकती है। पर अन्य मत्रे पर समर्पणा जिनकी होती है उनकी उपासना सिपाही की उपासना करने वाले व्यक्ति के समान ही होती है। अर्थात् अन्य मत्रे के अधिष्ठातृ देव-देविया हैं वे भले ही अपने स्तुतिपरक मत्र मे प्रसन्न हो जाय और अपना कार्य सिद्ध कर दे पर उनके द्वारा होने वाली कार्य सिद्धि मे भी भजना है क्योकि उनका कोई विरोधी देव है तो उस समय बाधक बन सकता है। जैसे जो व्यक्ति राष्ट्रपति को प्रसन्न कर लेता है उसका कोई बाधक नहीं बन सकता है, ठीक वैसे ही नमस्कार मत्र की आराधना करने वाला नमस्कार मत्र मे जिनको नमन किया जा रहा है उन परमात्मा एव महानात्माओ की सेवा मे तत्पर रहने वाले जो सम्यग्दृष्टि 64 इन्द्र देवादि हैं उनको प्रसन्न कर लेता है अथवा वे इन्द्रादि ही जब उस नमस्कार मत्र की आराधना, साधना करने वाले व्यक्ति के प्रति प्रसन्न हो जाते हैं अथवा प्रभावित हो जाते हैं तो उस साधक के कार्य सिद्ध होने मे कोई देरी नही हो सकती है और उन चौसठ इन्द्रो के अधीनस्थ सम्यग्दृष्टि हो अथवा मिथ्यादृष्टि कोई भी देव क्यो न हो, वह उस कार्य सिद्धि में बाधक नही बन सकता है।

समर्पणा के लिए एक रूपक और ले सकते हैं। अपने घर मे जन्मे हुए लडके और लडकी इन दोनो मे घर का मालिक कौन होता है ? उत्तर होगा लडका। इसका कारण लडकी की पिता के प्रति एव घर के प्रति पूर्ण समर्पणा नहीं होती है और लडके की अपने पिता के और अपने घर के प्रति परिपूर्ण समर्पणा होती है। अत वह उस घर का मालिक बन जाता है। उसी प्रकार वीतराग देव के घर का मालिक यदि हमें बनना है तो परमपिता महाप्रभु की

आज्ञा के प्रति हमारी परिपूर्ण समर्पणा होनी चाहिये और परिपूर्ण समर्पणा के लिये आत्मिक गुणो का विकास भी अति आवश्यक है– आत्मिक गुण, सयमानुरजित धैर्य और साहस से अपने जीवन मे जो मनुष्य गतिशील है, उसका जीवन निरन्तर सुसफल बनता जाता है। और वीतरागदेव की आज्ञा का अन्तरग स्थिति के साथ परिपूर्ण समर्पणा के साथ पालन करने का आत्म पुरुषार्थ जागृत होकर अन्त मे परमात्म स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है। महाप्रभु के प्रति हमारी समर्पणा, नि स्वार्थ होती है तो वह निश्चय ही प्रभावशाली बनती है। स्वार्थ युक्त समर्पणा विशेष प्रभावशाली नही बनती। इसके ऊपर एक छोटा आख्यान है– एक राजा तीव्र वेगगामी घोडे पर बैठकर जगल मे शिकार खेलने गया तथा सभी साथियो से बिछुडकर किसी कृषक के कुए पर पहुच गया। वहा एक बुढिया बैठी हुई थी। उसने उस राजा का हृदय से सत्कार किया। उसे चटाई पर बिठाया और गन्ने के खेत मे जाकर एक गन्ने को लाई और उसका एक लोटा रस निकालकर उसे पिलाया बडे स्नेहभावपूर्वक। उस राजा की भूख और प्यास दोनो ही शात हो गई। तब राजा विचार करने लगा कि यह बुढिया बहुत शक्तिशाली है। शक्तिशाली क्यो न हो। इतना विस्तृत गन्ने का खेत है। कितना गुड बनता होगा ? इस पर मुझे जरूर अधिक कर लगाना चाहिए। ऐसा विचार कर वह राजा उस बुढिया के आदर सत्कार को लेकर रवाना हुआ और राज्य मे जाकर उसके गन्ने के जितने भी खेत थे उन सब पर कर लगा दिया। कुछ अर्से बाद पुन कुछ ऐसा प्रसग बना कि वह राजा उसी बुढिया के आगन मे गया और उसका वही पूर्ववत् आदर सत्कार हुआ। बुढिया जब गन्ने का रस लायी तो उसने देखा कि पाच–छ गन्ने का रस निकालने पर भी उसका लोटा नहीं भरा तो राजा ने स्वाभाविक रूप से पूछ लिया कि पहले तो सिर्फ एक गन्ने से ही लोटा रस से लबालब भर गया और आज पाच छ गन्ने के रस से भी यह लोटा क्यो नही भर पाया ? तब बुढिया जो कि अनभिज्ञ थी, कहने लगी कि 'यही मेरा राजा हे' और यहा का राजा इतना निष्ठुर बन गया है कि उसने कृषको के खेत पर बहुत अधिक कर लगा दिये हैं। इसी निष्ठुरता का परिणाम आप देख ही रहे हैं 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत यहा प्रचलित है।

जेसे राजा की निष्ठुरता ने गन्ने के रस पर अपना प्रभाव दर्शाया क्योकि राजा के निजी जीवन का, व्यावहारिक धरातल का प्रजा पर प्रभाव पडता हे। ठीक इसी प्रकार जिस प्रकार की हमारी प्रभु के प्रति समर्पणा होती है उसी प्रकार का प्रभाव हमारी आत्मा को जागृत करने मे सहयोगी बनता

है। यदि राग–द्वेष मुक्त नि स्वार्थ हमारी समर्पणा है तो हमारी आत्मा भी समर्पणा के अनुरूप बनने मे सक्षम बन जाती है।

आचरण युक्त समर्पणा ही आत्मिक शुद्धि मे विशेष प्रभावी होती है। आचरण शून्य जीवन का जनमानस पर भी विशेष प्रभाव नही पडता। इसके लिये एक छोटा सा रूपक और देता हू। एक बार एक त्यागी महात्मा के पास एक बहिन आई और कहने लगी कि मुझे गुड का त्याग करा दो तो उन्होने पहली बार नही कराया। दूसरी बार पुन आई तो त्याग कर दिया। जब उस बहिन ने इसका कारण पूछा कि मुझे उस दिन त्याग क्यो नहीं कराया और आज करा दिया इसका क्या कारण है तो महात्मा ने कहा कि उस दिन मैंने स्वय ने गुड खाया था। अत तुझे प्रत्याख्यान नही कराया और अब मैंने खाना बन्द कर दिया अत प्रत्याख्यान करा दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि आचार युक्त कथन का ही प्रभाव पडता है। जब हमारे जीवन की समर्पणा भी जीवन मे आचार–प्रणाली को महाप्रभु की आराधना के अनुरूप बनाकर ही होती है तब ही उसका विशेष प्रभाव पड सकता है। हम मुख से तो वीतराग प्रभु के प्रति समर्पणा के गीत अलापे और जीवन का व्यवहार, हमारा ठीक उससे विपरीत हो तो ऐसी समर्पणा से कुछ भी नही होने वाला है। यह तो मात्र एक प्रवचना ही होगी, जो ससार घटाने के स्थान पर ससार बढा देगी।

अत आत्म–जिज्ञासु साधक निज मे परमात्म स्वरूप की अभिव्यक्ति करना चाहे तो उसके लिए प्रभु के प्रति सर्वात्माना समर्पण आवश्यक है।

मोटा उपाश्रय — 10 7 85

घाटकोपर, बम्बई — बुधवार

11

समर्पणा हो नवकार के प्रति

अनिर्वचनीय शाति के सागर, शाति के आकाश महाप्रभु वीतराग देव हैं। आकाश जिसका कभी अन्त नही आता है। सागर जिसकी हम थाह नही प्राप्त कर सकते हैं। वैसे ही तीर्थंकर भगवान् ने साधना कर जिस अगाध अमाप शान्ति की प्राप्ति की है, जिसकी कोई थाह नही, सीमा नही है। उस शाति मे अनन्तानन्त ज्ञान का खजाना भरा पडा हैं, उस ज्ञान खजाने मे से कुछ ज्ञान भी यदि मनुष्य ले लेता है, तो वह एक न एक दिन स्वय सम्पूर्ण ज्ञान का खजाना भी प्राप्त कर सकता है।

लोक मे भी देखते हैं कि सेठ के नीचे रहने वाला नौकर भी अपने पुरुषार्थ से एक–न–एक दिन सेठ बन जाता है। वैसे ही वीतराग भगवान की साधना को निरन्तर अपनाने वाले वीतराग बन जाते हैं। इसमे कुछ भी आश्चर्य नहीं है।

हमारा कितना अहोभाग्य है कि हमे यह अमूल्य वीतराग वाणी श्रवण करने को मिल रही है। जब जीवन मे वीतराग वाणी के प्रति हमारी समर्पणा होती है, तभी वीतराग वाणी का श्रवण हमारे लिये समुचित रूप से सफलीभूत बन सकता है। जैसे कि जो विद्यार्थी स्कूल मे जाकर अध्यापक के प्रति समर्पणा करके चलता है, उनके द्वारा प्रदत्त शिक्षाओ को अचल विश्वास एव विनय श्रद्धा के साथ ग्रहण करता है तो उसका समुज्ज्वल विकास सभवित हो सकता है, अन्यथा नही। जहा बाह्य क्षेत्र मे भी समर्पणा की इतनी आवश्यकता है अर्थात् अक्षरीय ज्ञान उपलब्ध करने मे भी समर्पणा आवश्यक है तो आत्मोन्नति की आकाक्षा लेकर चलने वालो की वीतराग वाणी के प्रति कितनी निष्ठा, समर्पणा एव श्रद्धा की आवश्यकता रहती है, यह विचारणीय है। यदि हमारी वीतराग वाणी के प्रति, नमस्कार मन्त्र के प्रति परिपूर्णरूपेण समर्पणा बन जाये तो आत्मा की अनन्त शक्तियों के अनुभव होते देर नहीं लगेगी।

समर्पणा का यह सूत्र सर्वप्रथम माता–पिता के द्वारा बचपन मे ही प्रदत्त सुसस्कारो से जीवन मे पनपता है। यदि बचपन मे माता–पिता के प्रति जो बालक समर्पित होता है, वह अपनी समर्पणा की सच्ची फलानुभूति जीवन मे करता हुआ उस समर्पणा का, हर क्षेत्र मे विस्तार कर अपने जीवन मे निर्धारित लक्ष्य की आवाप्ति मे सुसफल बन सकता है। बचपन मे माता–पिता के प्रति बच्चे की समर्पणा कैसी होनी चाहिये और उसका उत्तरदायित्व किसके ऊपर है ये सारी बाते चिन्तन की स्थिति मे लेते हुए यदि माता–पिता अपने अगाध अपनत्व को निभाते हुए बच्चे की सच्ची समर्पणा को प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त करें और बच्चे माता–पिता के साथ सच्ची समर्पणा रखे तो आज के युग मे बहुताश रूप से जो माता–पिता का सन्तान के साथ और सन्तान का माता–पिता के साथ अपने–अपने उत्तरदायित्व से परे व्यवहार चल रहा है, वह समाप्त हो जायेगा। आज तो तन, मन से सेवा करना तो दूर रहा, पुत्र मा–बाप को मारने के लिये भी तत्पर हो जाता है तो वहा पुत्र की समर्पणा के सुसस्कारो का अभाव नहीं तो और क्या है ? मैं क्या कहू। अमरावती का एक प्रसग है– अमेरिका जाकर आया हुआ डॉक्टर बूढी मा की बीमार अवस्था मे सेवा न कर उसे पोयजन च्वपेवदद्ध का इजेक्शन देने को तैयार हो गया था। अत माता का कर्त्तव्य है कि बचपन से ही अपना यथोचित उत्तरदायित्व निभाती हुई अपनत्व एव वात्सल्य भावो के साथ अपनी सन्तान में समर्पणा के सुसस्कार, समर्पणा की सजीवनी धार्मिक पुट के साथ समर्पणा का बीज वपित करे, ताकि भविष्य मे कभी अपनी सन्तान के प्रति कठोर व्यवहार की अधिकारिणी वह नहीं बने। बचपन से ही समर्पणा के सुसस्कारो में पलने वाली आत्मा अध्यापक आदि के साथ समर्पणा का पार्ट अदा करती हुई यदि वीतराग देव की आज्ञा के प्रति निष्ठापूर्वक समर्पित हो जाती है तो ऐसी आत्मा स्व के साथ अन्य आत्मा का भी उद्धार कर सकती है।

एक आख्यान सुनने को मिलता है–एक चोर जिसे फॉसी की सजा मिली थी, उसे देखने के लिये बडी सख्या मे जनता एकत्रित हुई। फासी लगने से पूर्व उस चोर को बहुत जोर से प्यास लगी, पर राजा के प्रति राजा की आज्ञा के प्रति समर्पित वह जनता वह प्रजा, उसका एक भी सदस्य उसे पानी पिलाने के लिए तैयार नहीं हुआ पर उसी भीड मे वीतराग भगवान् की आज्ञा में समर्पित जिनदास सेठ जो कि सम्यग्दृष्टिपने का आराधक था, अनुकम्पा बुद्धि से वह चोर के नजदीक पहुचा, और कहने लगा कि तुम्हारे मृत्यु के क्षण नजदीक आ चुके हैं पर भाई यदि प्यास से छटपटाते हुए

निःशंक समर्पणा बने–जिनवाणी पर

अतिम तीर्थकर प्रभु महावीर की अमोघ वाचना का प्रसग यहा चल रहा है। जिस वाणी में आत्मा की समग्र ऋद्धि–समृद्धि का अखूट खजाना भरा हुआ है उस वाणी मे से यदि उस शाश्वत सुख और आध्यात्मिक लक्ष्मी को पाना है तो ग्रहण करने के लिए दत्तचित्त बन जाना है। दत्तचित्त का तात्पर्य है कि श्रेष्ठ वस्तु को ग्रहण करने मे एकाग्रता के साथ विनम्र भाव रखना है। वीतराग वाणी के ग्रहण मे विनम्रता अति आवश्यक है। आप सन्तो के ज्ञान, दर्शन और चारित्र को वदन करते हैं। उस समय भावना यही बनती है कि आप महान हैं। गुणो के भण्डार हैं। आप जैसे गुण मुझमे भी आ जाये। अतएव मैं आपको अन्तर समर्पणा के साथ हार्दिक भाव से वन्दन करता हू। आप मुनियो के पैर मे अपना मस्तक लगाते हैं, कारण कि मुनि के समग्र शरीर में गुण व्याप्त हैं अत चरण में व्याप्त गुण ही यदि मुझमे आ जाये तो मैं कृतकृत्य हो जाऊ। यही आपकी भावना बनती है।

दशवैकालिक सूत्र मे कहा है कि हत्थ सजए, पाय सजए, वाय सजए' इत्यादि सूत्र से यह ज्ञात होता है कि सयमी आत्मा के समग्र अवयव उनके हाथ, उनके पैर, उनकी वाणी, आत्म गुणों से सयम से परिपूरित होती है। अत हम समर्पणा की भावना से उन गुणों को विनय भाव से वन्दन करते हुए अपने मे भी उजागर कर सकते हैं।

समर्पणा दो तरह की है। एक तो सासारिक कृत्यो के प्रति समर्पणा बनती है। जैसे माता–पिता के प्रति, अध्यापक के प्रति आदि–आदि और दूसरी अध्यात्म के प्रति समर्पणा। जो सम्यग्दर्शन के प्रति समर्पित हो जाता है उसकी अध्यात्म के प्रति समर्पणा भलीभाति सम्यक्रूपेण बन जाती है।

करने के लिये रख दो। जब तेल बहुत उबलने लग जाय तब तक तुम उस छीके पर बैठकर मन्त्र पढते-पढते क्रमश एक-एक धागा तोडकर नीचे डालते रहो। इस क्रम से सब धागे टूटने के साथ तुम्हारी मत्र की परिपूर्णरूपेण साधना सफल होते ही तुम आकाश मे उडने की विद्या प्राप्त कर लोगे और उसी क्षण आकाश मे भी जाओगे पर सेठ के मन मे शका हुई कि कही मेरी साधना सफल नही हुई और मैं आकाश मे उडने के बजाय इस उबलते तेल से लबालब भरे गर्म कडाह मे गिर गया तो प्राणो से भी हाथ धोना पडेगा। अत उसने वह मन्त्र नहीं साधा वरन् उस मन्त्र को तिजोरी मे सुरक्षित रख दिया और उसके साथ उस सन्यासी के द्वारा बताई गई सारी मन्त्र साधने की विधि भी लिखकर रखदी। कुछ समय बाद सेठ तो काल कर गये और उनका पुत्र पिता की पदवी प्राप्त कर सेठ बना। उसे पिताजी की चौपडियो (बहियो) मे वही मन्त्र और उसको पाने की सारी विधि लिखी हुई मिली। उसे पढकर लडके की इच्छा उस मन्त्र को साधने की हुई। वह विधि के अनुरूप जगल मे जाकर वृक्ष के नीचे चूल्हा खोदकर कडाह रखकर तेल उबालने के लिए उसमे डाल दिया तथा डाली पर कच्चे सूत का छीका लटका दिया। जैसे-जैसे तेल उबलने लगा वैसे-वैसे उसके मन मे डाली पर चढने की तत्परता तो हुई पर मन ही मन शका भी हुई कि मेरी यह साधना सफल होगी या नही ? कही मैं कडाह मे गिर गया तो । इस अविश्वास के कारण वह बार-बार डाली पर चढने की हिम्मत करता, और पुन पुन सकल्प से डिगायमान हो जाता।

उसकी इस चर्या के बीच ही क्या हुआ कि एक चोर जो कि राजा के यहा से चोरी करता हुआ पकडा गया, पर कोतवाल उसे कैद नही कर पाया और वह दौडता-दौडता उसी जगल मे पहुचा जहा वह सेठ का लडका मन्त्र की तेयारी कर मन्त्र के प्रति पूर्ण समर्पणा के अभाव मे सशय उत्पन्न हो जाने से छींके पर चढू अथवा नही चढू, ऐसा विचार कर रहा था। कारण कि प्राणो का व्यामोह जो उसे था और सन्यासी के वचनो पर पूर्ण विश्वास नही हो पा रहा था। ज्योही उस चोर की दृष्टि उस सेठ के लडके पर पडी और उसने उससे सारी जानकारी चाही कि तुम यहा इस स्थिति मे कैसे खडे हो ? तब सेठ के लडके ने आद्योपात सारा वृत्तान्त उस चोर को कह सुनाया। यह सुनकर चोर ने सोचा कि कोतवाल मुझे पकडने के लिए मेरा पीछा कर रहा हे। चोरी मेरी पकडी गयी हे, अत मुझे प्राणदड तो मिलेगा ही, क्यो न में इस लडके को चुराये हुए दोनो रत्नो के डिब्बे देकर, इस मन्त्र को प्राप्त

करलू । यह विचार कर चोर ने अपने मन मे सोचा हुआ प्रस्ताव सेठ के लडके के सामने रख दिया। चोर के प्रस्ताव को सुनकर मन्त्र साधना की सफलता पर सदिग्ध बना वह सेठ का लडका दोनो रत्नो के डिब्बे को लेकर उसके बदले उस चोर को मन्त्र साधने की सारी विधि बतलाकर वहा से रवाना हो गया।

चोर जिसे अब मरने की तो परवाह थी नही, क्योकि प्राण सकट मे तो पहले से ही पडे हुए थे, अत यह सोचकर कि कदाचित् बच जाऊ तो मन्त्र सिद्ध हो जाने पर आकाश मे उड जाऊगा। ऐसा दृढ विश्वास कर वह उस कच्चे धागे के छीके मे बैठ गया और मन्त्र पढता हुआ एक–एक धागा तोडकर नीचे डालने लगा ज्योही पूरा छींका टूटा कि वह आकाशगामी विद्या को प्राप्त कर आकाश मे उड गया। इधर वह सेठ का लडका दोनो रत्नो के डिब्बे को लेकर घर की ओर जा रहा था और बीच रास्ते मे राजा के द्वारा प्रेषित कोतवाल के द्वारा पकडा गया। चोरी का माल उसके पास देखकर उसे प्राण दड दिया गया। बिचारा बेमौत मारा गया।

इस दृष्टान्त से ज्ञानी जनो ने यह समझाया कि हमारी वीतराग भगवान की आज्ञा के प्रति श्रद्धा है या नहीं ? नमस्कार मत्र के प्रति श्रद्धा है या नहीं यानी परिपूर्ण समर्पणा है या नहीं ? वह सेठ का लडका जिसने मन्त्र की साधना की सफलता पर अविश्वास किया तो उसकी क्या स्थिति बनी ? और चोर मन्त्र की साधना के प्रति प्राणो की परवाह न करके पूर्णतया समर्पित हो गया तो उसने प्राण सुरक्षा के साथ सफलता हासिल करली। इसी प्रकार यदि हम वीतराग भगवान के वचनो पर नि शक समर्पित हो जाय और अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित होकर चले, चाहे कितनी भी आपदाए आ जाये तो भी अपने लक्ष्य से विचलित न हों, तीर्थंकर भगवन्तो की आज्ञाओ मे बिना किसी प्रकार की शका के परिपूर्ण रूपेण समर्पणा बनाए रखे और तदनुरूप हमारी जीवनचर्याओ को गतिशील बनाये रखे तो इस सम्यक्त्व के प्रथम आचार 'निशकित' से एक न एक दिन अपनी सम्पूर्ण आत्म ऋद्धि को प्रकट कर सकने में सक्षम बन जायेगे।

मोटा उपाश्रय, 12.7 85

घाटकोपर, बम्बई शुक्रवार

नि:शंक और नि:कांक्ष बनें

(सम्यक्त्व का द्वितीय आचार)

जीवन ही इस भव्य बेला मे जब शुभ काम करने का प्रसग आता है, तब उस शुभ काम मे विघ्न न आने पावे, इसके लिये मगलाचरण करने की आवश्यकता है। वह मगल, तीर्थंकर देव का पवित्र नाम और उनके द्वारा प्रतिपादित अहिसा, सयम, तप रूप धर्म है, जो आत्मा के साथ स्वभाव से सम्बन्धित है। यही मगल सभी मगलो मे प्रधान है। अन्य-अन्य मगलो का लोक रूढि मे जो प्रयोग किया जाता है, वे विघ्नो का नाश करने मे सक्षम नही हैं। जैसे चावल, कुकुम, लच्छा इत्यादि, इन वस्तुओ को स्वय को यह मालूम नही है कि हम मगल रूप हैं तो फिर ये दूसरो का मगल कैसे कर सकती हैं। अत जिन्हे इतना ज्ञान है कि विघ्नो का नाश किस विधि से ठीक तरह से हो सकता है, कौनसा मगल उसमे कामयाब हो सकता है, वही मगल, मगलाचरण रूप मे प्रस्तुत करना उचित है और वह मगल है सम्पूर्ण मगलो के स्थानभूत तीर्थंकर प्रभु का नाम-स्मरण और उनके अनन्त स्वरूप की स्तुति।

जो वस्तुत दर्शनीय होता है उसके दर्शन करने ही चाहिये और ऐसा दर्शनीय तत्त्व हमारी आत्मा ही है। क्योकि वह त्रिकालवर्ती अखण्ड, अमर, अजर है। जो क्षण-क्षण मे विनष्ट हो रहा है, वह पदार्थ दर्शनीय नही हो सकता है। आप देख रहे हैं, यह पाट जो कि लकडी का बना हुआ है, वह कुछ दिनो के बाद किस प्रकार परिवर्तन को प्राप्त हो जाता है। जो तत्त्व स्थायी नहीं रहता है, जिसमे ज्ञान, दर्शन, चारित्र नहीं है, आत्मिक गुण नहीं है, त्रिकालवर्ती नहीं है, वह यथार्थ मे दर्शनीय भी नहीं है। अत दर्शनीय तत्त्व

हमारी आत्मा है। उसके सौम्य स्वरूप को जानने के लिए सभी को प्रयत्नशील बनना है। यह चिन्तन करे कि वास्तव मे अनन्त सुख स्वरूपी मेरी आत्मा की वर्तमान मे कैसी दशा बनी हुई है ? जैसा कि कविता की कडियो मे बतलाया गया है–

वह पुण्य केरा पुज थी, शुभ देह मानव नो मल्यो।
तो ए अरे भवचक्रनो, आटो नही एके टल्यो।।टेर।।
सुख प्राप्त करता, सुख टले छे,
लेश ए लक्ष्ये लहो।
क्षण–क्षण भयकर भाव मरणे, का अहो राची रह्यो।।1।।

अनन्त पुण्यवानी का मर्जन करने के बाद तो यह नर तन और शास्त्र श्रवण आदि दुर्लभ अग मिले हैं। फिर भी भव चक्र का जो आटा–फेरा है, वह अब तक दूर नहीं हुआ है, तो क्यो नही दूर हुआ है ? इस विषय मे विचार करें। विचार करने पर वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जायेगी कि अब तक सही रूप में अध्यात्म की ओर कदम नहीं बढाए हैं। शाश्वत सुख और शान्ति पाने के लिये आवश्यकता है वास्तविक धर्म को जीवन मे सहामित कर आत्यतिक और एकान्त मगल करने की।

आज प्रत्येक मनुष्य सुख प्राप्त करना चाह रहा है, पर सुख का मूल स्रोत नहीं जानने से भौतिकता के पीछे पडकर सुख की बजाय दुख की उपलब्धि करता जा रहा है।

सम्यक्त्व के आठ आचार जिसका प्रतिपादन सामने चल रहा है, उसमे प्रथम आचार है निशकिय अर्थात् जिन वचन मे शका नहीं करना। कभी कदाचित् वीतराग वाणी का कोई गूढ तत्त्व, गूढ रहस्य समझ मे नही आये तो भी हमारे भीतर इतनी मजबूत, अगाध श्रद्धा हो, कि हमे देव दानव भी जिनवाणी रूप अर्हत धर्म की निष्ठा से विचलित न कर सके। आपने ज्ञाता धर्मकथाग सूत्र मे वर्णित अर्हन्नक श्रावक का वर्णन सुना होगा। जिसकी दृढ धर्मिता, दृढ निष्ठा की स्वय इन्द्र ने देवलोक में प्रशसा की थी, जिसे सुनकर एक मिथ्यात्वी देव, अर्हन्नक श्रावक की परीक्षा लेने के लिए विकराल रूप बनाकर नाव मे बैठे अर्हन्नक के सामने आ खडा हुआ था। जिसकी विकरालता इतनी भयानक थी कि देखने वालो के रोए–रोए काप उठे किन्तु आस्था का अविचल सुमेरु अर्हन्नक निर्भय बना रहा ।

देवरूप विकराल राक्षस ने अर्हन्नक को बहुत प्रकार से समझाने की चेष्टा की। उसे मारने तक की धमकी दी कि तू धर्म की श्रद्धा से विचलित हो जा किन्तु क्या मजाल, कि अर्हन्नक श्रावक डिग जाय। आखिर देव की ही हार हुई और वह अपने देवरूप मे आकर श्रमणोपासक अर्हन्नक के चरणो मे झुक गया।

धम्मो मगल मुक्किठ अहिसा सजमो तवो।
देवा वि त नम सन्ति जस्स धम्मे सया मणो।।

दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा का सार सक्षेप यह स्पष्ट करता है कि जिसका मन, उत्कृष्ट धर्मरूप मगल—अहिसा, सयम, तप मे निरन्तर लगा रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

अत भव्य आत्माओ की श्रद्धा, जिनवाणी पर अविचल निशक होनी चाहिये। जो तत्त्व हमे समझ मे न आवे उसके लिए हमारे मुह से यही शब्द निकले कि मेरी अभी बुद्धि इतनी निर्मल नही हे कि में वीतराग देव की इतनी गहरी वाणी को बराबर समझ पाऊ, भले ही आज मैं उसमे पूर्णरूपेण अवगाहन नहीं कर पा रहा हू, पर यह मुझे अटल विश्वास है कि वीतराग भगवान के जो वचन हैं वे सत्य तथ्य हैं। उनमे शका करने की किचित मात्र भी गुजाइश नहीं है। जब मेरी बुद्धि कर्म निर्जरा के प्रशस्त पथ पर बढते हुए निर्मल बन जायेगी, तब मैं वीतराग भगवान के सारे तत्त्वो को सरलतया समझ सकूगा।

वीतराग वाणी की कई बाते आज भौतिक विज्ञान जगत् मे भी प्रत्यक्ष हो रही हैं, जैसे कि अन्तिम तीर्थकर प्रभु महावीर ने बताया है कि जो शब्द हम बोल रहे हैं वे द्रव्य—वर्गणा हैं, पुद्गल वर्गणा हैं, गेद की तरह उन्हे इधर—अधर सप्रेषित किया जा सकता है। मनुष्य जिन शब्दो को बोलता है, उसके लिए वह तद् योग्य पुद्गलो को ग्रहण कर उन्हे शब्द रूप मे परिणमित कर फिर बाहर निकालता है। यह बात सकेत रूप मे प्रज्ञापना सूत्र के ग्यारहवे भाषा पद मे मिलती है। उनमे जिनकी बुद्धि निर्मल नही थी वे यह कहते थे कि जो हमारी दृष्टि मे आये वही सत्य है और जो नही आये, उसे हम नही मानते। अन्य दर्शनकारो ने भी कहा है कि शब्द, आकाश का गुण है। हम उसे द्रव्य नही मानते। कई वैज्ञानिक लोग भी यह बात नही मानते थे कि शब्द पुद्गल द्रव्य है। पर जब उन्होने कुछ वर्षो पूर्व इसका प्रयोग किया, तब उन्हे यह मानना पडा कि यह शब्द मेटर है और यह चारो दिशा मे फैल सकता है। लोक के अन्तिम किनारे तक पहुच सकता है। जैसे पानी मे पत्थर डालने से उसकी तरगे चारो ओर फैलती हैं, उसी प्रकार शब्द की पुद्गल वर्गणा, बोलने के साथ चारो दिशा मे विस्तारित होकर वायु मण्डल

को प्रभावित करती है। इसी का परिणाम है कि आज आप रेडियो, टेलीविजन, ट्रासमीटर, वायरलेस आदि अनेक साधनों से हजारो मील दूर के शब्द सुन लेते हैं। यह बारीक रहस्य की बात प्रभु महावीर के समय और उसके बाद भी कई–कई नहीं मानते थे, पर आज प्रभु महावीर का यह शब्द विषयक विज्ञान इतना विस्तृत हो गया है कि एक सामान्य व्यक्ति भी इस बात को बिना किसी गम्भीरता की अपेक्षा के सरलता से स्वीकार कर लेता है कि हम बोलते हैं, वह आवाज दूर–दूर तक पहुच सकती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो तत्त्व कभी समझ मे नहीं आये, वही तत्त्व बुद्धि की निर्मलता से विचार करने पर गइराई मे पैठने पर समझ मे आ सकता है। अत हम कभी भी जिनवचनो पर शका नहीं करे।

सम्यक्दर्शन का दूसरा आचार है निर्कांक्षा अर्थात् हमारे जीवन की स्थिति काक्षा रहित हो। हम सही धर्म के सच्चे स्वरूप को जानकर अन्य जड धर्मो से प्रभावित नहीं होवे। आप जब प्रात कालीन बेला मे दर्पण के सामने खडे रहते हो और अपने रूप को निहारते हो तब मन मे कैसी–कैसी विचारधाराए उत्पन्न होती हैं, क्या कभी रूप की विनश्वरता पर आपको विचार नहीं आता है ? अरे ये पाच इन्द्रियो के विषय–सुख कपूर की टिकिया की तरह क्षणिक हैं। पाच इन्द्रियों के विषय मे आसक्त बनी यह अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्मा अपने निजी स्वरूप को भूल जाता है, इन्द्रिय–रामी बनकर ससार मे ही भटकता रहता है। आत्मारामी वही बन सकता है जो इन्द्रियासक्ति से निरपेक्ष बनता हुआ आत्मचिन्तन करे।

सम्यक्त्व के दिव्य आचार का कथन करते हुए मैं आपसे यही कहना चाह रहा हू कि पाच इन्द्रियो के विषय मे रमण कराने वाला जो धर्म है उससे प्रभावित होकर कभी भी आत्म स्वरूप की पहचान कराने वाले, वीतराग धर्म से विमुख नहीं बने।

बन्धुओ ! जरा विचार करो कि सम्यक्दर्शन जो कि बहुत गहरा दर्शन है उस दर्शन की भूमिका यदि शुद्ध नहीं बनती है तो वह वीतराग प्रभु के अन्य गूढ तत्त्वो को भी नहीं समझ सकता। अत मैं घूम फिर कर इस विशाल व्यापक सम्यक्त्व का स्वरूप बताना चाह रहा हू और कहना चाह रहा हू कि सम्यक्त्व की भूमिका हमारी तभी शुद्ध बन सकती है, जब हम सम्यक्त्व के आठो आचारों की स्थिति को जीवन मे सम्यक्रूपेण विकसित करले।

मोटा उपाश्रय — 13 7 85
घाटकोपर बम्बई — सोमवार

मूल्यांकन करो वर्तमान का

वर्तमान का समय ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योकि अतीत का समय बीत चुका है, इसलिये उसका कोई अस्तित्व नही रह गया हे और भविष्य का समय अभी आया नही है और वह अपने लिए इस रूप मे आएगा भी या नही, यह भी निश्चित नही है। अत महत्त्वपूर्ण समय है तो वह वर्तमान का समय ही है।

वर्तमान का समय 'देहली दीपक न्याय से भूत एव भविष्य के समय को भी प्रकाशित करने मे समर्थ हो जाता है। यद्यपि अतीत का समय बीत चुका है। बीते हुए समय का अब क्या परिवर्तन होना है, किन्तु फिर भी बीता हुआ जीवन परिवर्तित हो सकता है। उदाहरण के रूप मे, क्यो न किसी व्यक्ति का अतीत का जीवन अन्याय, अनीति, अविवेक और कषाय के साथ बीता हो, लेकिन वही व्यक्ति जब सयम जीवन स्वीकार कर लेता है तो वह बीते हुए जीवन की विकृति को धोने के साथ भविष्य मे आने वाले अन्धकारमय जीवन को भी शुभ प्रकाश मे आलोकित कर लेता है।

आपने शास्त्र अन्तकृद्दशाग सूत्र के माध्यम से एक बार नही अपितु अनेक बार अर्जुनमाली के जीवन को सुना होगा, जो प्रतिदिन छ पुरुष और एक स्त्री को मारने वाला हत्यारा बन गया था। जिसका यह कार्य एक–दो दिन नहीं अपितु महीनो तक चला था। लेकिन जब उसे सुदर्शन श्रमणोपासक के साथ ही महाप्रभु का सान्निध्य प्राप्त हुआ कि उसके जीवन मे हठात् परिवर्तन आया।

जिसके विचार कषायो एव हिसक वृत्ति से भरे रहते थे, वे परिपूर्णत अहिसक बन गए। जिसके हाथ मे हर समय लोहमय भारी मुग्द्र रहता था जीवो को हनन करने के लिए, उसी के हाथ मे अहिसा का प्रतीक जीवो की

रक्षा करने वाला रजोहरण आ गया। जिसके मुख से हिसा की हुकार निकलती थी, जिसके कारण चरिन्दे ओर परिन्दे भी काप उठते थे और तो और राजगृह नगर के मुख्य द्वार बद करवा दिये गये थे, लोगो का आवागमन बद करवा दिया गया था, सम्राट श्रेणिक भी उसका कुछ नही कर सका था, उसके मुख पर वायुकाय के जीवो की रक्षा के लिए भी मुखवस्त्रिका सुशोभित होने लगी थी। उसका आमूलचूल जीवन बदल गया।

उस अर्जुनमाली की इस साधना ने उसके अतीत के जीवन को साफ करना प्रारम्भ किया और भविष्य के लिये सम्बद्ध हुए कर्म बन्धन को भी धोना प्रारम्भ कर दिया। अर्जुनमाली की कुछेक महिनों की साधना ने ही उसकी आत्मा को इस तरह से झकझोर दिया कि उसकी आत्मा का सारा का सारा कर्म कलिमल दूर हो गया और वह महाप्रभु से पहले ही मुक्ति मे जा बिराजे।

बन्धुओ ! यह है समय का सदुपयोग। जो आत्मा वर्तमान समय को पहचान कर अपने जीवन को शुभ कार्यों में नियोजित कर देती है तो उसका जीवन सफल बन जाता है। अतीत में चाहे जो कुछ अन्याय, अनीति अधर्म आदि कार्य किये हो किन्तु जब उसकी आत्मा उन सब कुछ को हेय समझकर उन्हे छोडकर अहिसक कार्यो में लग जाती है, अपने वर्तमान जीवन को सजा–सवार लेती है तो उसका भविष्य का जीवन भी सज–सवर जाता है।

आचाराग' सूत्र मे महाप्रभु ने उन भव्यात्माओ को यह स्पष्ट सकेत दिया है कि खण जाणाहि पडिए'। हे भव्य पुरुष ! तुम समय को पहचानो। जब तक समय के महत्त्व को नहीं समझोगे, तब तक अपने जीवन को सफल नहीं बना सकोगे। वर्तमान में ऐसे अनेक भाई–बहिन देखने को मिलते हैं जिन्हें समझाया जाता है कि आप अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण क्षणो को समझे और उन्हें सार्थक करने का प्रयास करे। जो समय व्यतीत हो चुका है वह पुन लाख प्रयत्न करने पर भी आने वाला नहीं है। उत्तराध्ययन सूत्र मे बतलाया है–

" जा जा वच्चइ रयणी न सापडिनियत्तइ।"

जो–जो समय व्यतीत हो चुका है, वह पुन आने वाला नहीं है। जो व्यक्ति धर्म कर लेता है वह अपनी व्यतीत हो रही दिन और रात्रियों को सफल बना लेता है। जो व्यक्ति अधर्म करता है वह व्यक्ति उन्हें खो देता है।

महाप्रभु के इस शाश्वत सत्य उपदेश को सुन करके भी कई भाई–बहिन यह कहते हुए पाये जाते है कि महाराज साहब ! अभी तो जवानी है कुछ मौज करले। जब बुढापा आयेगा तब धर्म ध्यान कर लेगे। लेकिन मैं उनको

पूछता हू कि क्या बुढापा आयेगा ? यह निश्चित हे कि एक घण्टे बाद मे क्या होने वाला है, यह भी निश्चित नही हे तो बुढापा निश्चित केसे हो सकता हे और बुढापा आ भी जाय तो क्या उस समय अच्छी तरह धर्म ध्यान हो सकेगा ? जिस बुढापे मे आप भौतिक सुख सुविधाए भी अच्छी तरह नहीं भोग सकते, उस बुढापे मे अच्छी तरह धर्म–ध्यान साधना भी केसे हो सकता हे। इसीलिए शास्त्रकारो ने कहा हे–

''जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ।
जाविदिया न हायई, ताव धम्म समायरे।''

बन्धुओ ! जब तक बुढापा न आवे शरीर मे किसी तरह की व्याधि न आवे, इन्द्रियाए क्षीण न हो, तब तक धर्म का आचरण करलो। क्योकि अगर शरीर मे रोग भी आ गया तो फिर साधना सही ढग से नही हो सकेगी।

इन सब अवस्थाओ को देखते हुए वर्तमान के इन अमूल्य क्षणो को सार्थक करना आवश्यक है। जो बीत गया है, उसे भूल जाइये ओर जो भविष्य मे आ सकता है, उसके ताने–बाने बुनना छोड दीजिये। इसमे समय न लगाकर वर्तमान मे क्या करना है, इस ओर अपने जीवन की सारी शक्ति को लगा देना आवश्यक है। शास्त्रकारो ने समय' को समझने वाले को पडित कहा है। जो समय को न समझे और केवल पुस्तकीय ज्ञान को लेकर चले वह पडित नही हो सकता। समय की स्थिति को समझने के लिए बडे–बडे योगियो ने गुफाओ मे जाकर ध्यान लगाया था। लेकिन सभी साधक उसमे सफल नही हो सके। समय को सफल बनाने के लिए सबसे पहले अपने मन को परिष्कृत करना आवश्यक है। यदि मन मिथ्यात्व से अनुरजित है तो उसका जीवन कभी भी सफल नही हो सकता। मिथ्यात्व अनुरजित भले वह कितनी कठोर से कठोर साधना करले पर वह अपने जीवन को सफल नही बना सकता। सबसे पहले आत्मा मे सम्यक्त्व की स्थिति आना आवश्यक है। सम्यक्त्व की स्वरूप व्याख्या तो आप लोग समझ ही गये होगे। जैसे कि शास्त्रकार बतलाते हैं –

अरहतो महदेवो, जावज्जीवाए, सुसाहूणो गुरुणो।
जिण पण्णत्त तत्त इह सम्मत्त मए गहिय।।

सुखदेव अरिहत, सुगुरु निर्ग्रन्थ, सुधर्म अहिसामय पर निश्चित श्रद्धान होना सम्यक्त्व है।

स्याद्वाद और विचिकित्सा

(सम्यक्त्व का तृतीय आचार)

आत्मा की अत्यन्त पवित्र दशा को प्राप्त करने के लिये वीतराग देव के सिद्धान्त को शास्त्रीय वाणी के माध्यम से सुने। स्थूल रूप से तो सभी जान रहे हैं कि वीतराग देव, जिन्होने केवलज्ञान प्राप्त कर जो सिद्धान्त बताये हैं, वे हमारे जीवन को सरस बनाने वाले एव बडे उपयोगी हैं, पर वे सिद्धान्त किस रूप मे जीवन मे उतारे जाए, कैसे उनकी गहराई मे हम उतर सके, इस विषयक पात्रता अर्जित करना अति आवश्यक है।

वैसे एक आत्मा के स्वरूप मे सभी आत्माओ के स्वरूप का समावेश हो जाता है। इसीलिये ठाणाग सूत्र मे प्रभु महावीर ने कहा कि "एगे आया' अर्थात् सभी आत्माओ का आत्मीय स्वरूप एक समान है, पर विभाव पर्याय से आत्मा की जुदी-जुदी अवस्थाए हैं। जैसे एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय, पचेन्द्रिय आदि तथा नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवता आदि-आदि। एक स्वरूप मे स्थित जीवो के अनन्त पर्याय हैं। अस्तित्व की दृष्टि से सभी आत्माओ का अस्तित्व अलग-अलग होने से, आत्माए अनन्तानन्त हैं। सभी स्थिति मे सभी मे आत्मा अलग-अलग है तो प्रश्न उपस्थित होता है कि अनन्त आत्माओ को एक कैसे कहा ? ऐसी बातो को समझाने के लिये प्रभु ने नयो का स्वरूप बताया है। अलग-अलग अपेक्षाओ का कथन किया है। उनसे जो वस्तु जैसी है, उसे उसी रूप मे समझा जा सकता है। ऐसे विधान से ही नयो का स्वरूप हमारे समक्ष आ सकता है।' आत्मा एक है' यह सग्रह नय की अपेक्षा से कथन है, पर "एक" कहने से समग्र जाति का बोध नहीं हो सकता है। अत "आत्मा एक भी है। आत्मा अनेक भी है' इन

दोनो वाक्यो को स्याद्वाद अथवा नयवाद का सहारा लेकर ही समझा जा सकता है। मनुष्य जाति मे जो कृत्रिम अनेक जातिया हैं उनका तथा मानव–मानव का पृथक–पृथक रूप समझने के लिये व्यवहार नय की अपेक्षा रखनी पडती है और सभी का एक स्वरूप समझने के लिए निश्चय नय का सहारा लेना पडता है। जैसे–एक ही पुरुष अपने लडके की अपेक्षा पिता और अपने पिता की अपेक्षा पुत्र कहलाता है तो यहा पर वस्तु स्वरूप को समझने के लिये नय का सहारा लेना अति आवश्यक है। द्रव्यार्थ से पुरुष एक ही है, पर पर्यायार्थ से वही पुरुष अलग–अलग धर्मो से अनेक रूपो मे हमारे सामने आता है।

'जेन धर्म का सिद्धान्त वैज्ञानिक सिद्धान्त है''। इसका तात्पर्य यह नहीं कि विज्ञान ने इस सिद्धान्त को प्ररूपित किया वरन् केवलज्ञान द्वारा जो सिद्धान्त प्ररूपित किये गये, वे वैज्ञानिक प्रयोगों मे भी सौ टच खरे उतरते हैं।

स्याद्वाद को समझने के लिये रूपक सामने रखिये– जैसे जब बिलौना किया जाता है, तब एक रस्सी को खींचकर दूसरी रस्सी को ढीली छोडनी पडती है, पर उस ढीला छोडी हुई रस्सी को हाथ मे पकडे रहना पडता है, तभी मक्खन निकल सकता है। इसी प्रकार प्रभु महावीर के सिद्धान्त जो स्याद्वाद रूप हैं, अनेकान्तवाद को लिये हुए हैं, उनमें, जिसका जब कथन किया जाता है वह उस समय मुख्य रूप से रहता है और अन्य भी सभी उस समय उसमे विद्यमान रहते हैं, पर ढीली छोडी हुई रस्सी के समान गौण रूप मे। हर वस्तु मे हर धर्म पृथक पृथक समय मे अलग–अलग रूप से कथित होते रहते हैं पर सत्ता रूप से विद्यमान सभी धर्म उसमे एक साथ रह सकते हैं।

जब तक नय का स्वरूप समझ मे नहीं आता, वहा तक किसी का भी स्वरूप समझ मे नही आ सकता। व्यवहार नय से भिन्न–भिन्न सभी जातियो का सग्रह हो जाता है। सम्यग्दर्शन का आत्मस्वरूप का मक्खन यदि जैन दर्शन के सिद्धान्तो का बिलौना करते हुए हमे निकालना है तो नय रूपी रस्सी लेकर ही निकाला जा सकेगा और वह भी बिलौना की विधि से, नयो का बिलौना करते हुए ही निकाल सकेगे। एक ही नय की रस्सी को खींचने से काम नहीं चलेगा। आज कई विद्वान् मुक्त कठ से प्रशसा करते हैं अपनी श्रुतियो के अनुरूप अनुभूतियो के आधार पर, कि जैन धर्म से भिन्न अन्य कोई भी धर्म श्रेष्ठ नहीं है। आचार्य विनोबा के कथन का भाव हे कि मेंने जैन धर्म का अध्ययन किया तब मुझे आत्म सतुष्टि हुई और अतिम समय मे उन्होने जैन विधि की तरह सथारा ग्रहण किया था।

नोखामडी मे एक बार का प्रसग है—राजस्थान के मुख्य मत्री हरिदेव जोशी व्याख्यान मे उपस्थित हुए थे और व्याख्यान सुनने के पश्चात् कहने लगे कि 'दुनिया मे जितने भी धर्म हैं, उनमे से सर्वश्रेष्ठ धर्म स्याद्वादी जैन धर्म है। एक दृष्टान्त उन्होने दिया कि एक सेठ के पास एक आगन्तुक भाई आया और पूछा कि सेठ साहब कहा हैं ? कर्मचारी से उत्तर मिला कि सेठ साहब ऊपर हैं। ऊपर गया तो उत्तर मिला कि सेठ सा नीचे हैं। नीचे आया तो सेठ सा वहा नही थे। उसके मन मे उथल—पुथल मच गई कि बात क्या है ? मुझे नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे क्यो भेजा जा रहा है ? वह खीझ उठा और पूछने लगा कि क्या बात है ? कोई कहता है सेठ सा नीचे हैं और कोई कहता है कि सेठ सा ऊपर हैं। पर सेठ सा तो दोनो जगह मे से कहीं नही हैं। तब किसी सुज्ञ व्यक्ति ने उसके तूफान को ठडा करते हुए बडी विनम्रतापूर्वक कहा कि भाई ! दोनो की बात सही है। कारण कि सेठ सा बीच वाली मजिल मे हैं। वह मजिल नीचे की अपेक्षा ऊपर ओर ऊपर की अपेक्षा नीचे है। इसी प्रकार स्याद्वाद का रूपक सामने रखकर वे कहने लगे कि वस्तुत ऐसा धर्म अन्यत्र कही नही है। परन्तु जैन— धर्म के अनुयायी आज क्या कर रहे हैं ? यह थोडा विचारणीय प्रश्न है। यदि आज जैन—धर्म को पालने वाले, सम्यक्त्वी कहलाने वाले इस स्याद्वाद की दृष्टि को अपना कर प्रत्येक तत्त्व की गहराई मे पहुचे तो वीतराग देव के प्रत्येक सिद्धान्त की गहराई, उनकी थाह, वे पा सकते हैं।

मैं जो सम्यक्त्व के आठ आचार बता रहा था, उसमे तीसरा आचार "निर्विचिकित्सा" है अर्थात् धर्म करणी के फल मे सदेह नहीं करना।

मनुष्य की चितन की शक्ति का केन्द्र मस्तिष्क है। अत अपनी बुद्धि को निर्मल बनाकर, अन्तर्मुखी बनाकर हम सोचे कि जो धर्म क्रिया करते हैं, वह किसलिये करते हैं ? क्या ससार के लिये करते हैं अथवा निज स्वरूप को साधने के लिये क्रिया करते हैं ? क्रिया मन से भी होती है। वचन से भी होती है और काया से भी क्रिया होती है। पर ये सारी क्रियाये हमारे निज स्वरूप को साधने के लिये ही हो। फल की कभी आकाक्षा मत करो। आप आध्यात्मिक साधना के लिये क्रिया कर रहे हैं तो जरूर आपको आध्यात्मिक फल प्राप्त होगा, शाति मिलेगी। आत्मा की अनूठी शक्तियो की उपलब्धि होगी। पर कभी भी धर्म क्रिया करते हुए फल की आकाक्षा नहीं करनी चाहिये एव कभी भी फल अवाप्ति विषयक शका भी नहीं करनी चाहिये।

ज्ञाता सूत्र मे दो साथियो का रूपक आया है। दो साथी घूमने के लिए जगल मे गये। वहा देखा कि दो मयूर नृत्य कर रहे थे। उनका नृत्य देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। सोचा कि क्या ही अच्छा हो यदि ये मयूर अपने घर मे हो ओर इनका नृत्य हमे प्रतिदिन देखने को मिले। ऐसा सोच ही रहे थे, तभी उन्हे समीपस्थ स्थल मे मयूर के दो अण्डे पडे हुए दिखाई दिये। उन्हे देखकर दोनो बडे हर्षित हुए और उन्हे लेकर अपने घर आ गये तथा एक–एक अण्डे की दोनो अपने–अपने घर मे प्रतिपालना करने लगे। उन दोनो मे से एक साथी सोच रहा था कि इस अण्डे की मैं सावधानीपूर्वक परिपालना करूगा तो एक दिन जरूर इसमे से मयूर का जन्म होगा और उसका पालन कर मैं नित्य प्रतिदिन उसका मनोहारी रूप देखा करूगा। लेकिन दूसरा मित्र जो बडा चचल और उत्सुक था, वह हमेशा उसे उठाता और घूमता, फिरता देखता कि अण्डा जीवित है या नही ? बार–बार हाथ मे लेने से वह अण्डा समय से पहले फूट जाता है और जिस मयूर के जन्म के लिये वह लालायित बना हुआ था उस मयूर का जन्म न होने से शकाग्रस्त बन जाता और विचारने लगता है कि ' अरे–रे ! मैं ठगा गया। यह अण्डा तो मयूर का नही था, अन्यथा क्या मुझे मयूर की प्राप्ति नही होती ? उधर दूसरे मित्र ने पूर्ण विश्वास के साथ सम्यकरूपेण उस मयूरनी के अण्डे की परिपालना की और समय आने पर मयूर का जन्म उसके आगन मे हुआ। उस मयूर को पाकर वह बडा प्रसन्न हुआ। प्रफुल्लित बना। उसे दाना–पानी खिला–पिलाकर बडा किया ओर उससे अपनी इच्छापूर्ति करने लगा ।

एक दिन, जब वह दूसरा साथी उसके घर आया और वहा मयूर को नृत्य करते हुए देखकर बडा आश्चर्यचकित हुआ ओर सारी हकीकत पूछी। पूछने पर जाना कि वह अण्डा मयूर का ही था, पर चचलता और उत्सुकता के कारण ही नष्ट हो गया। यह ज्ञातकर उसे बहुत पश्चाताप हुआ।

बन्धुओ ! यह तो एक रूपक है। चाहे वह शास्त्र मे किसी भी रूप मे आया हो पर इससे यह शिक्षा लेनी है कि धर्म करणी करते हुए पहली बात तो यह है कि हम कभी भी फल की आकाक्षा नहीं करे तथा दूसरी बात फल के विषय मे कभी शकाशील नहीं बने। जैसे कि मैं अमुक धर्म–कार्य कर रहा हू, उसका फल मुझे मिलेगा या नही ?

मैं जब पढता था तब का एक प्रसग हे–एक दिन मेरे सामने ऐसा जटिल प्रश्न आया जिसका मे हल नहीं कर पा रहा था। तब मैंने सहज ही उपवास किया। उपवास वाले दिन तो शरीर शिथिल बना रहा पर पारणे के

दिन एकाएक जटिल प्रश्न का समाधान हो गया। एक उपवास मे भी आत्मा इतनी निर्मल बन सकती तो फिर लम्बी तपश्चर्या के द्वारा कितना अधिक फल प्राप्त होता है ? अत इस विषय मे कभी शका नही करनी चाहिये और न ही उसके फल के विषय मे सदेह ही करना चाहिये। तप आदि सभी क्रियाओ का फल अवश्य प्राप्त होता है। जिसका सम्यग्दर्शन भलीभाति निर्मल है, वह कभी भी धर्म–कार्य करता हुआ न तो फल की आकाक्षा करता है और न ही उसके फल मे शकाशील बनता है। इस प्रकार वह अपने सम्यक्त्व के तीसरे आचार का सम्यक्रूपेण परिपालन करता है। कहने का सार यही है कि इस "निर्विचिकित्सा आचार" से यह शिक्षा जीवन मे ग्रहण करे कि आपकी प्रत्येक धर्म–क्रिया, आत्म–शुद्धि के हेतु ही हो, और यह सुनिश्चित है कि उसका सुमधुर फल अवश्य ही अवाप्त होगा।

मोटा उपाश्रय — 15–7–85

घाटकोपर, बम्बई — सोमवार

सम्यक्त्व का चतुर्थ आचार– अमूढ़ दृष्टि

वीतरागता से परिपूर्ण केवली भगवान् जिन कहलाते हैं और उनके भी इन्द्र जिनेन्द्र कहलाते हैं। इस जिनेन्द्र शब्द से तीर्थंकर भगवान् का ग्रहण होता है। तीर्थंकर देव चतुर्विध सघ की स्थापना करके भव्यो के कल्याणार्थ मार्ग प्रशस्त बनाते हैं। तीर्थंकर भगवान् के अमृतोमय उपदेश सागरवत् गहन एव विस्तृत हैं। उन्हे गागर मे भरने तुल्य ग्यारह अग और बारह उपाग आदि शास्त्र हैं।

ग्यारह अग मे सूचित, कथन मान्य है अत ग्यारह अग कसौटी है। जेसे सोना कसौटी पर खरा उतरता है, ठीक वैसे ही ग्यारह अग की कसौटी पर जितना भी कथन लेखन खरा हो, वह सभी मान्य है, जो कि आत्म कल्याणकारी होता है।

भगवती सूत्र बहुत बडा शास्त्र है। इसमे सक्षिप्त से साधना का स्वरुप रत्नत्रय की आराधना बताई है। उसी रत्नत्रयाराधना को समझकर हम सयमभाव की आराधना मे लगे हुए हैं। उस आराधना मे सम्यकज्ञान दर्शन और चारित्र ये तीन रत्न समाहित हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के मोक्षमार्ग अध्ययन मे णाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा' कहा है। यहा सम्यकज्ञान पहले बताया है। कई ग्रथो मे पहले सम्यक्दर्शन बताया हे जैसे कि तत्त्वार्थ सूत्र मे पहले सम्यक्दर्शन का कथन किया है, यथा– सम्यकदर्शन ज्ञान चारित्रणि मोक्षमार्ग । यहा विचारणीय प्रश्न यह उपस्थित होता हे कि पहले ज्ञान को समझे या पहले दर्शन को ? शास्त्र मे जब ज्ञान को पहला नम्बर दिया है तो पहले ज्ञान ही मानना उपयुक्त होगा। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा गया है 'णाणस्स सव्वस्स पगासणाए अन्नाणमोहस्स विवज्जणाए।

रागस्स दोसस्स य सखाएण, एगन्तसोक्खसमुवेई मोक्ख''। आत्मा की जो अवस्था है, उस अवस्था मे ज्ञान आत्मा का गुण है। गुण, गुणी, अभेद सम्बन्ध से चलते हैं। ज्ञान आत्मा के साथ रहता है, पर ससारी आत्मा को जब तक मोक्षमार्ग का ज्ञान नही होता, तब तक वह अज्ञान अवस्था मे रहती है। ज्ञान, अज्ञान के अलग–अलग भेद बताये हैं। यहा आत्मा के मूल गुण की दृष्टि से ज्ञान नम्बर पहला है और दर्शन नम्बर बाद मे है, क्योकि पुत्र पैदा होने के बाद ही सुपुत्र–कुपुत्र का निर्णय होता है। ज्ञान आत्मा का पुत्र है। जब वह ज्ञान आगे बढता है, प्रगति करता है, तब सम्यग्दर्शन की स्थिति जीवन मे प्राप्त होती है। उसी से सुज्ञान तथा कुज्ञान का भेद स्पष्ट होता है, क्योकि पुत्रेत्पत्ति के साथ ही उसके कुपुत्र–सुपुत्र का निर्णय नही होता। यह निर्णय तो उसके आचरण से होता है। वैसे ही ज्ञान की उत्पत्ति पहले होती है। उसके बाद ही उसके आचरण से सम्यक्दर्शन या मिथ्यादर्शन की प्राप्ति होने पर सुज्ञान–कुज्ञान का निर्णय होता है। इस सुज्ञान से सुश्रद्धा आती है। अज्ञान जब तक रहता है, तब तक मिथ्या श्रद्धा (कुश्रद्धा) रहती है। ज्ञान को सुज्ञान बताने वाला सम्यग्दर्शन है। अत उमास्वाति ने दर्शन को पहले कहा। इसमे भी कोई विरोध नही है। अपेक्षा भेद को लेकर नयवाद के सहारे से ही पहले और पीछे का कथन है, अत इस विषयक अविरोध को समझने के लिए नय दृष्टि को समझे।

वीतराग देवो के वचनो पर श्रद्धा आ गयी तो दुनिया भर का सारा ज्ञान–विज्ञान सम्यक् हो जायेगा। यदि दुनिया भर का बाहरी ज्ञान है, सारे शास्त्र कण्ठस्थ कर लिये पर सब कुछ होते हुए भी वीतराग देव के वचनो पर एक निष्ठा–आस्था नही है, तो उसका ज्ञान सुज्ञान नही कहला सकता। अभवी भी बाहरी रूप मे साधु बस सकता है। गौतम स्वामी जेसी करणी कर सकता है। फिर भी वह कुज्ञानी है। यद्यपि वह अपने उपदेश से कई भव्य मुमुक्षुओ को प्रतिबोधित भी कर देता है। कई आत्माए उसके निमित्त से मोक्ष भी प्राप्त कर लेती हें, पर वह खुद मोक्ष नही जा सकता है। इसका कारण है कि उसकी वीतराग वाणी पर सच्ची श्रद्धा नही हे। वीतराग वाणी को, शास्त्र के सिद्धान्त को ज्ञानी ओर अज्ञानी दोनो ही सुन सकते हें। दोनो पढ सकते हें पर पढने–पढने मे सुनने–सुनने मे अन्तर है। जो अटूट श्रद्धा के साथ अनन्य भाव से शका आदि पाचो दोषो को टालकर, शुद्ध भावना के साथ चाहे कम पढे, कम सुने या ज्यादा पढे, ज्यादा सुने वह सम्यग्दृष्टि हे। इसके विपरीत आचरण करने वाला मिथ्यादृष्टि हे।

वुद्धि से नही। अम्बडजी इधर विचारने लगे कि मेरी वेशभूषा को देखकर उसे कुछ सशय हो रहा है अत उसके सशय का परिहार करते हुए अम्बडजी ने भगवान् महावीर के द्वारा कही हुई सारी हकीकत उसके सामने स्पष्ट की और कहा–में तुम्हारे दर्शन करके धन्य हुआ। श्रावक की कितनी धर्म वत्सलता है। पर आज क्या स्थिति है ? कहीं इससे विपरीत तो नही है ?

सवाईमाधोपुर के पास एक छोटा सा गाव है। जैन श्रावको के घर हैं। वहा पर जब स्वर्गीय आचार्य श्री जी पधारे तो जयपुर के बडे–बडे जौहरी लोग वहा आये। गाव वाले इतने खुश हुए कि उन लोगो की इतनी अधिक आवभगत की कि जयपुर वाले मोटे–मोटे सेठ सभी बाग–बाग हो गये, और आचार्य भगवन् के समक्ष उनकी साधर्मी वात्सल्यता की भूरि–भूरि प्रशसा की पर उस छोटे से गाव वाले जब जयपुर आये तो उन सेठों ने क्या सत्कार–सम्मान किया ? यह बहुत विचारणीय स्थिति है। सत्कार–सम्मान करना तो दूर रहा पर उन सेठ लोगो ने आख उठाकर भी उनकी तरफ नही देखा होगा। कहा है सम्यग्दृष्टि भाव ? कहा है साधर्मी वात्सल्यता ? उन्होने जो उन सेठो का अपूर्व सत्कार सम्मान किया, उसे भी वे भूल बैठे। आज क्या कुछ स्थितिया बन रही हैं–यह सामने है। भेदभाव की नीति ने पैर जमा दिये हैं। यह जो पानी यहॉ बरस रहा है, वह पहाड पर भी उतना ही बरसता है। चट्टानो पर भी मखमली दूब पर भी। यह वृष्टि भेदभाव नही रखती। वास्तव मे यही सच्चा सम्यग्दृष्टि भाव है। प्राकृतिक दृश्यो से भी शिक्षा मिल रही है कि समभाव रखा जाय। दृष्टि को समीक्षण बनाई जाय। सुलसा मे जैसा सम्यग्दर्शन था वैसा हजारो लाखो मे भी नहीं मिल सकता। सुलसा अम्बडजी को नमस्कार करने लगी पर उन्होने सुलसा को मना कर दिया ओर स्वय श्रद्धा विभोर भावो के साथ झुक गये और स्व को धन्य–धन्य कृत्य–कृत्य महसूस करने लगे। आप सभी अपने सम्यग्दृष्टि भाव पर चितन मनन करे और सम्यक्त्व की नीव को सुलसावत् मजबूत बनाने का आत्म साहस, आत्म पुरुषार्थ जागृत करे। जरुर हमारा जीवन भी मगलमय बनेगा। इन्हीं शुभ भावनाओ के साथ ।

गोटा उपाश्रय — 16–7–85

घाटकोपर बम्बई — मगलवार

श्रावक थे। उत्कृष्ट श्रावक वर्ग के आराधक वीतराग वाणी पर अटूट श्रद्धा रखने वाले थे। लब्धि सम्पन्न भी थे, जिसके जरिये से जगल की जगह नगर और नगर की जगह जगल दिखाने मे समर्थ थे। वे अम्बड सन्यासी एक वक्त भगवान् महावीर से पूछते हैं कि आपने जिस प्रकार मोक्ष मार्ग बताया और जिस प्रकार सुश्रद्धा का रूप बताया, ऐसी सुश्रद्धा को पालने वाले अभी कौन हैं ? तब प्रभु महावीर ने फरमाया कि सुलसा नामक श्राविका जो भले नारी जाति मे है, पर उसके जीवन मे सम्यक्त्व इतना प्रगाढ है कि उसकी दृष्टि को कोई भी विमूढ नहीं बना सकता। वह किसी के प्रभाव मे नही आती। अम्बडजी के जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि क्या नारी जाति मे इतनी ठोसता आ सकती है ? जबकि नारी की प्रकृति चचल, कोमल और जिज्ञासुवृत्ति को लिये हुए होती है, अत मुझे सुलसा की दृढता की परीक्षा करनी चाहिये। जहा सुलसा रहती थी, उस नगरी मे अम्बडजी पहुचे। वैक्रिय लब्धि से ब्रह्मा का रूप बनाया। नगर मे हो हल्ला मच गया। लोग देखने के लिए उत्सुक हो उठे। सब गये पर वह श्राविका सुलसा नही गयी। कई बहिनो ने उसको आग्रह भी किया कि देख तो ले, देखने मे क्या हर्ज है, पर उसने कहा–यह इन्द्रियो का विषय है इसे क्या देखना ? मुझे तो आत्मा को देखना है। उसका समीक्षण करना है। आत्म सौन्दर्य के दर्शन करने हैं। अम्बडजी ने जब सुलसा को नही देखा तो दूसरे दिन अम्बडजी ने विष्णु का रूप बनाया। दुनिया उलट पडी, पर वह नहीं गई। तब अम्बडजी ने सोचा इसका श्रद्धान तीर्थंकर देवो के प्रति है। अत मैं तीर्थंकर का रूप बना लू। तीर्थंकर का रूप बनाया। 25वे तीर्थंकर के रूप मे मशहूर हो गये पर सुलसा दृढ रही। इस अवसर्पिणी काल मे तीर्थंकर 24 ही होते हैं। ऐसी वीतराग वाणी है, और वीतराग वाणी के प्रति मेरी अचल आस्था है। अत वह 25वे तीर्थंकर के दर्शन करने नहीं गई। अम्बडजी के तीर्थंकर रूप बनाने पर भी सुलसा दर्शन करने नही गई, तब उन्हे विचार आया। ओह ! कितनी निष्ठा है, कितनी दृढ आस्था है। अब भी विमूढ नही बनी। मुझे उसके दर्शन करने चाहिये। वे सन्यासी के रुप मे उसके घर पहुचे। श्रावकोचित आचार का पालन करते हुए, निस्सिही–निस्सीही शब्द का उच्चारण किया। सुलसा चौंकी। सोचा कोई श्रावकजी मेरे आगन मे पधारे हैं। साधर्मी भाई का स्वागत–सत्कार, सम्मान करना मेरा फर्ज है। वात्सल्य भाव दर्शाना मेरे सम्यग्दृष्टिपने का आचार है। वह उठी ओर बाहर आयी पर सन्यासी को देखकर रुक गई और सोचा–मानवता के नाते मुझे सत्कार अवश्य करना है, पर श्रावक का सम्बन्ध लेकर श्रावकोचित विनय की

बुद्धि से नहीं। अम्बडजी इधर विचारने लगे कि मेरी वेशभूषा को देखकर उसे कुछ सशय हो रहा हे अत उसके सशय का परिहार करते हुए अम्बडजी ने भगवान् महावीर के द्वारा कही हुई सारी हकीकत उसके सामने स्पष्ट की और कहा–मैं तुम्हारे दर्शन करके धन्य हुआ। श्रावक की कितनी धर्म वत्सलता हे। पर आज क्या स्थिति है ? कहीं इससे विपरीत तो नहीं है ?

सवाईमाधोपुर के पास एक छोटा सा गाव है। जैन श्रावको के घर हैं। वहा पर जब स्वर्गीय आचार्य श्री जी पधारे तो जयपुर के बडे–बडे जौहरी लोग वहा आये। गाव वाले इतने खुश हुए कि उन लोगो की इतनी अधिक आवभगत की कि जयपुर वाले मोटे–मोटे सेठ सभी बाग–बाग हो गये और आचार्य भगवन् के समक्ष उनकी साधर्मी वात्सल्यता की भूरि–भूरि प्रशसा की पर उस छोटे से गाव वाले जब जयपुर आये तो उन सेठों ने क्या सत्कार–सम्मान किया ? यह बहुत विचारणीय स्थिति है। सत्कार–सम्मान करना तो दूर रहा पर उन सेठ लोगो ने आख उठाकर भी उनकी तरफ नहीं देखा होगा। कहा हे सम्यग्दष्टि भाव ? कहा है साधर्मी वात्सल्यता ? उन्होने जो उन सेठो का अपूर्व सत्कार सम्मान किया उसे भी वे भूल बैठे। आज क्या कुछ स्थितिया बन रही हैं–यह सामने है। भेदभाव की नीति ने पैर जमा दिये हैं। यह जो पानी यहाँ बरस रहा है वह पहाड पर भी उतना ही बरसता है। चट्टानो पर भी मखमली दूब पर भी। यह वृष्टि भेदभाव नहीं रखती। वास्तव मे यही सच्चा सम्यग्दृष्टि भाव है। प्राकृतिक दृश्यो से भी शिक्षा मिल रही है कि समभाव रखा जाय। दृष्टि को समीक्षण बनाई जाय। सुलसा मे जैसा सम्यग्दर्शन था वैसा हजारो लाखो मे भी नहीं मिल सकता। सुलसा अम्बडजी को नमस्कार करने लगी, पर उन्होंने सुलसा को मना कर दिया और स्वय श्रद्धा विभोर भावो के साथ झुक गये और स्व को धन्य–धन्य कृत्य–कृत्य महसूस करने लगे। आप सभी अपने सम्यग्दष्टि भाव पर चितन, मनन करे और सम्यक्त्व की नीव को सुलसावत् मजबूत बनाने का आत्म साहस, आत्म पुरुषार्थ जागृत करे। जरुर हमारा जीवन भी मगलमय बनेगा। इन्हीं शुभ भावनाओ के साथ ।

मोटा उपाश्रय 16–7–85

घाटकोपर बम्बई मगलवार

17

उववूह

(सम्यक्त्व का पाचवा आचार)

वीतराग देव द्वारा दिया गया जो पवित्र उपदेश है, उसकी तुलना करने योग्य, इस विश्व मे कोई उपदेश नही है, कारण कि उन्होने अपूर्ण अवस्था मे न कोई विशेष उपदेश दिया एव न चार तीर्थ की स्थापना की। तीर्थंकर देव स्वतत्र रूप से साधना पथ पर अवतीर्ण होते हैं, एव साधना की परिपक्वता होने पर केवल ज्ञानादि अनन्त चतुष्टय सम्पन्न बन जाते हैं। तदनन्तर भव्यो के उद्धार हेतु निस्पृह होकर केवलालोक की अनुभूतिपूर्वक उपदेश प्रदान करते हैं। वह उपदेश त्रिकाल अबाधित एव शाश्वत स्वरूप अभिव्यक्त करने वाला होता है।

अनन्त प्रकाश स्वभावी तीर्थंकरो के द्वारा अमृतोपम आध्यात्मिक निर्झर का प्रवाह प्रवाहित हुआ। गौतमादि गणधरो ने उसे ग्रहण किया एव सुधर्मा स्वामी आदि पवित्र आचार्य परम्पराओ से आज भी वह आत्मकल्याण हेतु पर्याप्त मात्र मे समुपलब्ध है। आवश्यकता है, उसे आत्मसात् करने की। यह तभी सम्भव हे, जबकि वीतराग देव द्वारा प्ररूपित तत्त्वो पर अटूट आस्था के साथ श्रुत धर्म एव चारित्र धर्म को जीवन मे साकार रूप दे। श्रुत धर्म मे सम्यग्दर्शन एव सम्यग्ज्ञान का समावेश है। चारित्र धर्म मे सम्यग्चारित्र एव सम्यग्तप का समावेश हे।

सम्यक्दर्शन जीवन की एक ऐसी पवित्र भूमिका हे कि जिस पर आसीन होकर ऊर्ध्वगामी बनने का स्वर्णिम अवसर समुपलब्ध हो सकता है। उसी सम्यक्दर्शन का प्रकरण चल रहा है। सम्यग्दर्शन भी अपने सम्यक्लक्षणादि के साथ आचार सहिता से व्यवस्थित जीवन मे अभिव्यक्त हो सकता है।

यहा आचार सहिता का तात्पर्य सम्यक्दर्शन से सम्बन्धित आठ आचारो से है। उनमे से चार आचारो के विषय मे पूर्व के दिना मे कुछ विवेचन प्रस्तुत किया गया। आज पाचवा आचार का प्रसग समुपस्थित है। पाचवा आचार है—उववूह जिसे उपवृहण भी कहा जा सकता हे। उपवृहण अर्थात् गुणवान पुरुषो के गुणा का प्रगटीकरण करना। गुणी पुरुषो के विद्यमान गुणो का कथन करने से सद्गुणो की अभिवृद्धि होती हे। व्यक्ति मे जब तक अपूर्ण अवस्था रहती है, तब तक गुण व अवगुण न्यूनाधिक मात्र मे यथास्थान प्राय पाये जाते हें। उनके गुणो को सन्मुख रखकर कथन करने पर जिस व्यक्ति के गुणो का कथन किया जा रहा है, उसमे अपने गुणो को अधिक बढाने की स्फुरणा पैदा होती है, आर वह उसी कार्य मे सतत प्रयास करने लगता है एव स्वय के आइने मे स्वय को देखने लगता हे, जिससे स्वय के दुर्गुण उससे प्राय अविदित नही रह पाते ओर वह उन दुर्गुणो को स्वय देख—देख करके खिन्नता का अनुभव करता है ओर अपने आपको गुणमय बनाने का भरसक प्रयत्न करता है। यह सम्यग्दृष्टि का पाचवा आचार गुणो को बढाने मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

कई सज्जन सामायिक करके बेठते हैं और अपनी शक्ति तथा अनुभव एव ज्ञान की मात्र के अनुसार सामायिक की परिपालना करने की भावना रखते हैं। किन्तु वे जितनी मात्र मे सामायिक का स्वरूप अभिव्यक्त करना चाहिये, उतनी मात्र मे कर नही पाते। न उतनी मात्र मे जीवन मे रूपान्तरण ही ला पाते हैं। उनके इस व्यवहार का देख कर कई पुरुष समालोचना करने लगते हैं। उनमे रहने वाले कुछ दोषो का उद्भावन कर यह प्रगट करना चाहते हैं कि ऐसी सामायिकादि मे क्या पडा ? ये सामायिक करने वाले लम्बे समय से सामायिक कर रहे हैं किन्तु अपने जीवन को सस्कारित नही कर पाये। इनके जीवन मे कुछ रूपान्तरण नहीं आया। इसकी अपेक्षा हम अच्छे हैं। जो सामायिक का प्रदर्शन न रखकर जीवन को ठीक रखते हैं, ऐसा कथन करने वाले पुरुष सम्यक्त्व के आचार को नही जानने वाले होते हें और इस पाचवे आचार के अभाव मे वे सामायिक करने वालो के दुर्गुणा को ही अभिव्यक्त करते हुए उनको खिन्न करना चाहते हैं। इससे गुणो की वृद्धि का प्रसग तो नही रहता किन्तु अवगुणो को ही प्रश्रय मिलता हे। अन्य भी कोई पुरुष इस प्रकार के कथन का श्रवण करता है तो वह जो सद्गुण प्राप्ति के लिये सामायिकादि साधना को प्रारम्भ की भावना रखता था वह भी अपनी भावना को गौण करके वैसे की निन्दा करने वाले व्यक्ति की मडली मे अपने

आपको सलग्न कर लेता है और जिन पुरुषो ने कुछ साधना प्रारम्भ की है उनमे भी कई कच्चे मस्तिष्क वाले व्यक्ति छोड बैठते हैं। दुर्गुणो का कथन करने से दुर्गुणमय वातावरण बनता है जो कि प्राणियो के लिए अकल्याणकारी अहित-स्वरूप होता है। दुर्गुण का कथन करने वाला व्यक्ति सही सम्यक्त्व आचार के बोध के अभाव मे अपनी स्वय की कमजोरी को आच्छादित करने के लिये ऐसा कथन करता है। वह अपनी कमजोरी को सरलतापूर्वक स्वीकार करने मे स्वय के अह को ठेस पहुचाना समझता है और दुनिया मे जो अपवाद है कि ये सामायिकादि धर्म-ध्यान नही करते उस अपवाद को मिटाने के लिए धर्म-ध्यान करने वालो पर दोषो का प्रगटीकरण करता है। यह मानव जीवन की बहुत बडी कमजोरी है जिसको निकालना प्रत्येक व्यक्ति के बूते की बात नही है। कोई विशिष्ट महानुभाव ही स्वय की त्रुटि का स्वीकार करता हुआ अन्यो के सद्‌गुणो का कथन कर सद्‌वायु मण्डल का निर्माण करता हुआ, साधना पथ पर अग्रसर न होने वाले पुरुषो को भी अग्रसर होने की प्रकारान्तर से प्रेरणा प्रदान करता है। यह कार्य सम्यक्त्व के इस पाचवे आचार का जीवन मे भलीभाति स्थान देने वाले ही कर सकते हैं।

चतुर्विध सघ के प्रत्येक सदस्य का परस्पर किसी न किसी रूप मे धार्मिक सम्बन्ध रहा हुआ है। एक-दूसरे पर विचार-विमर्श देने-लेने का प्रसग भी यदा-कदा आ सकता है। उस समय एक-दूसरे के दिल को गुणो की ओर बढाने के लिए ऐसे शब्दो का प्रयोग करना चाहिये कि जिससे सुनने वाले का हृदय प्रसन्न हो जाय एव वह भी यह महसूस करने लगे कि चतुर्विध सघ के इस सदस्य ने मेरे विद्यमान गुण का कथन करते हुए अपने मधुर वचनो से आगे बढने की प्रेरणा दी। मैं भी अब ऐसा प्रयत्न करू कि जो मेरे जीवन मे आलस्य प्रमादादि के कारण दुर्गुण प्रवेश करते हैं उन दुर्गुणो को जीवन से दूर करू एव ऐसा सत्पुरुषार्थ करू कि जिससे मेरे जीवन मे खोजने पर भी दुर्गुण न मिले, और मैं भी अन्य सदस्यो को इसी प्रकार सम्बोधित कर उनके गुणो को आगे बढाऊ। कदाचित् मुझे लगे कि अमुक सदस्य कई वर्षो से सामायिक, पौषधादि क्रियाए कर रहा है किन्तु उसके जीवन मे कोई परिवर्तन दृष्टिगत नही हो रहा है, बल्कि दिन-प्रतिदिन उसकी प्रमादादि वृत्तिया बढती जा रही हैं। उसका व्यवहार भी अन्य के साथ अच्छा नही रह पा रहा है। उन सबकी यदि मैं समालोचना करूगा तो उनके दोषो को प्रकटीकरण कर उनको खिन्न करने की चेष्टा करूगा तो उससे उनके जीवन मे कोई भी परिवर्तन नही आ पायेगा, बल्कि वे क्रोधित होकर लडने

लगगे। जिससे भी कषाय कभी न कभी भडक सकती हे और वातावरण दूषित होगा, यदि मुझे उनके जीवन मे परिवर्तन लाना हे और वस्तुत मैं इनका हितचितक हू तो मुझे चाहिये कि इनके साथ में रहकर इनके यत्किचित विद्यमान गुणों का कथन करू एव कहू कि आप कितने सोभाग्यशाली हैं कि ससार के प्रपचो मे से अपने आपको अलग करके धर्म स्थान मे पहुचते हैं। जितने समय तक सावद्य योगो का त्याग करके चलते हैं उतने समय तक निर्जरा एव पुण्य का वध करते हैं। कई पुरुष ऐसे हैं कि बाजारो मे बैठे हुए व्यर्थ मे गपशप करते रहते हैं। व्यर्थ ही कर्म–बधन का कार्य करते रहते हैं। क्या ही अच्छा हो कि वे भी धर्म–स्थान मे पहुचकर यथाशक्ति धर्माराधना करे, पर उनमे से कई ऐसा नही कर पाते किन्तु आप कर रहे हैं, यह हमारे लिए प्रेरणा का प्रसग है। इस प्रकार उनके छोटे से छोटे गुण का कथन करके फिर उन्हे प्रेम से समझाया जाय कि आप इतना सब कुछ करते हैं, अत थोडी इस भूल को सुधार ले तो सोने मे सुहागा आ जाय। इस प्रकार कहने पर वे श्रावक भी अपनी गलती महसूस करेगे और उसे निकालने के लिए भी प्रयत्न करेगे। वह सफल साधना करने वाला व्यक्ति सामायिक, सवरादि क्रियाए करता हुआ अपने जीवन मे वास्तविक परिवर्तन लावे। क्योकि ऐसा करने मे उसे कोई रोक तो नही रहा है उसकी साधना उसके अधीन है। इनके साथ रहकर भी उनके जीवन का प्रमाद आलस्य अपने जीवन मे न आने दे। बनती कोशिश साधना की मर्यादा मे रहते हुए उनकी यथाशक्ति सेवादि परिचर्या करता रहे एव अपने जीवन को आदर्श बनावे। इससे कथन की अपेक्षा सद्–व्यहार से वे अपने आप प्रभावित हो जायेगे ओर वे भी अपने जीवन मे परिवर्तन ले आयेगे। परिवर्तन लाये या न लाये ये उनके अधीन की बात है। उसे तो अपनी आत्म–शुद्धि के लिए ही वास्तविक जीवन निर्माण कर लेना चाहिये। जो यह सोचता है कि मैं अपने जीवन मे गुण ही गुण देखना चाहता हू तो वह तब ही देख पायेगा जबकि वह सभी के सदगुण देखता रहे और उन सदगुणो को बढाने के लिए कथन करता रहे। जिससे सम्यक्त्व का यह पाचवा आचार भलीभाति जीवन मे प्रगट हो जाय। सदा गुण का ही चितन करने से दुर्गुण स्वत क्षीण होते हुए चले जायगे एव एक न एक दिन अपने जीवन को वह गुणो की असीम अभिव्यक्ति से भर लेगा। ऐसा करने से सदगुण का वायुमडल एव क्लेश कषाय समाप्त होगे। राग–द्वेष की वृत्ति मद होगी और मोक्ष के रास्ते पर अग्रसर होने का प्रसग आयगा। इस प्रकार इस पाचव आचार को श्रावक अपने जीवन मे स्थान दे तो अनेक भव्यो का परिवर्तन होते हुए व्यक्ति, परिवार एव समाज मे भव्य वातावरण बन सकेगा।

पूर्व के ऐतिहासिक प्रसगो से ऐसे पुरुषो का वृतान्त भी उपलब्ध हो सकता है। सुना गया है कि बीकानेर मे मालूजी थे। वे शास्त्र के अच्छे जानकार भी थे एव धार्मिक आदि क्रियाओ में पीछे रहने वाले नहीं थे। आर्थिक दृष्टि से भी सम्पन्न एव लब्ध प्रतिष्ठित थे। वे समय पर धर्म स्थान मे पहुच जाते। वहा सामायिक, स्वाध्यायादि करते रहते और छोटे-से-छोटे सन्त या सती व्याख्यान बाचते तो सबसे पहले जाकर बैठते। बडे ध्यान से सुनते और सुनने के पश्चात् एकान्त मे सन्त या सती के पास बैठकर विनय भाव से नम्रतापूर्वक कहते कि "आपने व्याख्यान अच्छा बाचा। आपका उच्चारण भी अच्छा है। भाषा मे माधुर्य है। वचन मे ओज है। आप इसी तरह से बाचते रहो। आगे तरक्की करो। लोगो के कुछ कहने से अपने मन मे अभिमान मत आने दो, और सदा प्रमाद छोडकर सत्पुरुषार्थ मे लगे रहो।" इस प्रकार उन छोटे सन्त-सतियाजी के सद्गुणो का प्रकटीकरण करते हुए उनको आगे बढाने मे सहायक बनते। जिन सन्त-सतियो का व्याख्यान कदाचित् ठीक तरह से नही होता, कुछ गल्तिया हो जाती तो उनको भी सभा के बीच कुछ भी न कहते हुए एकान्त मे नम्रतापूर्वक निवेदन करते कि आपने बाकी तो सब अच्छा बोला, किन्तु अमुक-अमुक विषय का सही प्रतिपादन नही हो पाया। उस विषय मे जिन शब्दो का आपने प्रयोग किया, वे भी शास्त्र सम्मत मालूम नही हुए। ऐसा करते हुए शास्त्र का पाठ भी बतलाने का प्रयास करते और कहते- आप बाकी सब अच्छे बोलते हो, ऐसे ही बोलते रहना चाहिये। उनमे जो विषय शास्त्रीय हो, उस विषय को कहने से पूर्व शास्त्रीय स्थल अच्छी तरह से देख लेना चाहिये। इस प्रकार कहते हुए उनके गुणो का ही मुख्यतया प्रतिपादन करते ओर उनके उत्साह को बढाते।

व्याख्यान उठने के अनन्तर भी पैसे वालो की तरफ उनकी दृष्टि कम जाती, किन्तु जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर होते, उनके पास जाकर स्वय जय-जिनेन्द्र करते। वे कमजोर भाई नतमस्तक हो जाते। फिर उनके कन्धे पर हाथ रखकर एक तरफ ले जाते। उनके सुख-दु ख की बाते पूछते। वे भी उनकी गुण-ग्राह्यता व हार्दिक प्रेम देखकर दिल खोलकर सभी बाते रख देते। उसमे जो बाते गुणप्रद होतीं उन बातो को लेकर उनका उत्साह बढाते ओर आत्मीय भावना से कहते कि में भी आपका भाई हू। साधर्मिक भाई के नाते आप कभी-कमी तो घर पर पधारा करो। किसी बात का सकोच मत करो। मेरे घर मे भेसे हैं। छाछादि पर्याप्त मात्र मे होती है। कभी बच्चो को छाछादि लाने के लिये भी नहीं भेजते, ऐसा क्यो ? तब खुलकर वे कह

दते—सेठ साहब। आपकी गुणग्राही दयालु भावना का ज्ञान आज ही हो पाया है। आप ऐसे गुणीजनो के गुण को बढाने वाले हे एव आत्मीय भावना से गरीब—अमीर के भेद को दूर करने का प्रयास करते हें, ऐसी भावना सर्वत्र नही पाई जाती। इतने दिनो तक हम यही सोचते थे कि गरीबी अवस्था मे धनवालो के यहा कोई वस्तु लाने के लिये जाना या किसी को भेजना योग्य नही रहता, क्योकि धनवान लोग गरीबो की उपेक्षा करते हें। उनके विद्यमान गुणो को ध्यान मे नही रखकर कर्मो से दबे हुए उन गरीबो को ओर दबाने की चेष्टा करते हैं, जिससे उनके अन्दर जो साहस, धैर्य आदि गुण होते हे, उनका भी विलुप्त होने का प्रसग आ जाता हे एव सहानुभूतिपूर्वक कोई वस्तु देना तो दूर रहा, वे ऐसे शब्दो का प्रयोग करते हें जिससे अपने आपको अपमानित होना पडता हे। कदाचित् कोई ऐसा नही भी करते हें, किन्तु मागी जाने वाली वस्तु सडी—गली बाहर फेंकने योग्य होती ह उन्हे देने की कोशिश करते हें साथ ही देते हुए अपना अहसास बतलाने की चेष्टा भी करते हें। कदाचित् साधारण वस्तु छाछ भी वहा से लाने का प्रसग आता हे तो वह भी भेदभावपूर्वक देते हे। अन्यो को तो ओरिजनल छाछ देते हें, किन्तु गरीबो को उसी ओरिजनल छाछ म अधिक पानी मिलाकर देते हैं जिससे आत्मग्लानि होना स्वाभाविक है। अन्तराय कर्म के उदय से हमारे अर्थ की कमी हो सकती है किन्तु आत्मीय गोरव का अवमूल्यन करना हम नही चाहते हें। इसी कोटि मे आपको भी समझ रखा था इसीलिये आपके यहा छाछ के लिये भी बच्चो को नही भेजते किन्तु आज मेरी भ्रान्ति दूर हुई कि सभी एक जेसे नही होते हें। आपके उदार एव स्नेही हृदय को आज मैं जाना पाया हू। अब मुझे आपके यहा आने या बच्चो को भेजने मे कोई सकोच नही होगा।

इस प्रकार वे आर्थिक दृष्टि से कमजोर स्थिति वाले जब अपने बच्चो को छाछ लेने के लिए सेठजी के यहा भेजते तब मालूजी छाछ का बर्तन एव रुपयो की थैली अपने पास लेकर बैठते। जब कभी बच्चे आते तो उनके पास से बर्तन लेकर किसी बहाने से उनको अन्दर भेज देते। पीछे से मुट्ठी भरकर के रुपये उस बर्तन मे रख देते और ऊपर से छाछ भर देते तथा बर्तन देते हुए कहते कि छाछ का यह बर्तन तुम्हारे माता या पिता को ही देना अन्य को नही।

छाछ का बर्तन लेकर बच्चे अपने—अपने घर पहुचते। जब वह छाछ का बर्तन उनके माता—पिता लेकर उसे अन्य बर्तन मे खाली करते तब रुपये निकलते। उन रुपयो को लेकर वे कभी मालूजी के पास पहुचते और उनसे कहते कि ये रुपये छाछ मे से निकले हैं तो मालूजी कहते कि चालो गत।

इनको भी काम मे लो। जब आपकी स्थिति ठीक हो जाय तब देने की सोचना, अन्यथा कोई बात नही।' इस प्रकार उनके गुणो की वृद्धि के साथ-साथ आर्थिक स्थिति मे भी सहायक होते। इस प्रकार वे कभी किसी को, कभी किसी को आर्थिक सहायता देते हुए उनके गुणादि की अभिवृद्धि करते हुए पाचवे आचार का समीचीनतया पालन करते थे।

उन लोगो ने पूज्य श्री श्रीलालजी म सा के पास जाकर मालूजी के जीवन का वृतान्त सुनाया। जब एक रोज आचार्य श्री श्रीलालजी म सा के पास स्वय मालूजी बैठे हुए थे तब प्रसगोपात आचार्य श्री श्रीलालजी म सा ने फरमाया कि "मालूजी आप तो मानव जीवन को सार्थक करते हुए अन्य साधर्मिक भाइयो के विद्यमान गुणो की अभिवृद्धि करते हुए उनके जीवन को भी प्रशस्त बना रहे हैं। इस प्रकार सम्यक्त्व के पाचवे आचार की मुख्यतया पुष्टि करते हुए अन्य आचारो को भी प्राणवान बना रहे हो। इसी प्रकार सब सम्यग्दृष्टि एव श्रावकवर्ग अपने जीवन को बना ले तो श्रावक समाज की समीचीन व्यवस्था हो सकती है।"

आचार्य देव के मुखारविन्द से इन शब्दो को श्रवण कर मालूजी कहने लगे-"भगवन्! आप ऐसा न फरमाये। मैं क्या कुछ कर सकता हू। जिनशासन मे अन्य भी बहुत से गुणीजन विद्यमान हैं। मैं तो यत्किचित कुछ करने का प्रयत्न करता हू। यह कचरा बहुत बढता है। जैसे-जैसे मैं सवितरण करता हू वैसे-वैसे बढता जाता है।'

यह श्रावक समाज को लेकर पाचवे आचार का विषय बतलाया गया है। क्या ही अच्छा हो कि शासन मे रहने वाले सत-सती वर्ग भी सम्यक्त्व के पाचवे आचार को प्रमुखता देते हुए अन्य सभी आचारो को यथास्थान जीवन मे स्थान दे एव एक-दूसरे सत-सतीवर्ग के साथ विद्यमान गुणो को बढाते हुए सौहार्दपूर्ण सव्यवहार करने लगे तो सुनिश्चित है, श्रमण-श्रमणी वर्ग मे भी एक हर्षोल्लास तथा आनन्द की लहर व्याप्त हो सकती है।

मेरे कहने का मतलब यह नही है कि सत-सती वर्ग दुर्गुणी हैं या महाव्रतो का पालन नही करते। आप देख ही रहे हैं कि ये सत-सती वर्ग किस प्रकार सुन्दर तरीके से सयम मर्यादाओ का पालन करते हुए स्नेह सौहार्द के साथ रह रहे हें, लेकिन कभी किसी मे छद्मस्थावश कोई दोष आ जाय तो प्रत्येक सत-सतीवर्ग किसी भी सत-सतीवर्ग की कमजोरी शासन नायक के अतिरिक्त किसी के सामने कुछ भी नहीं कहे एव चतुर्विध सघ के सामने गुण

प्रधानता से एक–दूसरे के गुणो को वृद्धिगत करते हुए कहे कि सब मोतियो की माला हैं। किसमे क्या गुण है ? ये सब प्रभु महावीर के एव रत्नत्रय की अभिवृद्धि करन हेतु क्राति के पगलिय उठाने वाले पूर्वाचार्यो के विविध पुष्पफला स सुशोभित भव्य एव सुन्दर चतुर्विध सघ की बगिया हैं। इस बगिया की सुवास कोई भी लेता हे ता उसकी आभ्यन्तर एव बाह्य दुर्गुण रूपी दुर्गन्ध समाप्त होती है। आप गुणो से सुरभित अपने जीवन को बनावे जिससे आप परम शाति के मार्ग पर अग्रसर होते हुए वर्तमान मे हो रही मस्तिष्क सम्बन्धी उलझनो को समाप्त कर सकते हैं। यह उपबृहन का पाचवा आचार सभी के लिये पालन करने योग्य है।

मोटा उपाश्रय 17–7–85

घाटकोपर बम्बई बुधवार

18

यात्रा आगम देश की

परम पावन वीतराग दशा प्राप्त, अगाध शक्ति के धारक महाप्रभु का स्मरण करने के अनन्तर उनके द्वारा प्रवाहित जन–कल्याणी अमृतमयी देशना मे अवगाहन कर, चिन्तन–मनन का यह भव्य प्रसग उपस्थित हो गया है।

वीतराग देव के प्रति एक निष्ठा होगी, एकात्मक–भाव होगा, तभी उनकी वाणी का रस प्राप्त हो सकेगा। बिना निष्ठा के उनकी वाणी से आने वाला अनुपम रस प्राप्त नही सकेगा और जिनवाणी के रस की प्राप्ति के बिना मन एकाग्र नही हो सकता।

मन की एकाग्रता बनाए रखने के लिए भौतिक आकर्षणो से हटकर शक्ति का नियोजन एक ही दिशा मे करना होगा। आज के व्यक्ति साधना भी करना चाहते हैं, मन को स्थिर करना चाहते हैं, और भौतिक तत्त्वो की आसक्ति भी छोडना नही चाहते हैं। एन्द्रियक सुखो को भी भोगना चाहते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी भी साधना मे सफल नही हो सकते। जिस प्रकार एक विशाल लम्बी पाइप लाइन है, जिसके माध्यम से दूरस्थ क्षेत्रे मे पर्याप्त पानी पहुचता है, लेकिन उसी पाइप लाइन के मध्य मे स्थान–स्थान पर छेद कर दिये जाय और उसमे पानी बाहर रिसता रहे तो क्या ऐसी दशा मे उस पाइप लाइन से पानी दूरस्थ क्षेत्रे तक पहुच सकेगा ? उत्तर होगा–नही। क्योकि उसकी शक्ति रास्ते मे ही खत्म हो जाती है। ठीक इसी प्रकार आत्मा की शक्ति भी मन रूप पाइप के माध्यम से अगम क्षेत्र की यात्र करती हुई परमात्मा तक पहुच सकती है। किन्तु उस पाइप लाइन के बीच मे बहुत बडे–बडे छेद कर दिये हैं, जिसके कारण आत्मा की शक्ति परमात्मा तक पहुच ही नही पा रही है। वे छिद्र हैं इन्द्रियो की आसक्ति के। आज का व्यक्ति कभी श्रोतेन्द्रिय के माध्यम से अपनी आत्मिक शक्ति को खर्च कर रहा

है तो कभी चक्षुरिन्द्रिय के माध्यम से खर्च कर रहा है। अर्थात् वह अच्छे-अच्छे फिल्मी गाने सुन रहा है। अपनी प्रशंसा किये जाने से खुश हो रहा है। निंदा किये जाने पर रुष्ट हो रहा है। कान के माध्यम से मन के द्वारा आत्मा में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प पैदा कर उसकी शक्ति को खर्च कर रहा है। इसी प्रकार नेत्र से वह अनेक भले-बुरे चित्र देख रहा है। अच्छे चित्र पर मोहित हो रहा है तो कभी विकारी भावनाओं से अपनी आत्मा को दूषित बना रहा है तो कभी बुरे चित्र को देखकर घृणा कर रहा है। जैसा कि कभी सुनने को मिलता है कि किसी ने प्रातः किसी व्यक्ति का मुंह देख लिया जो कि उसे पसंद नहीं है तो वह यह कहता हुआ पाया जाता है कि सुबह-सुबह किस कलमुंहे का मुंह देख लिया। पर यह नहीं सोचता किसी का भी मुख देखने से होना क्या है ? होगा वही जो स्वयं के कर्मों में रहा है।

इस प्रकार कान, नेत्र की ही बात नहीं है अपितु अन्य नाक, मुख, स्पर्श आदि इन्द्रियों के माध्यम से भी वह अपने मन की पाइप लाइन में जाने वाली आत्मिक शक्ति को रास्ते में ही खर्च कर डालता है। इस प्रकार का व्यक्ति कभी भी अगम देश की यात्रा कर परमात्म रूप को प्राप्त नहीं कर सकता।

परम शांति एवं परम सुख को पाने के लिए अगम देश की यात्रा को एकनिष्ठा के साथ करनी होगी। इन्द्रियों के माध्यम से हो रही आत्म शक्ति के व्यय को रोकना होगा।

आप देखते हैं कि आज के युग में वैज्ञानिक लोग जब छोटी-मोटी वस्तु का आविष्कार करते हैं तब भी मन को किस प्रकार उसमें लगा रखते हैं। सब कुछ भूल जाते हैं उस समय। खाने-पीने का भी ध्यान उन्हें नहीं रहता है। बस रात-दिन खोज करने में ही लगे रहते हैं। तब कहीं जाकर वे किसी वस्तु का आविष्कार कर पाते हैं। तो बंधुओ ! आपको हमको तो इन भौतिक वस्तुओं का आविष्कार न कर इन सबकी आविष्कारक मौलिक शक्ति आत्मा को जागृत करना है। अब आप विचार कर सकते हैं कि उसे जागृत करने के लिए कितनी अव्याकुलता-एकाग्रता की अपेक्षा होती है।

बड़े-बड़े योगी-महायोगी एकनिष्ठ साधना करने के लिए सब कुछ छोड़-छाड़कर जंगलों में गुफाओं में चले जाते हैं और साधना करने में लग जाते हैं। यद्यपि कई साधक साधना से विचलित भी हो जाते हैं। अपने शास्त्र में एक ऐसा ही उदाहरण आता है कि एक गुफा में एक निष्ठ

हो साधना कर रहे थे। किन्तु राजमति साध्वी का निमित्त पाकर साधना से विचलित हो गये। पर राजमति के सयोग से वे पुन स्थिर भी हो गये थे। साधना मे अस्थिरता के कई उदाहरण वैदिक सस्कृति मे भी मिलते हैं। जैसे कि कोई सन्यासी साधना कर रहा था किन्तु उसके सामने स्वर्गलोक की उर्वशी–मेनका आकर नृत्य करने लगी तो जो सन्यासी साधना लोक की यात्र पर था, वह रास्ते मे ही विचलित हो गया।

इन सब उदाहरणो को मैं इसलिए बतला रहा हू कि आप चाहे कि हम वस्तुओ मे आसक्त रहते हुए ही साधना मे सफल हो जाय तो वह केवल कल्पना ही होगी। साधना मे सफल होने के लिए इन्द्रियो के माध्यम से जो बाहर मे शक्ति खर्च हो रही है उसे रोककर मन की पाइप लाइन मे प्रवाहित आत्मा की शक्ति को सीधी परमात्म–अभिव्यक्ति तक पहुचाना होगा।

इन्द्रियो के ही नही, मन के भी अनेक छिद्र हैं जिनसे विचार सरणि बिखरती है। उन्हे भी प्रयत्न विशेष से बन्द करना होगा।

उन सब छिद्रो को बन्द कर आगे बढने के लिए सबसे पहले मिथ्यात्व को हटाकर सम्यक्त्व की अभिव्यक्ति आवश्यक है। कुछ दिनो से आपके समक्ष सम्यक्त्व को लेकर विचार–विमर्श चल रहा है। सम्यक्त्व वह अमूल्य तत्त्व है जो आत्मा के परागमुखी प्रचार को स्वोन्मुखी बनाता है और जब तक प्रवाह स्वोन्मुखी नही बनता है तब तक किया गया सारा का सारा पुरुषार्थ व्यर्थ चला जाता है। सम्यक्त्व मे रहने वाली आत्मा ज्ञानपूर्वक चलती हुई भयकर से भयकर दु ख की स्थिति मे सुखी रह सकती है।

सम्यक्त्व को जीवन मे सही ढग से अपनाने के लिए महाप्रभु के आठ आचारो का बहुत ही सुन्दर ढग से विवेचन किया है। जिन आचारो के माध्यम से शाति का अभिप्सु–इच्छुक अपने आन्तरिक एव व्यावहारिक जीवन को निर्मल बना सकता है।

सम्यक्त्व की प्राप्ति पर ही वीतराग देव की एकनिष्ठ साधना सध सकती है कृष्ण वासुदेव एव श्रेणिक सम्राट इस बात के आदर्श हैं जिन्होने सम्यक्त्व की विशिष्ट आराधना करके जीवन को सही ढग से जीया था। श्रेणिक सम्राट जब वीतराग देव के एकनिष्ठ उपासक नहीं बने थे, मिथ्यात्वावस्था मे रहकर हिसादि प्रवृत्तियो मे अनुरक्त थे, तब नरकायु का बधन कर चुके थे। किन्तु जब उन्हे महाप्रभु का सान्निध्य प्राप्त हुआ ओर उनसे धर्म का सही स्वरूप समझा तब से उनके जीवन मे एकदम रूपान्तरण आ गया और उनकी

वीतराग देव के प्रति इतनी गहरीनिष्ठा बनी कि परिणामस्वरूप वे आगामी चौबीसी के पहले तीर्थकर होगे। इसी प्रकार कृष्ण वासुदेव भी आगामी चौबीसी के बारहवे तीर्थकर होगे।

जीवन का सही रूप अभिव्यक्त करने के लिए सम्यक्त्व की नितान्त आवश्यकता है। उववूह–उपबृहन का वर्णन आपके सामने आ ही रहा है। अर्थात् दूसरे के गुणो की उद्‌भावना करना। दूसरो के गुणों को बतलाने से स्वय के गुणों का विकास होता है। दूसरो के अवगुणो को प्रकट किया जायेगा तो स्वय के अवगुणों की वृद्धि होगी। क्योकि दूसरे के ऊपर कीचड उछालने से पहले स्वय के हाथ कीचड से भरते हैं।

आज के लोगो की सबसे बडी समस्या स्वय के जीवन को जीने की हो रही है। जिस समस्या का कइयो के पास समाधान न होने से वे अपघात तक कर बैठे हैं। मानसिक कुठाओं से ग्रस्त हो जाते हैं, तो कई अनेक व्याधियो से पीडित हो जाते हैं। इन सबका एक ही कारण है कि उन्हे जीना नहीं आया है।

मैं आप सबसे यही कहूगा कि आप प्रभु द्वारा प्रतिपादित जीने की कला सीखें। उसे सीखकर तदनुसार चलेगे तो आगम देश की सही यात्र होगी और अवश्य ही आपके जीवन मे शाति का उपवन महक उठेगा ।

मोटा उपाश्रय, 18 7 85

घाटकोपर बम्बई गुरुवार

स्थिरीकरण

(सम्यक्त्व का छट्ठा आचार)

आज के मानव–समुदाय के जीवन का जो व्यवहार चल रहा है, उसमे बहुत से मनुष्य जीवन की समस्याओ मे उलझे हुए हैं। जीवन को किस ओर ले जाना, क्या कार्य करना, किस प्रकार जीवन का व्यवहार रखना, ये सब बाते मनुष्य के जीवन मे, मानवीय मस्तिष्क मे हलचल मचा रही हैं। इन सभी बातो की उलझन को मिटाने के लिए वीतराग सिद्धान्त हैं।

वीतराग देव ने जो सिद्धान्त व समाधान दिये हैं उन सिद्धातो को जीवन मे रमाकर प्रत्येक मनुष्य यदि अपने जीवन की समस्याओ का हल करे तो उसकी सारी समस्याए हल हो सकती हैं। वह अतीव शाति का अनुभव कर सकता है। जो अशाति की अनुभूतिया वह कर रहा है, उसका निर्माता वह स्वय है। वह यदि स्वय के निजी स्वरूप को सम्यक् रूप से समझ लेता है तो उसको ज्ञात हो सकता है कि दुनिया मे सुख–दु ख उत्पन्न करने वाला कोई दूसरा नही है। वह स्वय ही स्वय के सुख–दु ख का कर्त्ता है। दूसरे तो निमित्त मात्र हैं। जैसी कि प्रभु की वाणी है–

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।

अप्पा मित्तममित्त च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ।।

यह अडोल आस्था जिनके जीवन मे है, सम्यक्त्व की भूमिका पर आरूढ होकर वीतराग देव की वाणी मे अवगाहन करते हुए सम्यक्त्व के आचारो का सम्यक्रूपेण अपने जीवन मे निर्वाह कर सकते हैं। सम्यक्त्व का छठवा आचार हे स्थिरीकरण।

अपने जीवन मे यह समीक्षण करना है कि हम वीतराग वाणी मे स्थिर हें या अस्थिर ? यदि हम सुदृढ रूप से स्थिर हैं तो हम अन्य को भी स्थिर

कर सकते हैं। जो स्वय को सम्भालने मे सक्षम है, वही दूसरो को सम्भाल सकता है। यह ससार वैतरणी नदी है और इसका तट सम्यक्त्व की आचार भूमि है। जो मनुष्य स्वय तट पर सुरक्षित अवस्था मे खडा रहने मे समर्थ बन चुका है वही अन्य जो प्राणी ससार रूपी वैतरणी नदी मे गिर रहे हैं, बह रहे हैं उन्हे भी गिरने से, बहने से बचा सकता है।

ससार से तिरने हेतु जो आगे बढने का पुरुषार्थ करते हैं उनको जो बाधक बन कर रोकते हैं सासारिक, भौतिक पदार्थों का प्रलोभन देते हैं, उनकी धर्म के प्रति निष्ठा को हटाते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं और महामोहनीय कर्म को बाध कर अनन्त ससार को बढा लेते हैं। वे स्वय भी डूब रहे हैं, और दूसरो को भी डुबोने का प्रयास करते हुए अनन्त ससार बढा रहे हैं।

प्रभु महावीर का अमृतोपम उपदेश है कि–

"परिजूरइ ते सरीरय, केसा पंडुरया हवंति ते।

से सव्व बले य हायई, समय गोयम मा पमायए।।"

अर्थात्– शरीर जीर्ण हो रहा है। केश सफेद हो रहे हैं। सभी इन्द्रियो का बल घट रहा है। अतएव हे गौतम ! समय–मात्र का भी प्रमाद मत करो। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक कर्म करने की शक्ति है, तभी तक धर्म भी हो सकता है। कहावत भी है कि–

" जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा।"

अत सम्यक् दृष्टि का यह कर्त्तव्य है कि जो ससार मे गिर रहे हैं, ससार बढा रहे हैं, उन्हे समझावे और सासारिक कुकृत्यो से उदासीन बनावे। उन्हे धर्म के सम्मुख करे। धर्म में स्थिर करे। ऐसा करता हुआ वह महान् निर्जरा की स्थिति में आगे बढ सकता है। दूसरो को तिराता हुआ स्वय तिर जाता है। पर खेद होता है कि आज के अधिकाश मनुष्य जिन परिस्थितियो मे बह रहे हैं उनसे वे इतने बोझिल बने हुए हैं कि स्वय के निजी स्वरूप को पहचानने की किचित् मात्र फुर्सत भी उन्हे नहीं है। धर्म के प्रति रुचि न होने से वे स्वय धर्म नहीं कर पाते हैं और अन्य करने वालो के लिए भी समझ न होने से येन–केन–प्रकारेण बाधक बन जाते हैं।

धर्म पर स्थिरता–अस्थिरता एव श्रावक सम्यग्दृष्टि के कर्त्तव्यो को समझने के लिए जमाली का उदाहरण दे देता हू। प्रभु महावीर की अमृतोपम वाणी जब जमाली के मन मे प्रविष्ट हुई तब उसने विचार किया कि प्रभु

महावीर मेरे अनन्त उपकारी हैं। जब प्रियदर्शना के साथ मेरा सम्बन्ध जोडा, तब मैंने यही विचार किया कि प्रभु महावीर की असीम कृपा से मुझे इस प्रियदर्शना का बहुत अच्छा सयोग मिला, पर आज मुझे वास्तविक लक्ष्मी के साथ सयोग कराने के लिए प्रभु महावीर ने कैसा अच्छा मुझे प्रतिबोध दिया और ऐसा प्रतिबोध पा वह जमाली जामाता अपने पाच सो साथियो के साथ दीक्षित हो गया। पर दीक्षित होने के बाद भगवान् से अलग विचरण की अनुमति मागी, तब प्रभु मौन रहे। दो–तीन बार पूछने पर भी जवाब नहीं दिया तो उस जमाली अणगार ने बिना भगवान् की आज्ञा के अलग विचरण करना प्रारम्भ कर दिया। विचरण करते हुए एक स्थान पर अशाता वेदनीय कर्म के उदय से शरीर मे तीव्र व्याधि हो गई। अत सोने के लिये शिष्यो को शय्या बिछाने का निर्देश दिया। शय्या बिछाने मे देरी होने के कारण इस निमित्त मात्र से उनकी विचारधारा वीतराग वाणी के प्रतिकूल बनी ओर वह मिथ्या दृष्टि हो गया।

घटना इस प्रकार घटी कि जब शिष्यो से पूछा गया कि मेरी शय्या बिछ गई ? जब शिष्यो ने कहा कि हा ! बिछ गयी है। किन्तु जब जमाली ने देखा कि शय्या अभी तक बिछी नही है, फिर भी यह कैसे कह रहे हैं कि "शय्या बिछ गई।" ये भगवान् के सिद्धान्त का अनुसरण करके कह रहे हैं। पर आज मैं यह प्रत्यक्ष देख रहा हू कि भगवान् का यह सिद्धान्त सर्वथा गलत है। जो कार्य पूरा नहीं हुआ है, उसे पूरा हुआ कैसे कह रहे हैं। इस गलत मान्यता का आग्रह सिर्फ जमाली ने ही नही पकडकर रखा वरन् उसके साथ वाले साथी और महासती प्रियदर्शना भी उस गलत मान्यता के आग्रह को लेकर विचरने लगी।

एक बार का प्रसग है। प्रियदर्शना विचरती हुई ढक श्रावक के यहा पर पहुची। वह जाति से कुभकार था, पर प्रभु महावीर का पक्का श्रावक था। जिनवाणी का रसिक, प्रभु महावीर के सिद्धान्तो का जानकार, सुज्ञ और गम्भीर था। उसने जब यह जाना कि, जमाली प्रभु महावीर के सिद्धान्तो से विरुद्ध प्ररूपणा करके विचर रहा है तथा यह प्रियदर्शना भी मूढ मति को प्राप्त हो जमाली के द्वारा प्ररूपित गलत सिद्धान्त को स्वीकार कर प्ररूपणा कर रही है कि "जो कार्य अभी तक पूरा नही हुआ, उसे पूरा हो गया–ऐसा नही कहना।' कुम्भकार ढक श्रावक अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से एक उपाय ढूढ निकालता है ओर वीतराग वचन से अस्थिर बनी साध्वी प्रियदर्शना को पुन वीतराग वचनो पर स्थिर कर देता है, जैसा कि उसने यह प्रयोगात्मक कार्य

किया। बर्तन पकाने के स्थल से अगारा लेकर उस साध्वी की चादर के एक किनारे पर डाल दिया। तब वह साध्वी बोल उठी– अरे ! यह क्या किया ? मेरी चादर जला दी। तब कुम्भकार ने कहा कि तुम्हारी चादर अभी पूरी कहा जली है ? सिर्फ एक किनारा ही तो जला है। तुम्हारा तो सिद्धान्त है कि जब तक कोई वस्तु पूरी नही जल जाय, तब तक उसे जला हुआ नहीं कहना। तीर ठीक निशाने पर लगा। वह हलुकर्मी आत्मा साध्वी प्रियदर्शना तुरन्त समझ गयी कि प्रभु महावीर का जो सिद्धान्त है– चलमाणे चलिए इत्यादि' वह सही है और मैं जो वर्तमान मे प्ररूपणा करने के लिये तत्पर हुई हू, वह सर्वथा गलत है। तब साध्वी प्रियदर्शना अपने साध्वी परिवार के साथ महाप्रभु के सान्निध्य मे आलोचना–प्रतिक्रमण कर पुन सम्मिलित हो गई। महाप्रभु का सत्य सिद्धात समझाया गया तो कितने ही सत जमाली अणगार को छोडकर महाप्रभु के सान्निध्य मे चले आए। किन्तु जमाली अपने मिथ्या–सिद्धात पर डटा रहा और अन्त तक मिथ्यादृष्टि ही बना रहा।

इस प्रकार अन्य भी उदाहरण हैं। धर्म से, सयम से अस्थिर होते हुए को पुन धर्म मे, सयम मे स्थिर करने विषयक। जैसे–जब अरिष्टनेमि भगवान् के छोटे भाई रथनेमि साधना मे स्थित, गुफा मे ध्यान कर रहे थे और इधर साध्वी राजमति प्रभु अरिष्टनेमि के दर्शन करने के लिये उसी रास्ते से साध्वी–समुदाय के साथ जा रही थी पर बीच मे भयकर आधी–बरसात के कारण सभी साध्विया इधर–उधर हो गयी। सयोग की बात है, राजमति उस स्थिति में अपने वस्त्र सुखाने की दृष्टि से उसी गुफा मे चली गयी, जिसमे रथनेमि थे। बाहर प्रकाश से आने के कारण उसे मालूम न हुआ कि भीतर मे कोई है। अत वह तो आप अपने वस्त्र यतनापूर्वक सुखाने की दृष्टि से शरीर से पृथक कर रही थी और उधर उन रथनेमि अणगार की दृष्टि ज्यो ही महासती पर पडी, वे मोहग्रस्त बन उसके सौन्दर्य को निहारने लगे वैषयिक आमन्त्रण देने लगे। पर वह सयमनिष्ठ साध्वी राजमति सिहनी की तरह उसे ललकार कर कहने लगी–

"धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो त जीवियकारणा।
वन्त इच्छसि आवेउ, सेय ते मरण भवे।।"

हे अपयशकामी रथनेमि ! तुझे धिक्कार है, जो तू असयम रूप जीवन के लिये वमन किये हुए को पुन ग्रहण करना चाहता है। इस असयम रूप जीवन से तो तेरा असयम को प्राप्त होने से पूर्व ही मर जाना ही श्रेष्ठ होगा।

इस प्रकार उस सयमव्रती साध्वी के उपर्युक्त सुभाषित वचनो को श्रवण कर वे चरम शरीरी रथनेमि अणगार सयम मे उसी प्रकार स्थित हो गये, जिस प्रकार अकुश से हाथी वश मे हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि एकान्त स्थान मे साधना करते हुए बडे–बडे योगी भी कदाचित् कर्म के उदय हो जाने से, धर्म से, सयम से विचलित हो जाए तो सम्यग्दृष्टि आत्मा का कर्त्तव्य है कि वे उन्हे पुन धर्म का दिव्य स्वरूप समझाकर धर्म मे, सयम मे स्थिर करे। अपने सम्यक्त्व के छट्ठे आचार का परिपालन करे।

प्रभु महावीर ने कहा है–यह अब्रह्मचर्य जीवन को गहरे पतन मे ले जाने वाला है। चरम शरीरी रथनेमि भी, जब ब्रह्मचर्य की स्थिति से विचलित हो गये, तो सामान्य साधको का तो कहना ही क्या ? प्रभु महावीर ने तो इतनी तक मर्यादा बनाई है कि ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए जहा नारी आदि का आवास हो, वहा साधु को और जहा पुरुषो का आवास हो, वहा साध्वी को नही रहना तथा विकाल मे साध्वी के स्थान पर पुरुष और साधु के स्थान पर स्त्री नही आवे। जिस प्रकार साधु–साध्वी के लिए महाप्रभु ने सकेत किया, उसी प्रकार ब्रह्मचारी श्रावक–श्राविकाओ को भी इस विषय मे विवेक रखने की आवश्यकता रहती है। जब श्रावक–श्राविका पौषध करते हैं, सामायिक करते हैं, सवर आदि धर्म क्रिया करते हैं, तब ब्रह्मचर्य का अनुपालन किया जाता है। उस समय उन्हे भी साधुओ के नियमो की तरह सूर्योदय होने के पहले व सूर्योदय के पश्चात् श्राविकाओ के धर्मस्थान मे श्रावको और श्रावको के धर्म स्थान मे श्राविकाओ का रहना, प्रतिक्रमण, धर्मचर्चा, प्रार्थना आदि करना मर्यादा से प्रतिकूल है। कभी–कभी इन प्रक्रियाओ से श्रावक–श्राविकाओ की धर्म के प्रति स्थिरता तो दूर रही, धर्म के प्रति अस्थिरता आ जाती है। लोगो को उनके चारित्र की शका हो जाती है। कई स्थलो पर श्रावक श्राविकाओ के विकाल मे धर्म थानक पर रहने से अस्थिरता के दुष्परिणाम आये हैं। अत इस विषय मे श्रावक–श्राविकाओ को भी विशेष ध्यान रखना चाहिये। तीर्थेश मल्लिनाथ भगवान्, जो स्त्रीलिगी थे, वे भी रात्रि मे आभ्यन्तर परिषद् के साथ रहते थे, जबकि वे कल्पातीत थे। उनका कुछ भी बिगडने वाला नही था। फिर भी उन्होने लोक व्यवहार का ख्याल रखा।

इस प्रकार स्थिरीकरण आचार की पुष्टि करने वाले अन्य भी बहुत से उदाहरण हैं। उन सबसे यही शिक्षा ग्रहण करे कि आप भी अपनी निजी अनन्त शक्तियो का, अपने आत्मबल का विकास करे। जीवन मे सम्यग्दृष्टिपने

के बलबूते से आत्मीय गुणो मे रमण करते हुए, निष्ठापूर्वक अपने व्रतो का परिपालन करते हुए स्वरूप का विकास करे और फिर अन्य जो धर्म से विमुख बने हुए हैं उन्हे भी धर्म मे स्थिर कर कर्म निर्जरा का पथ प्रशस्त करे।

मोटा उपाश्रय 19 7 85

घाटकोपर, बम्बई शुक्रवार

स्वधर्मी वात्सल्य

(सम्यक्त्व का सप्तम आचार)

वीतराग दशा को प्राप्त तीर्थंकर देवो के परम पावन उपदेश का निष्कर्ष जीवन मे प्राप्त करने हेतु जिन वीतराग देव की स्तुतिपरक गाथाओ का उच्चारण किया है, उन्हे चिन्तन मे लेने की नितान्त आवश्यकता है।

आज मनुष्यो की जो दयनीय दशा बन रही है, वे किनकी शरण मे जाए ? दु ख से निवृत्ति लेने हेतु, जो परिपूर्ण सुखी हैं, उनकी शरण लेने से ही वे सुखी बन सकते हैं पर दु खी व्यक्ति के पास जाने से वे अपने दु खो से निवृत्ति नहीं प्राप्त कर सकते हैं। जैसे–एक भिखमगा दूसरे भिखमगे से भूख–निवारण करने हेतु कहे, तो क्या वह भिखारी उस भिखमगे की भूख मिटा सकता है ? उत्तर होगा–नही। ठीक इसी प्रकार ससार मे सभी व्यक्ति दु खी हैं। उनके पास जाने से दु ख की निवृत्ति नही हो सकती है। इसी प्रकार भौतिक पदार्थो की याचना करने वाले, भौतिक पदार्थो मे आसक्त ससारियो को भिखमगे की उपमा दे दी जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। क्योकि प्राय सभी ससारी, तृष्णा के आवेग मे बहते हुए भिखमगे के रूपक को ही धारण किये हुए हैं। यही नही देव, जो अमित ऐश्वर्य के स्वामी हैं, उनकी भी तृष्णा का अन्त नही है। बडी विचारणीय स्थिति है कि निजी स्वरूप को छोडकर जीव पर–स्वरूप मे रमण कर रहा है। उनमे ममत्व रख रहा है। ऐसी तृष्णा वाले चाहे लखपति, करोडपति भी क्यो न हो, दूसरो के दु ख दूर करने मे समर्थ नही हो सकते हैं। पर जो पर–पदार्थो के व्यामोह मे न पडकर साधना के बलबूते पर आध्यात्मिक सम्पत्ति के स्वामी बन चुके हैं, उनका सान्निध्य, उनकी शरण ग्रहण करने से ही दु खो से छुटकारा पाया जा सकता है। शातिनाथ भगवान् जब चक्रवर्ती थे, तब उनके पास छह खण्ड की ऋद्धि थी, फिर भी आध्यात्मिक सुख की अपेक्षा रखने वाले आध्यात्मिक लक्ष्मी प्राप्त

करने हेतु छ ही खण्डो का राज्य उन्होने छोड दिया। उन्होने सोचा कि आत्मिक ऋद्धि अभी तक मुझे मिली नही है। यदि इस भौतिक ऋद्धि मे ही खुशी मनाता रहा तो मैं भिखारी ही रहूगा। अत छ खण्ड का राज्य छोडकर वे अणगार बन गये। जैसा कि उत्तराध्ययन' सूत्र मे यह बतलाया गया है कि–

चइत्ता भारह वास, चक्कवट्टी महढ्ढिओ।

'सन्ती' सन्तिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरम्।।"

अर्थात्– शाति देने वाले शातिनाथ नामक महा समृद्धिशाली चक्रवर्ती इस लोक मे भरत क्षेत्र के छ खड के राज्य को छोडकर अर्थात् अतीव रमणीय कामभोगो का परित्याग करके प्रधान गति मोक्ष को प्राप्त हुए। जिनके ज्ञान मे, जिनके हृदय मे ससार के प्रत्येक प्राणी के प्रति अपूर्व वात्सल्य भाव था, ऐसे भाव के स्वामी, सभी के कल्याण का पथ प्रशस्त करने वाले वीतराग देव बन गये। यदि हमारी आत्मा कर्म प्रवाह मे ससार रूपी वैतरणी मे बहती हुई वीतराग भगवान् के वचनो पर दृढ आस्थावान् हो जाय जो सम्यक्त्व का लक्षण है, उस लक्षण पर इतनी दृढीभूत हो जाय, कि सम्यक्त्व के सभी आचारो का भलीभाति अपने जीवन मे निर्वाह करती हुई एक दिन उप आध्यात्मिक शक्ति रूप श्री का वरण कर सके और उस प्रधान गति मोक्ष को प्राप्त कर सके।

आचरण करने योग्य आठ सम्यक्त्व के आचारो को भव्यात्माओ को आन्तरिक जीवन मे ओतप्रोत कर लेना चाहिये। सातवें स्थान पर जिस आचार का वर्णन आया है, वह है वात्सल्य। माता का पुत्र के प्रति अद्वितीय वात्सल्य रहता है। वह पुत्र के लिए सब कुछ सहन कर लेती है। अनन्य भाव से उसका परिपालन करती है। यह सारी चर्या उस मा की वात्सल्य भावना का प्रतीक है। इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी पर सम्यक दृष्टि का नि स्वार्थ वात्सल्य बन जाय तो प्रत्येक आत्मा के साथ अनन्य भाव पैदा किये जा सकते हैं। प्रत्येक के साथ आत्मवत् व्यवहार की स्थिति प्राप्त होती है। रूपक है–बिल्ली स्वय की सन्तान को जन्म देने के बाद उन्हे अपने दातो के बीच मे दबाकर सात घरो तक फिरती है, तब उन बच्चो की आखे खुलती हैं–ऐसा कहा जाता है। पर जब वह सात घरो तक बच्चे को दातो के बीच मे दबाकर घूमती है, तब अपने बच्चे को जरा भी आच नहीं आने देती। लेकिन यदि किसी पक्षी का बच्चा उसके मुख मे आ जाय तो वह उसको खा जाती है। यह तो अज्ञानवश

पशु जाति की मोह अवस्था है, पर जो मानव चिन्तनशील है, वह अपने वात्सल्य भाव का विस्तार करना सीखे। स्व–पर का भेद भूलकर सबके साथ आत्मवत् व्यवहार करे। बच्चा जन्म लेता है, और माता के स्तन मे दूध एकाएक आने लगता है, यह बच्चे के प्रति माता की वात्सल्यता का ही परिणाम है। जब भगवान् महावीर को चण्डकौशिक ने डक मारा, तो भगवान् के पैर के अगुष्ठ से दूधवत् धारा छूट पडी। यह उनकी प्रत्येक आत्मा के प्रति अपूर्व आत्मीयता, अद्वितीय वात्सल्यता का प्रतीक थी। यह माता के जीवन से भी बढकर भगवान् के जीवन का वात्सल्य भाव था। डक मारने वाले के प्रति भी वह नि स्वार्थ वात्सल्य भावना दूध की धवलता के रूप मे निर्झरित हुई। प्रतिबोधित कर दिया उस चडकौशिक को। पर आज कहा है नि स्वार्थ वात्सल्य भावना ? कहा है वह सम्यग्दृष्टि का आचार ? कहा है साधर्मी के प्रति सहयोग की भावना ?

एक समय का प्रसग है। दुष्काल का समय था। तब कई सम्पन्न स्थिति वालो ने अन्न खरीद लिया और अपने परिवार वालो का पोषण करने लगे। पर कई गरीब लोग क्षुधा से तडफडाते हुए मरने लगे। ऐसी परिस्थिति मे "बहुरत्ना वसुन्धरा" इस कहावत को चरितार्थ करने वाला एक सुदत्त नामक सम्यग्दृष्टि श्रावक प्रभु महावीर का अनुयायी विचार करने लगा कि मेरी यह सम्पत्ति यदि मैं साधर्मी भाइयो की मदद मे नियोजित कर दू, तो इससे बढकर इस नश्वर सम्पत्ति का और क्या सदुपयोग होगा। ऐसा विचार कर खुले दिल से वह साधर्मी भाइयो के लिये हर तरह से साधन जुटाने लगा। बडी हवेली बना कर सब अनाथो का, गरीबो का पोषण करने लगा। बडी विनम्रता और आत्मीय भावना के साथ। तीन साल तक बराबर उनका परिपालन कर उन लोगो का भी धर्म के प्रति अहोभाव उत्पन्न किया।

समय परिवर्तनशील है। समय ने पलटा खाया। दुष्काल जब सुकाल मे परिवर्तित हुआ तो सभी दुष्काल पीडित भाई–बहिन अपनी विनम्रता, कृतज्ञता जतलाते हुए बडे विनम्र भावो के साथ उन सेठ सा को कहने लगे कि– 'महानुभाव ! आपने हमारी बहुत सुरक्षा की। आपने वात्सल्य भाव का बहुत सुन्दर रूपक जगत् के सामने रखा। हम आपके बहुत आभारी हैं। अब हमे छुट्टी दीजिये। हम अपने घर जाना चाहते हैं' तब सेठ कहने लगा कि यह तो आपने मुझे स्वर्णिम चान्स दिया। मेरा अहोभाग्य है कि मुझे आपकी सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। आपने मेरे पर बहुत उपकार किया।

ख्याल करिये कि उपकार किया सेठ ने उन लोगो पर पर कह क्या रहा है कि आपने मुझ पर बहुत बडा उपकार किया।' कितनी विनम्रता थी सेठ के जीवन मे। सेठ ने यथार्थ मे प्रभु महावीर के सिद्धान्तो का रसपान किया था। सम्यक दृष्टि से आचारो का, भलीभाति ज्ञान कर दृढता से उसका पालन किया था।

आज के युग मे तो देखने को मिलता है कि प्रथम तो कोई ऐसा स्वधर्मी वात्सल्य का व्यवहार ही नही करते हैं। यदि कही करते भी हैं तो उसके पीछे नाम कमाने की, यश फैलाने की भावना अधिक काम करती है। काम कम, नाम अधिक होना चाहिये। इस बात को मानने वाले व्यक्ति कभी भी स्वधर्मी वात्सल्य का पूरा-पूरा लाभ नही प्राप्त कर सकते। वह सेठ, ऐसे लोगो मे से नही था। वह दिये गये दान को भी भूमि मे गये बीज की तरह गुप्त और सुरक्षित रखने वाला था।

जब सुकाल हुआ और लोग जाने की तैयारी करने लगे तो सेठ ने उन्हे एक निवेदन किया कि एक प्रीतिभोज और देना चाहता हू। कृपा कर मुझे सतुष्ट कीजिये। लोगो ने बात मान ली। प्रीतिभोज की जोरदार तैयारिया की जाने लगी। सभी को वह अपने हाथ से परोसकर जिमाने लगे। देखिये स्वधर्मी सेवा ।

मुझे इसी बीच स्वर्गीय गुरुदेव के समय का प्रसग याद आ रहा है। गुरुदेव का जब बगडी चातुर्मास था तब चातुर्मास कराने वाले सेठ लक्ष्मीचदजी धाडीवाल स्वय स्वधर्मी भाइयो की सराहनीय सेवा करते थे। भोजनादि सभी कार्यो मे स्वय भाग लेते थे। एक बार का प्रसग है—कुछ भाई भोजन मे अपनी खुराक का ध्यान नहीं रख पाये, जिससे उन्हे हैजे की शिकायत हो गयी। चेप की बीमारी होने से उनकी सेवा करने मे नौकर-चाकर भी सकोच करने लगे। तो सेठ सेठानी ने स्वय ने उनको सम्भाला। उनकी सभी प्रकार से सेवा की, और उन्हें स्वस्थ कर विदा किया। यह है साधर्मी के प्रति नि स्वार्थ वात्सल्य भाव।

हा ! तो उस सेठ की बात कह रहा था मैं। जो सेठजी सभी को परोस रहे थे, उस समय उनके लडके ने कहा— पिताजी ! मैं भी परोसूगा। तो उसे सहर्ष अनुमति दी गयी। वह लडका जब परोस रहा था तो एक बहिन ने जिस किसी चीज की जरूरत थी उसे मागने हेतु उसने उस लडके के वस्त्र को पकड कर कहा— यहा भी परोसते जाइये। पर वह नादान,

वात्सल्य भावना से अनभिज्ञ, बोल उठा कि तीन–तीन साल हो गये, यहा टुकडे खाते–खाते फिर भी अभी तक तृप्ति नहीं हुई क्या ? पल्ला पकडते नही छूटा ? बन्धुओ ! ये कठोर शब्द, उस बहिन को क्या ! जीमने वाले सभी भाई–बहिनो को इतनी ठेस पहुचाने वाले हुए कि सबके सब एक साथ उठ गये। बिना पूरा भोजन किये ही रवाना होने लगे। जब सेठजी ने यह दृश्य देखा तो विचार करने लगे कि तीन साल तक जो वात्सल्य भावना का स्रोत मैंने बहाया, उस पर लडके ने थोडे से कठोर शब्द कहकर पानी फेर दिया। सेठजी उन लोगो को हाथ जोडकर, पैरो मे गिरकर माफी मागने लगे। कहने लगे कि लडके ने नादानी कर दी। आप उसे क्षमा कर दे। सभी सेठ की अपूर्व वात्सल्यता, विनम्रता से गद्गद् हो उठे। सेठ का पूरा सत्कार ग्रहण करके, सेठ को अन्तर आशीष देते हुए विदा हुए। अस्तु !

वात्सल्य भावना तो अन्तर की होती है। प्रभु महावीर ने कहा कि–"हे आत्मन् ! तू सम्पूर्ण विश्व के साथ वात्सल्य भाव रख। यदि इतना न हो सके तो कम से कम परिवार वालो के प्रति और साधर्मी भाइयो के प्रति तो अपनी वात्सल्य भावना का विस्तार होना चाहिये। वात्सल्य भाव करने वालो को सबक लेना है कि समाज मे रहते हुए कभी कुछ बोलने अथवा सुनने का प्रसग आ जाए तो भी अपने क्षमा गुण का विकास कर, आत्मवत् व्यवहार का ख्याल कर अपने वात्सल्य का निर्झर बहाते रहे। अपने जीवन मे समागत समूल दु खो से निवृत्ति पाने हेतु वीतराग वाणी मे अवगाहन करते हुए सम्यक्त्व के सातवे आचार को जीवन मे स्थान देगे तो जीवन अतीव मगलमय बन जाएगा। इन्ही शुभ भावो के साथ।

मोटा उपाश्रय — 20 7 85

घाटकोपर, बम्बई — शनिवार

भौतिकता से हटो- आत्मलक्ष्यी बनो

वीतराग देव का परम पावन स्वरूप, जन–जन की अन्तर चेतना को उल्लसित करने वाला है। उस उपदिष्ट मार्ग का, उनकी देशना का चिन्तन–मनन करने का यह भव्य अवसर है।

मनुष्य–जन्म, आर्य–भूमि, सन्त–समागम और वीतराग–वाणी का श्रवण जिसे उपलब्ध होता है, उसका मनुष्य जीवन अनत पुण्यवानी के उदय का शुभ फल एव अन्तराय कर्म का क्षयोपशम समझना चाहिये।

वर्तमान की पर्याय वर्तमान स्वरूप ही रहती है। वैसी पर्याय भूत और भविष्य की भी होती है। पर्याय का तात्पर्य परिवर्तन से है। यह तीनो काल मे होता रहता है। सम्यग्दृष्टि भाव यह विवेक देता है कि जिस समय जो पर्याय वरत (चल) रही है, उस समय उसी पर्याय का कथन करो। भविष्य मे आप आत्मा की शुद्ध पर्याय को प्राप्त कर सकते हैं, पर वर्तमान मे उस पर्याय का एकान्त आरोप करना सम्यक नहीं है। जैसे, वर्तमान मे मनुष्य चोले को लेकर चल रहा है और उसे सिद्ध कहे तो अनुचित है। नय की दृष्टि को लेकर हम कह सकते हैं कि हमारी आत्मा सिद्ध जैसी है, पर वर्तमान मे उसे सिद्ध नही कहा जा सकता। यदि वर्तमान की पर्याय को हम भविष्य मे प्राप्त होने वाली पर्याय मान लेते हैं, तो इसमे मिथ्यात्व की स्थिति बन सकती है। जैसे–आप वर्तमान मे भोजन कर रहे हैं और यह कह दे कि मैं व्यापार कर रहा हू तो आपका यह कथन गलत है भले ही आप भविष्य मे व्यापार करेगे। ठीक वैसे ही वर्तमान मे जिस पर्याय मे आप चल रहे हैं और अतीत या भविष्य के किसी पर्याय का आरोप वर्तमान मे करते है तो यह अनुचित होगा।

सयमी जीवन भी एक पर्याय है। वह पर्याय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सीमा मे सार्वभौम होती है। उस पर्याय को किसी भी प्रान्त या काल की परिधि मे ही मान लेना गलत होगा। प्रभु महावीर की सयमीय पर्याय सार्वभौमता से प्रारम्भ हुई और जब घनघाती कर्म क्षय कर उनकी पर्याय केवलज्ञानादि की पर्याय मे परिणित हुई तब वे महाप्रभु सारी सीमाओ को पार कर असीम बन गये थे। असीम बनने के बाद उन्होने जन कल्याण के लिये जो आध्यात्मिक उपदेश दिया, वह उपदेश प्राणीमात्र के लिये था। जैसा कि प्रश्नव्याकरण सूत्र मे कहा गया है–"सव्व जग जीव रक्खण–दयट्ठयाए भगवया पावयण सुकहिय।" जगत् के सभी जीवो की रक्षा के लिये भगवान् ने प्रवचन दिया था। वह प्रवचन आज सुनने, पढने को मिलता है तो हम कितने सद्भाग्यशाली हैं। पर अवधानतापूर्वक श्रवण से प्रत्येक तत्त्व समझा जा सकता है।

प्रभु महावीर ने यह नही कहा था कि मैं क्षत्रिय जाति का हू, अत मेरा उपदेश सिर्फ क्षत्रिय जाति के लिये ही है। उन्होने तो फरमाया कि मेरा उपदेश कल्याण चाहने वाले प्राणिमात्र के लिये है। आप उसे सुने क्योकि सुनकर ही अपना हित–अहित पहचाना जा सकता है। जैसे–

"सोच्चा जाणइ कल्लाण, जाणइ पावग।

उभयऽपि जाणइ सोच्चा, ज सेय त समायरे।।"

(दशवै सू अ 4)

अर्थात् कल्याण मार्ग भी सुनकर ही जाना जा सकता है और अकल्याण मार्ग भी सुनकर ही जाना जा सकता है। दोनो सुनकर जाने जा सकते हैं। अत जो तुम्हारे लिये श्रेयस्कर है उसका तुम आचरण करो।

आज हम देख रहे हैं कि श्रवण की स्थिति तो बहुत अधिक व्यापक है, पर वह श्रवण कर्णेन्द्रिय तक ही सीमित है या मन तक भी पहुचता है। मन तक पहुचता है तो क्या कभी चितन की स्थिति भी बनती है कि मैं जो सुन रहा हू, उसके अनुसार अपना जीवन भी बनाऊ। जीवन के क्षेत्र मे श्रवण तब तक उपयोगी नही होता है, जब तक वह श्रवण विचार क्षेत्र मे पहुचकर निर्णायक स्थिति मे परिणित न बने। गहन चिन्तन की भूमिका तैयार न करे।

आज के युग मे विचार की स्थिति से हटकर निर्विचार बनने की स्थिति भी बन रही है पर निर्विचार है क्या ? क्या पशुवत् विचारो से रहित बन जाए ? उत्तर होगा –नहीं। मनुष्य चितनशील प्राणी है। विचार करने वाली बुद्धि

कुछ और होती है। विचार जब चलता है तब समुद्र मे उठने वाली तरगो की भाति अनेक विचार तरगे उठती हैं। उस समय उन सारी विचार तरगो से ऊपर उठकर, जो विचार उपादेय हैं, उन्हे स्वीकार करने की निर्णायक बुद्धि ही यथार्थ मे हेय विचारो से निर्विचार स्थिति को प्राप्त करा सकती है। विचार जड के नहीं होते। विचार चैतन्य के ही होते हैं। जो सुन ही नहीं सकता, वह विचार क्या करेगा ? सुनने की क्षमता चैतन्य मे ही है। तात्पर्य यह है कि सुनना विचार करना, सम्यक् निर्णायक, बुद्धि का विकास करना और निर्विचार यानी मोहजनित सकल्प-विकल्पो से मुक्ति पाकर विचारो पर नियन्त्रण पाना यह सब चैतन्य का ही कार्य है। विचारो की तरगे मन की भूमिका पर उठ रही हैं पर उसे तरगित करने वाली आत्मा ही है। वही आत्मा उन विचारो पर नियत्रण कर निर्विचार बन सकती है, अर्थात् निर्विचार स्थिति मे अपनी पहुच बना सकती है।

जो लोग यह मानते हैं कि विचारो को समाप्त कर दो तो उनका यह मानना युक्तिसगत नहीं है। विचारो को समाप्त नही किया जा सकता बल्कि रूपान्तरित किया जा सकता है। **प्रवाह को रोका नहीं जा सकता, मोडा जा सकता है।** एक रूपक है समझने के लिये- जिस व्यक्ति को कम दिखाई देता है वह डाक्टर के पास जाकर अपनी आखे दिखाता है और रोशनी बढाने की फरियाद करता है, तब डाक्टर उसे नम्बर वाला चश्मा देता है जिसे लगाकर वह व्यक्ति स्पष्ट देख सकता है। पर यदि उस नम्बर वाले चश्मे पर लाल रग का लेप कर दे तो उसे प्रत्येक चीज लाल-लाल दिखाई देगी। यह विकृति रग के कारण ही उस चश्मे मे आती है। नम्बर मे कोई विकृति नहीं होती। यदि वह नम्बर मे कोई विकृति मानता है तो उसका चिन्तन उपयुक्त नही कहा जा सकता। इसी प्रकार आत्मा के विचार नम्बर हैं और इन विचारो पर अह का, ममत्व का, राग-द्वेष का रग चढ जाता है। तब वह सही स्वरूप को नही जान पाती है। उसी रग के कारण आज मानव विचारो की गलत उलझनो मे पडा प्रान्तीयता के धर्मो मे, गलत साम्प्रदायिक व्यामोह मे, आत्मीयता रहितपना आदि को प्राप्त हो रहा है। जो अह, राग, द्वेष, ममत्व के रग को हटाकर समताभाव मे उपस्थित होकर उन शुद्ध विचारो के नम्बरो से आत्मभाव की समीक्षा करता है, वह इतना समर्थ बन सकता है कि लोक-अलोक, सबको जान सकता है। स्वय समुज्ज्वल स्वरूप प्राप्त कर सकता है।

आज वैज्ञानिक युग मे जो बडे–बडे आश्चर्यकारी आविष्कार हुए हैं, उन आविष्कारो ने बहुत ही प्रज्ञाशील जनो को भी विचारो की स्थिति से गुमराह बनाया है। वे यही मानने लगे हैं कि भौतिक विज्ञान ही सब कुछ है। पर यह सर्वमान्य है कि इन अनेक आविष्कारो को करने वाली हमारी अनत–अनत शक्ति सम्पन्न आत्मा ही है। आज सवालो का जवाब देने वाले जिस कम्प्यूटर का आविष्कार हुआ है, वह जो उत्तर देता है तो वह उत्तर देने वाला कौन है ? क्या वह कम्प्यूटर जानता है कि वह कौन है ? उसमे तो जो भर दिया जाता है, वही सामने आता है। जो उसमे नही है, वह उससे पूछे तो ज्ञात होगा। कम्प्यूटर से पूछे–तुम कौन हो ? क्या वह उत्तर दे सकता कि मैं अमुक हू ? वह तो जड है। उसका निर्माता है तो आत्मा ही। आचाराग सूत्र का दिव्य सूत्र है–"जे आया से विन्नाया।" जो आत्मा है वही विज्ञाता है। आत्मा की अनत शक्ति से ही ये आविष्कार हो रहे हैं। भीतर का सचालक कौन है ? यह भौतिक औजारो से नही जाना जा सकता। इस विज्ञान स्वरूपी आत्मा को जानने का प्रसग जब तक नही बनेगा तब तक कितना ही विकास हो जाय, वह अधूरा है। अगर अन्तर चेतना का विकास हो जाय तो अन्य सभी तरह का विकास होते कोई देर न लगेगी। दृश्य जगत् मे दिखने वाले सभी पदार्थ भौतिक हैं और उनका निर्माणकर्ता अभौतिक आत्मा ही है।

आज भौतिक विज्ञानवादी भी आध्यात्मिक स्थिति मे आगे बढ रहे हैं। वर्तमान मे आप जिन भौतिक पर्यायो को जान रहे हैं यदि उनकी भीतरी स्थिति का ज्ञान नही है तो आप किञ्चित् मात्र भी अध्यात्म विकास की स्थिति मे आगे नही बढ पाएगे। भौतिकता से आज क्या कुछ दयनीय स्थिति इस मानव की बनी हुई है। भौतिकता के रग मे रगा मानव ईर्ष्या, राग–द्वेष की द्वन्द्वात्मक स्थिति मे झूलता हुआ बहिर्दर्शी बना अपने जीवन को किस भाति जी रहा है–इस विषयक एक घटना का उल्लेख कर देता हू। कुछ वर्ष पूर्व की बात है। क्षेत्रपुर गाव मे एक वेणी माधवसिह नामक जागीरदार था। वह एक बार बीमार हो गया। बीमार भी ऐसा कि पलग से उठने की स्थिति भी नही थी। डॉक्टर, वैद्य, हकीम आदि ने अलग–अलग जाच की और एक ही निर्णय दिया कि इनको हृदय की बीमारी है। इनके सामने कुछ भी चिन्ता की स्थिति उपस्थित मत करना। इनको ज्यादा बोलाना मत। एक बार उनका भानेज सदाशिव अपने मामा की साता पूछने के लिये अपने मित्र के साथ घर गया और पूछा कि तबियत कैसी क्या है ? पर उसके मामाजी ने कुछ भी प्रत्युत्तर नही दिया। उसने जब मामाजी की चिकित्सा के विषय

मे खोज की तो ज्ञात हुआ कि चिकित्सा तो बराबर चल रही है फिर भी उनकी व्याधि समाप्त नहीं हुई है। इसमें जरूर कोई आन्तरिक कारण होना चाहिये। बातचीत के दौरान उसे ज्ञात हुआ कि मामाजी की चन्द्रनाथ ठाकुर से ईर्ष्या है। उसके विकास को सुनकर ही यह इतने दुखी हुए हैं जिससे इन्हे हार्ट-अटैक हो गया है। अत इन्हे स्वस्थ करने के लिये मनोविज्ञान से काम लेना होगा। वह भानजा मनोविज्ञान का भी जानकार था। वह मामा का मनोरजन करने लगा, जिससे उनको कुछ प्रसन्नता की अनुभूति हुई। तब मामा सदाशिव से चन्द्रनाथ जागीरदार के विषय मे पूछताछ करने लगा, कहने लगा कि तुम्हारे प्रान्त मे खेती बहुत हुई है। तुमने तो चन्द्रनाथ ठाकुर के विषय मे कुछ भी समाचार नहीं बताये। तब भानजा कहने लगा कि-मामाजी ! चन्द्रनाथ ठाकुर के खेती तो बहुत हुई पर टिड्डी लग गयी जिससे फसल नष्ट हो गयी। जो दूसरो को ठगता है वह भी ठगा जाता है। प्रकृति के घर मे देर है, पर अधेर नही है। यह श्रवणकर मामा अतीव प्रसन्न हुआ। पुन भानजे से कहने लगा कि सुना है कि उसकी लडकी का सबध किसी धनिक परिवार मे हुआ है। तब पुन भानजे ने प्रत्युत्तर दिया कि नही-नही ! यह किसने कहा ? ज्योतिषी ने तो साफ मना कर दिया कि चन्द्रनाथ की लडकी का लगन होगा ही नहीं। यह श्रवण कर तो उसे इतनी अधिक खुशी हुई कि वह एकदम उठकर बैठ गया तथा अपने आप मे एकदम स्वस्थता का अनुभव करने लगा तथा भानजे को धन्यवाद देता हुआ विदा किया और यह भी कहा कि भाई ! तुम्हे कभी समय मिले तो आया करना और उस जागीरदार चन्द्रनाथ का हाल सुनाया करना।

लौटते वक्त रास्ते मे सदाशिव को उसका मित्र कहने लगा कि तुमने इतना झूठ क्यो कहा ? तब वह कहने लगा कि यदि मैं अपने मामा को ये झूठी बाते नही कहता तो आज ही उसका हार्ट-फेल हो जाता। मेरी दवाई मेरे मामा को लागू हो गई। वे चन्द्रनाथ के समाचार श्रवण कर एकदम स्वस्थ हो गये। चन्द्रनाथ की तरक्की के समाचार सुनकर ही मामा की हार्ट की बीमारी हुई थी। बन्धुओ ! यह क्या है ? ये ईर्ष्या राग-द्वेष आदि परिणतिया ही हृदय-रोग आदि-आदि कैसे-कैसे भयकर रोग खडे कर देती हैं। स्वस्थ को अस्वस्थ बना देती हें। विषमता का यह भयानक रूप व्यक्ति के अन्तरग और बाहरी दोनो ही प्रकार के जीवन को क्षत-विक्षत कर देता है।

जो व्यक्ति राग-द्वेष को मद करता हुआ नैतिकता के साथ निर्लोभ-वृत्ति से चलता है उसके पास भोतिक सम्पत्ति चाहे कितनी भी कम क्यो न हो

वह चैन से रह सकता है। इस प्रसग पर एक और छोटा–सा उदाहरण सुना देता हू। राजा भोज सादी पोषाक मे जगल मे घूम रहा था, तब उसने एक मस्त लकडहारे को देखा और विचार किया कि यह इतना गरीब है पर है कितना मस्त हाल ! पूछा उससे– तुम कौन हो ?" पर वह बिना उत्तर दिये आगे बढ गया। यह देख राजा भोज ने सोचा कि यह कितना निर्भीक है। पुन राजा ने आगे बढकर पूछा कि तुम कौन हो ? तब उत्तर मिला कि मैं राजा भोज हू। राजा को बडा आश्चर्य हुआ। भोज उसके साथ–साथ चलने लगा। वह जहा बैठा, राजा भोज भी वहा बैठ गया ओर पूछने लगा कि क्या राजा भोज भी लकडी का भार ढोता है ? क्या तुम सचमुच राजा भोज हो ? तब वह कहने लगा– 'अरे ! राजा भोज जितना राजसी आनद का उपभोग नही करता उतना मैं करता हू। मुझे नित्य प्रतिदिन लकडी बेचने मे छ टका मिलता हे, जिसमे से एक टका बोरा को देता हू, एक टका आसामी को, एक टका मत्री को, एक स्वय के लिये, एक अतिथि सत्कार मे तथा एक भण्डार मे डालता हू। राजा ने पूछा– 'तुम्हारा बोरा कौन है ?' तो वह बोला–"मेरे माता–पिता हैं क्योकि उन्होने मुझे पाल–पोसकर बडा किया और इस योग्य बनाया। इसलिये वे अब मेरे लेनदार हैं। आसामी मेरे पुत्र–पुत्रिया हैं क्योकि वे मेरे से ऋण ले रहे हें। मत्री मेरी धर्मपत्नी हे, क्योकि वह मुझे नेक सलाह देती हें। इसलिये में माता–पिता को एक टका, पुत्र–पुत्रियो के लिये एक टका, पत्नी के लिये एक टका, शेष तीन मे से एक भण्डार मे, एक अतिथि के लिये व एक मेरे लिये खर्च करता हू। में अपनी इसी आमदनी मे इतना मरत हू जितनी मस्ती विशाल समृद्धि सम्पन्न राजा भोज के भी नही हे।"

भोज सोचने लगा कि ऐसी सुन्दर व्यवस्था तो मेरे पास भी नही हे। कठियारे की मस्ती मे मूल कारण सतोष ओर आत्मनिर्भरता थी। जेसी कि सम्राट मे भी नही पायी गयी। यह तो भौतिक तत्त्वो मे सतोष का परिणाम था कि उसे इतना सुख मिला। किन्तु जब व्यक्ति भौतिक आसक्ति से परे हटकर अध्यात्म–साधना करता हुआ परिपूर्णत आत्मलक्ष्यी बनता हे, तब विचार कीजिये उसको कितने सुख की अनुभूति होती होगी। उसकी कल्पना भौतिक तत्त्वो से नही की जा सकती। अत स्पष्ट हे कि भौतिकता मे सुख नही है। सुख का मूल स्त्रोत आध्यात्मिकता हैं। जो भी व्यक्ति आध्यात्मिकता मे प्रवेश कर परिपूर्णत दृष्टि को समीक्षणमय बनाता हुआ आत्मलक्ष्यी बनता है वह निश्चय ही परम सुख को प्राप्त करता हे।

भाटा उपाश्रय	21–7–85
घाटकोपर बम्बई	रविवार

प्रभावना

(सम्यक्त्व का आठवा आचार)

सारे जगत् मे सार रूप, अनन्य स्वरूप जिसके समान दूसरा कोई रूप नहीं हो सकता है ऐसे वीतराग प्रभु का सस्मरण करने से वीतराग भाव भीतर मे जागृत होते हें। जिन–जिन तत्त्वो के गुण समक्ष आते हैं उन–उन गुणो को भीतर मे प्रकट करने की लालसा जागृत होती है। जब तक राग रहता है, तब तक बहुत सारे दुर्गुण बहुत सारी कर्म बन्धन की स्थिति आत्मा के साथ सबधित रहती है। जब राग आत्मा से दूर हो जाता है, तब आत्मा पूर्ण स्वतन्त्र होकर वीतराग दशा मे रमण करती है। वीतराग दशा में प्रभु ने जो उपदेश दिया है उस उपदेश को प्रवचन रूप मे सबोधित किया जाता है।

वचन और प्रवचन मे अतर है। वचन तो सभी बोलते हैं, अपने भावों की अभिव्यक्ति करने के लिये। वचनो का तो कोई विशेष महत्त्व नहीं है। वह एकमात्र वादित्र की भाति ध्वनि वाचक है। जैसे वादित्र बजता है, तो लोग सामान्य रूप से सुन लेते हैं। पर जब घडी का घटा लगता है, तब मनुष्य कितने उपयोगपूर्वक व सावधानी से सुनते हैं। आप निर्णय करिये कि महत्त्व वादित्र की आवाज का है या घडी के टणकारे का। इसी प्रकार वचन तो वादित्र की तरह हैं और प्रवचन घडी के टणकारे की भाति।

एक न्यायाधीश जो परिवार मे रहकर नन्हे–नन्हे बच्चो के साथ बात करता है तब जो वचन वह बोलता है उसका इतना महत्त्व नही होता है। लेकिन वही न्यायाधीश जब न्याय की कुर्सी पर बैठकर न्याय देता है, तब लोग कितने ध्यानपूर्वक सुनते हैं। उन वचनो का कितना अधिक महत्त्व होता है। इसी प्रकार भगवान् के वचन जो प्रवचन रूप हें वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। प्रभु के प्रवचन का जितना–जितना रहस्य सामने आता है उतनी–उतनी मुमुक्षु

आत्माए आह्लादित होकर उसमे अवगाहन करने को उत्सुक रहती हैं। वर्तमान मे अनेक पुस्तके निकल रही हैं, पर उनका उतना महत्त्व नही है, जितना ससार मे घट रही घटनाओ का है, जिन्हे देखकर, सुनकर या पढकर उसका असर उन देखने, सुनने व पढने वालो के जीवन मे पडता है। उसका महत्त्व विशेष है। वीतराग प्रवचन का महत्त्व, कथन की अपेक्षा अनुभव से अधिक किया व जाना जा सकता है।

यह चैतन्य आत्मा जब निर्विकार बनकर अर्थ मे परिपूर्ण शब्दो को निसृत करती है, तब उसमे गूढतम रहस्य परिपूरित रहता है। पर जो सासारिक मनुष्य हैं, वे सभी प्रवचन का श्रवण नहीं कर सकते हैं। जो श्रवण करते हैं, वे भी सिर्फ कर्णो से, सभी हृदय से नही सुनते। ऐसे व्यक्ति उसका कुछ भी महत्त्व नही जान सकते हैं। पर जो हृदय से श्रवण करते हैं, वे ही इस वीतराग प्ररूपित प्रवचन के महत्त्व का मूल्याकन कर सकते हैं तथा उससे प्रभावित होते हैं। जो व्यक्ति प्रतिदिन प्रवचन सुनते हैं उनको देखा जाता है कि असर कम रहता है। किन्तु जो कभी–कभी प्रवचन सुनते हैं उनमे कभी चमत्कारिक असर देखने को मिलता है। इससे यह मतलब नही कि प्रतिदिन प्रवचन न सुना जाये। सुनने से यत्किचित् निर्जरा तो होती ही है। पर जैसे नगारे की आवाज को सुनने वाला मन्दिर का कबूतर बिल्कुल नहीं घबराता और उसी थोडी सी आवाज से जगल का कबूतर उड जाता है। ठीक वैसे ही मन्दिर के कबूतरो की तरह के श्रोताओ के जीवन मे परिवर्तन नही होता है, किन्तु जगल के कबूतरो की तरह के व्यक्ति जो कभी–कभी सुनने वाले हैं, उनमे विशेष परिवर्तन देखा जाता है। जिनवाणी तो विस्तृत और व्यापक है। उन सब की बात जाने दीजिये। सिर्फ एक छोटा सा नवकार मत्र जिसमे अनन्तानन्त तीर्थकरो की वाणी का सार है यदि सच्चे श्रद्धान के साथ उसके अर्थ का अनुसधान किया जाये तो मालूम होगा कि यह मत्र कितना गूढ है, रहस्यमय एव चमत्कारी मत्र है तथा अन्यो को बहुत प्रभावित करने वाला है।

मेरी अनुभवगम्य बात हे–स्वर्गीय गुरुदेव ने मुझे करोली गाव फरसने के लिये भेजा। आज्ञा प्राप्त कर मैंने तीन सतो के साथ विहार किया। आहार, पानी दो कोस तक ही चलता (ले जा सकते) है। अत आहार पानी करके आगे बढे तो आधा घटा ही दिन अवशेष था। अत गाव के बाहर पचायत भवन जो प्रासुक था, उसकी एक व्यक्ति से आज्ञा मागी तो उसने कहा कि मैं तो हरिजन हू, अत आप यहा नही ठहर सकेगे। पर जब उसको बताया गया

कि इसमे हमे कोई बाधा नही है। क्योकि यह पचायती मकान है। तब उसने आज्ञा दे दी और हम सब वहीं ठहर गये। कुछ समय के बाद उसको जिज्ञासा हुई और उसने पूछा कि आपके धर्म का मत्र क्या है। तब उस व्यक्ति को नवकार मन्त्र का स्वरूप बताया तो वह बडा प्रभावित हुआ और कहने लगा कि हमने तो जैन धर्म की निन्दा ही निन्दा सुनी है। किन्तु आज आपसे मालूम हुआ कि दुनिया को वास्तविक शान्ति प्रदान करने वाला, यह नवकार मत्र ही है। हमे ऐसे ही धर्म की आवश्यकता है। इस विषयक मुझे और भी आप ज्ञान प्रदान करियेगा। तब प्रतिक्रमण करने के बाद बहुत सारे भाइयो को लेकर वहा आया। उन सबको मैंने नवकार मन्त्र अर्थ सहित सुनाया। उससे सभी प्रभावित हुए और पाव छूने की अनुमति मागी। तब मैंने कहा कि वैसे तो मैं इसे महत्त्वपूर्ण नही मानता। फिर भी छूना चाहो तो मना नहीं है। तब उन्होने हर्ष के साथ पैर छुए और चले गये। सबके चले जाने के बाद वह हरिजन पुन आया और अपनी वस्तुस्थिति बताने लगा। महाराज मैं 700 गाव के हरिजनों का मुखिया अर्थात् अध्यक्ष हू। मैंने आज ही इतना महिमामय मत्र सुना है। मुझे आप ऐसा धर्म बताओ कि मैं भी आपके चरणो मे समर्पित हो जाऊ। मेरा आपको इतना–सा कहना है कि आप मेरे अधीनस्थ सभी हरिजन भाइयो को यह उपदेश देवे और जो आपके समाज के मुखिया हैं, उन्हे भी समझावे कि वे हमसे छुआछूत नहीं करे। मानवता के नाते मानव रूप मे हमारा सत्कार करे, अपमान नहीं। उसके 700 गाव जिसमे उनके जाति भाई रहते थे वहाँ तो मैं गुरु आज्ञा बिना नहीं पहुच सका, उन्हे उपदेश नही दे सका पर वह भाई इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपने जीवन को सुसस्कारित बना लिया।

सज्जनो ! सुख की मृगतृष्णा में दौडने वाले लोगो की सुख पाने की समस्या का एक ही समाधान होगा कि वे जैनत्व का सही स्वरूप समझे। जो भौतिकता के रग मे ही अपनी शक्ति का अपव्यय कर रहे हैं उन्हे अध्यात्म मे लगावे। यह तो स्पष्ट है कि यदि परम शाति के महाद्वार में प्रवेश करना है तो वह इसी जैन दर्शन के द्वार से ही होगा। अत समझिये। जैन धर्म मे प्रवेश करने के लिए सम्यक–दर्शन सबसे पहले आना आवश्यक है। यदि सम्यक्त्व अवस्था के साथ समतापूर्वक जो व्यक्ति चलता है तो वह अपने जीवन मे चमत्कारिक सुखद परिवर्तन ला सकता है।

जितने भी वर्तमान मे जैनी हैं वे यदि सम्यक्त्व के आचारो को जीवन मे स्थान देकर चलने लगे तो आज भी जैनियों की सख्या बढ सकती है। जो

वीतराग वाणी के प्रवचनो पर अटल आस्था रखता है, वह सम्यग्दर्शनी है। उसके आठ आचार हैं। उसमे अन्तिम आठवा आचार है प्रभावना।

प्रवचन प्रभावना कैसे हो ? जैन शासन की प्रभावना अनेक प्रकार से की जा सकती है। दान देकर, सेवा करके, उपदेश देकर आदि अनेक प्रकार से प्रभावना का प्रसग उपस्थित किया जा सकता है। प्रत्येक धार्मिक वृत्ति वालो को स्वाध्यायादि के माध्यम से भगवान् के प्रवचन का बोध देना भी प्रभावना है। एक प्रसग है। भोपाल मे डेढ सौ घर पक्के स्थानकवासी के थे। वहा जब मैं गया तब मौढ जाति के अन्य बहुत से लोग व्याख्यान मे आये। कुछ दिनो बाद जब मैं दोपहर मे बैठा था, तब उस मौढ जाति का मुखिया भगवानदास कहने लगा कि मैं जल रहा हू– तब मैंने पूछा कि यह तुम क्या कह रहे हो। तब उसने कहा–आप स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा के शिष्य हो। आप धर्म का प्रचार करने के लिये आये हो, आपका व आपके परिवार साधु समुदाय का जीवन तो बडा ही शुद्ध, निर्मल एव पवित्र हे। पर एक बार पहले भी मैंने देखा कि कुछ सत धर्म प्रचार करने हेतु आये थे। वे माइक मे बोलते थे, तथा बहनो से बिना पुरुष की साक्षी से घण्टो बाते करते रहते। यही नही उन्हे जरा भी अपनी साधु मर्यादा का ख्याल नहीं था। मैंने देखा वे एक बार एक बहिन के कधे पर हाथ रख कर खडे थे। सिनेमा हॉल मे भी उन्हे पकडा। मैं उनके विषय मे क्या कुछ कहू। गुरुदेव, ऐसे साधुओ को देखकर विचार आता है, कि लोगों की धर्म के प्रति कैसे श्रद्धा बने। धर्म प्रचार के नाम पर साधु–मर्यादाए क्यो तोडी जा रही हैं। उस साधु के इस आचरण को देखकर हमने स्थानकवासी धर्म ही छोड दिया। और जो स्थानक बनाया हुआ है, उसमे यज्ञादि कार्य करने लगे हैं। अब हम आपके जीवन से अत्यन्त प्रभावित हैं। आप वहा पधारिये, प्रवचन फरमाइये। हमे नया दिशा निर्देश दीजिये। मैं उनकी भावना देखकर वहा गया। दो प्रवचन भी दिये। उन्होने और रुकने के लिये आग्रह किया पर कल्प की स्थिति पूर्ण हो जाने से आगे रुकने की स्थिति नही बनी। कल्प तोड कर धर्म प्रचार करने से भी एक के बाद एक मर्यादा टूटती जाती है। अत मैंने विहार कर दिया। रास्ते मे जब उन्होने मागलिक सुनी तब वे बोले–गुरुदेव ! पहले मैंने अमोलक ऋषिजी का जमाना देखा था। वे अच्छे थे और अब आपको उसी रूप में देख रहा हू।

बन्धुओ ! उस एक साधु के गलत आचरण से उन सभी घरो की धर्म के प्रति श्रद्धा विचलित हो गई। प्रभावना की जगह और हानि का प्रसग आ गया। एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है। वैसे ही उस एक

साधु के गलत आचरण से पूरी साधु समाज बदनाम हो गई।

(आचार्य प्रवर का कल्प पूर्ण हो चुका था। यानी 29 दिन तक उन्होने साधु मर्यादा का परीक्षण कर उसके बाद वे बोले थे कि आपका जीवन कितना पवित्र है। यह हमने प्रत्यक्ष देखा है। —सम्पादक

आप लोग धर्म का दिव्य स्वरूप समझे। धर्म से विचलित नहीं बने। बन्धुओ। ऐसी स्थिति मे प्रवचन की प्रभावना कैसे क्या हो सकती है। क्योकि जबकि साधु स्वय बहुरूपियो की चर्या अपना कर चलता है। समुद्र मे ही तूफान आ जाये तो प्रलय होगा ही। वैसे ही साधु जीवन ही दूषित हो जाये तो फिर जिन शासन की प्रभावना कैसे हो सकती है। मेरा तो आप सभी से यही कहना है कि आज के युग मे यह आवश्यक है कि अगर आप महावीर के सच्चे भक्त हैं और जिन शासन की प्रभावना करना चाहते हैं तो साधु-साध्वी के जीवन को पवित्र बनाने मे सहयोग दे। यह जिनशासन की सर्वोत्कृष्ट प्रभावना होगी। क्योकि आप साधुओ के जीवन को पवित्र रखेगे तो सारा जैन सघ पवित्र रहेगा। यदि साधुओ के जीवन को दूषित करने का प्रयास किया गया, उन्हे गिराने मे सहयोग दिया गया, जैसे कि—आप तो बहुत विद्वान हो गये हैं। आप क्रिया छोडिये। लाउडस्पीकर मे बोलिये। प्लेन मे यात्र करिये। रात्रि मे बहनो के सामने प्रवचन दीजिये। भोजन हम बना के दे दते हैं। पानी के लिये भी क्या परहेज़ करना है। सामान आदि उठाने की क्या जरूरत है। हम आपके साथ भाई रख देते हैं। वह सामान उठा लेगा आदि बाते करके यदि साधु-साध्वियो को इस पवित्र सस्कृति से नीचे गिराने का प्रयास किया गया तो यह प्रभु महावीर की एव जिनशासन की बहुत बडी कुप्रभावना होगी। बहुत बडा जघन्य अपराध होगा। आप लोग यदि जिनशासन की प्रभावना नही कर सकते तो कम से कम ऐसी कुप्रभावना से तो परहेज रखिये। सत जब अपनी मर्यादा मे रहकर वीतराग के प्रवचन से जनता को प्रतिबोधित करे, तो कभी भी जैनी स्वय श्रद्धा से विचलित नहीं हो सकते हें। यही नही अन्य भी कई जैनेतर जैनी बन सकते हैं। एक बार का प्रसग है। देशनोक के भूराजी जब रायपुर चातुर्मास मे दर्शनार्थ आ रहे थे। रास्ते मे जब रेल मे बेठे हुए थे उसी ट्रेन मे अन्य-अन्य प्रान्तो के बडे-बडे राजकर्मचारी भी बैठे हुए थे। उन्होने पूछा कि तुम कहा जा रहे हो ? उन्होने कहा कि मैं अपने गुरु के दर्शनार्थ जा रहा हू। उन्होने जिज्ञासा की कि तुम्हारे गुरु का क्या स्वरूप है वे कैसे रहते हैं क्या खाते हैं ? जब उन्होने अपने गुरु की सयमी मर्यादाओ का परिचय दिया तो उन्होने आश्चर्य करते हुए पूछा—

ऐसी स्थिति मे भी तुम्हारे गुरु जीवित हैं ? तब उन्होने कहा कि जीवित हैं तभी तो मैं दर्शन करने के लिए जा रहा हू। कहने का तात्पर्य यह है कि सयमनिष्ठ साधु जीवन, अतीव महत्त्वपूर्ण जीवन है। अत उसे मर्यादाओ मे सुरक्षित रखा जाय, कारण कि मर्यादाओ को सुरक्षित रखकर ही प्रवचन प्रभावना सम्यक्रूपेण हो सकती है। आपने कपिज केवली का नाम सुना होगा। श्रावस्ती नगरी के जगल मे 500 चोर थे। उनको प्रतिबोध देने के लिये वे कपिल केवली वहा पहुचे। पर चोर क्या जाने कि ये केवली हैं। केवली ही केवली को जान सकता है। गौतम स्वामी को प्रभु महावीर ने कहा कि हे गौतम ! तुम्हे जिन नही दिखते हैं। क्योकि छद्मस्थ जिन को नही देख सकता है। सिर्फ अनुमान से जान सकता है। जैसा कि उत्तराध्ययन सूत्र के दसवे अध्ययन मे बताया गया है–

''न हुजिणे अज्जदीसइ, बहुमए दीसई मग्गदीसए।''

चोर केवली प्रभु को नही समझ पाये और उन्हे दण्डित करने लगे। यातनाए पहुचाने लगे। तब चोरो का सरदार जो अनुभवी था व उनके तेजोमय प्रशान्त मुखमण्डल की दिव्य आभा को देखकर कहने लगा–रुको । इन्हे मत मारो। ये महान् विभूति हैं। इनसे कुछ सुनो। तब कपिल केवली ने उत्तराध्ययन सूत्र का आठवा अध्ययन सुनाया। उस अध्ययन की गाथाओ का अर्थ गीत रूप मे श्रवण कर 500 ही चोर प्रतिबोधित हो गए। यह है प्रवचन की प्रभावना।

प्रभावना करने के अन्य भी कई तरीके हैं। जैसे तपस्या भी प्रवचन प्रभावना का अग है। पर यह विचारना कि तपस्या मे हमारी कोई इहलोक–परलोक और काम भोग आदि के हेतु भौतिक ऐश्वर्य की कामना तो नही बनी हुई है। जो तपस्या सिर्फ आत्म–शुद्धि हेतु प्रशस्त कर्म–निर्जरा का ख्याल करके की जाती है, उसी तपस्या से प्रवचन की सम्यक्रूपेण प्रभावना हो सकती हे। जो तपस्वी का गुणानुवाद करता हे वह भी प्रवचन की प्रभावना करता है।

वीतराग वाणी का अद्भुत ही प्रभाव है कि तपोवन मे आत्मार्थी आत्माए निरन्तर आगे वढती हें। तप का कोई कम महत्त्व नही हे। आत्मशुद्धि के साथ–साथ स्वास्थ्य लाभ मे भी तप अतीव महत्त्व रखता हे। प्राकृतिक चिकित्सा वाले गर्म पानी के आधार से 40–40 दिन के उपवास कराते हैं। सुना हे एक व्यक्ति जिसका सारा शरीर इजेक्शनो से बींधा गया था, उसकी जव प्राकृतिक चिकित्सा की गई, गर्म पानी के आधार पर उपवास कराये गये

तब तेरहवे दिन ही उसके शरीर का विकास मल द्वार से बाहर निकल गया और 40 वे दिन वह एकदम स्वस्थ हो गया। यह है तप का प्रभाव जो कि जेनधर्म मे जैन आगमो मे विविध भाति से दर्शाया है।

सथारा भी एक प्रवचन–प्रभावना का विषय है। उनका गुणानुवाद भी प्रभावना का विषय है। अभी–अभी आपने सुना कि भीनासर मे सरल स्वभाविनी महासती श्री वल्लभ कवर जी के सथारे का 67 वा दिन चल रहा है। जीवन–मरण के क्षेत्र मे, दृढता एव साहस के साथ आगे बढना कोई मामूली बात नही है। महासती जी ने आत्म बल का सराहनीय परिचय दिया है। बहुत वर्ष पहले इसी सम्प्रदाय मे स्वर्गीय महासती श्री सरदार कवरजी म सा के 62 दिन का सथारा आया था। उसके पहले और अब तक 67 दिन का सथारा सुनने को नही मिला। फिर महासती ने 2–3 दिन से तो चौविहार का भी प्रत्याख्यान कर लिया हे। अर्थात् पानी भी छोड दिया है। यह दृढता भी एक तरह से शासन की अपूर्व प्रभावना हे।

शास्त्र के गूढ रहस्य को प्रकट करने से भी प्रवचन की प्रभावना होती है। शास्त्रीय मर्यादानुसार व्याख्यान देना यह भी महान् निर्जरा का काम है। प्रवचन प्रभावना है।

निष्कर्ष यह है कि हम इस प्रकार प्रवचन प्रभावना के विविध आयामो का सम्यकरूपेण ज्ञान करें और यथाशक्ति उन आयामो को जीवन मे स्थान देकर प्रवचन की प्रभावना करे। विशाल व्यापक जैन धर्म की उन्नति करे। जेन धर्म के गुणो को दिपावे। ज्यादा कुछ नहीं बना सके तो धर्म–दलाली करे। कृष्ण वासुदेव व श्रेणिक राजा की तरह। सम्यक्त्व के आठो आचारो का दिव्य मगलमय जो स्वरूप है उसे समझ कर जो भी भव्य मुमुक्षु आत्मा अपनी सम्यक्त्व की भूमिका को उत्तरोत्तर निर्मल बनायेगी, उसका कल्याण सुनिश्चित रूप से होगा। इन्हीं मगलमय भावो के साथ।

गोटा उपाश्रय — 22–7–85

घाटकोपर बम्बई — सोमवार

आराधना और प्रभावना

परम पिता परमात्मा, परम स्वरूप को सप्राप्त, वीतराग देव ने भव्यात्माओ के लिये जो उपदेश दिया, उस उपदेश मे समत्व रूप आत्म हित की बात बतलाई है।

भगवती सूत्र के शतक आठवे मे आराधना का प्रकरण आया है। महाप्रभु से गौतम स्वामी ने पूछा कि–

कतिविहाण भते। आराहणा पण्णत्ता ? गोयम्मा।
तिविहा आराहणा पण्णता तजहा–नाणाराहणा,
दसणाराहणा, चरित्ताराहणा।

भगवन् ! आराधना कितने प्रकार की कही गई है ? तब महाप्रभु ने फरमाया– गौतम ! भगवती सूत्र 8/10 मे आराधना तीन प्रकार की कही गई है। ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना, चारित्रराधना।

"आराध्यते इति आराधना" सामान्य रूप से आराधना का तात्पर्य है, किसी की उपासना करना। अर्थात् उसी के साथ मनसा, वाचा, कर्मणा सयुक्त हो जाना आराधना हे। जीवन मे जो सौम्य भावनाये बनती हैं उन्हे ही आचरण की भूमिका पर जब उतारा जाता है, तब वे ही भावनाये उस जीवन की महत्त्वपूर्ण आराधना बन जाती हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना को एकरूप कर उन्हे आराधना शब्द से सबोधित किया है।

आराधना करने वाली आत्मा है। उसके असख्य प्रदेश हैं। जिसके सकोच–विस्तार को समझना भी आवश्यक है। शरीर मे जब तक आत्मा है, तब तक वह शरीर सार रूप हे। हाथी के शरीर मे जो आत्मा है, वही आत्मा ऐसे कर्म बाध लेती हे जिससे वह हाथी का शरीर छोडकर गाय के शरीर मे समाहित हो जाती हे। हाथी के स्थूल–शरीर मे जो असख्यात आत्मप्रदेश थे,

वे सभी हाथी की अपेक्षा छोटे गाय के शरीर मे समाहित हो जाते हैं और गाय यदि अशुभ कर्म करे तो वह चीटी के रूप मे उत्पन्न होकर अपने असख्यात आत्मप्रदेश को उस चीटी के शरीर मे समाहित कर लेती है। यही नहीं, चीटी का जीव मरकर यदि जमीकद मे, निगोद मे चला जाता है तो उसमे अपने शरीर को अति सक्षिप्त रूप मे सर्वात्म–प्रदेशो को सकुचित कर लेता है। और ऐसे निगोद मे जाकर अनन्त काल तक भी जन्म–मरण कर सकता है। जमीकद मे जीवो की बहुलता बतलाने की एक प्रणाली बतलाई है कि सुई के अग्र भाग पर जमीकद का जितना अश आवे, उसमे असख्यात प्रतर हैं। उन असख्यात प्रतरो मे से प्रत्येक में असख्यात–असख्यात श्रेणिया हैं, लाइने हैं। उन असख्यात श्रेणियो मे से प्रत्येक मे असख्यात–असख्यात गोले हैं। उन गोलो मे से प्रत्येक मे असख्यात–असख्यात शरीर हैं, और उन शरीरो मे से प्रत्येक मे अनन्त–अनन्त जीव हैं।

देखिये जो आत्म–प्रदेश हाथी के शरीर मे व्याप्त थे वे ही किस प्रकार निगोद आदि के शरीर मे सकुचित हो जाते हैं। यह सकोच–विस्तार आत्म–प्रदेशो मे चलता रहता है। तत्त्वार्थ सूत्र के पाचवे अध्ययन मे आया है कि–

प्रदेश–सहार–विसर्गाभ्या प्रदीपवत्

आत्म प्रदेशो का दीपक के प्रकाश की तरह कर्मों के आवरण से सकोच विस्तार होता रहता है। अर्थात् जैसे 1000 पॉवर का बल्ब हॉल में लगा हुआ हे, पर उस पर एक मिट्टी का बर्तन रख दिया जाय तो जो प्रकाश सारे हॉल मे फैल रहा था वह सकुचित होकर मिट्टी के बर्तन की परिधि तक ही प्रकाश करेगा। यही स्वरूप आत्मा का है। वह जिस शरीर को प्राप्त करती है उसी शरीर के अनुरूप अपने असख्यात आत्म प्रदेशो का अवगाहन कर लेती है।

यह विषय विस्तार की अपेक्षा रखता है अत फिलहाल तो सकेत ही कर रहा हू। शुभाशुभ कर्म करने मे आत्मा स्वतत्र हे पर कर्म करने के बाद जब अशुभकर्म का उपभोग होता है तब वही दु खी हो जाती है। दु ख को प्राप्त होती हुई अगर वह सम्यक ज्ञान की अवस्था को प्राप्त नही है तो और अधिक अशुभ कर्मो का बध कर लेती है। जैसे मदिरा पीने वाले किसी भाई को मदिरा से होने वाली बेमान अवस्था का ज्ञान कराया जाय तो वह उस समय तो कह देगा कि हा अब मैं मदिरा नही पीऊगा। परन्तु वृत्ति जो चिरकाल से उसकी मदिरा पीने की बन चुकी ह उसमे वह कुछ समय बाद

पुन मदिरा पीना चालू कर देगा। उसी प्रकार मानव का भी यही हाल हो रहा है। अनादिकालीन बुरी प्रवृत्तियो मे अभ्यस्त बनी आत्मा उपदेश श्रवण कर थोडी देर तो उन प्रवृत्तियो से विरक्त हो जाती है, पर पुन वे ही प्रवृत्तिया चिर–अभ्यास होने से वापस जीवन मे चालू हो जाती हैं। जब तक अशुभ कर्मों का जबरदस्त उदय रहता है तब तक उस आत्मा को कितना ही उपदेश दिया जाय तो भी वह उपदेश उसके आचरण का विषय नही बन सकता। पचेन्द्रिय अवस्था मे रह कर वह यदि क्रूर कर्म करे तो नारकी मे भी जा सकती है। श्रोता बन कर व्याख्यान श्रवण कर लेना, ज्ञान हासिल कर लेना और बात है तथा उस ज्ञान को आचरण की भूमि पर उतारना, ज्ञान की आराधना करना और बात है। कर्मों की वृत्तिया वैभाविक हैं। उन्हे आत्मा से अपुनर्भाव से अलग किया जा सकता है। आवश्यकता है प्रकृष्ट सत्पुरुषार्थ की।

भगवती सूत्र मे जो तीन आराधना बताई गई हैं, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान एव चारित्र के रूप मे है। सम्यक्त्व के आठ आचार जो आपने श्रवण किये हैं, उसमे अन्तिम आचार है, प्रभावना। प्रभावना प्रवचन की भी होती है। प्रभावना तप की भी होती है। प्रभावना आचरण की भी होती है। जो मनुष्य अपना सुन्दर आचरण रखता है उसकी प्रतिष्ठा ऐसी जम जाती है कि जिससे वर्तमान मे किसी प्रकार की कोई कष्ट की स्थिति जीवन मे नही आ सकती भले ही प्रारम्भिक अवस्था मे उसे कष्टो से सघर्ष भी करना पडे, पर अपनी सत्यनिष्ठा पर जो दृढ रहता है वह कष्ट से अपने अशुभ कर्मों को निर्जरित कर समुज्ज्वल भविष्य के कगार पर आकर खडा हो जाता है। उससे स्वय का जीवन तो सौम्य बनता ही है, अन्यो पर भी उसका प्रभाव पडता है। धर्म प्रभावना का, वह व्यक्ति एक महत्त्वपूर्ण अग बन जाता है।

एक समय का प्रसग है–ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा, जब प्रतापगढ मे विराजमान् थे तब पूज्य गुरुदेव ने फरमाया कि जो मनुष्य सत्यनिष्ठा रखते हैं उनके प्रति सभी विश्वास रखते हैं। उनकी प्रतिष्ठा का प्रसग बनता हे, कि उन्हे कभी आर्थिक आदि सकटो का भी मुकाबला नहीं करना पडता। यह बात श्रवण कर एक सेठ साहब जो बडे भव्यात्मा एव हलुकर्मी थे उन्होने सत्य बोलने की प्रतिज्ञा ले ली और व्यापार की स्थिति से उनके जा कपडे की दुकान थी, वे उस दुकान मे बडी सत्यनिष्ठा के साथ अपना व्यापार चलान लगे। अपने ग्राहको को कहने लगे कि इस कपडे की कीमत एक रुपया हें, ओर एक आना का मुनाफा का लेता हू। तब ग्राहक की आदत हाती हैं कीमत कम कराने की तो वहा अब गुजाइश ही नहीं रही। अत

वे अपनी बताई हुई कीमत पर ही अटल रहते। ऐसा करने से एक साल तक उनका व्यापार एकदम बन्द–सा रहा पर वे अपनी सत्यनिष्ठा से विचलित नही हुए। उनकी सत्यनिष्ठा पर ग्राहको पर स्वत ही ऐसा प्रभाव पडा कि वे ग्राहक जो दूसरी दुकानो पर उन्ही कपडो की बढी–चढी कीमत श्रवणकर विचार करने लगे, कि इससे तो उस सेठ की दुकान पर कम कीमत मे ये ही कपडे मिल रहे हैं। सभी ग्राहक पुन उनकी दुकान पर आने लगे और खरीददारी शुरू करने लगे। ग्राहक पूछने लगे कि तुम अपनी एक कीमत पर कैसे स्थिर हो, बाजार मे तो बहुत भाव बढ गया है। तब सेठ ने कहा कि मैंने जितने रुपये मे यह कपडा खरीदा है, तदनुसार एक रुपये पर एक आना मुनाफा के हिसाब से ही बेचूगा अत मेरे यहा कीमत मे उतार–चढाव नही है। मैंने सत्य बोलने की प्रतिज्ञा की है उस पर दृढ हू। यह श्रवण कर सभी ग्राहक इतने प्रमुदित हुए कि सभी कपडा वही से लेने लगे। अपने सम्बन्धी दूसरे लोगो को भी कहने लगे कि अमुक सेठ सा की दुकान प्रामाणिक है तब और भी लोग वही पर ही पहुचने लगे। बाजार की अन्य सभी कपडे की दुकानो मे व्यापार ठडा पड गया, और उसकी दुकान पर ग्राहको की सख्या इतनी अधिक बढती गई कि उसका व्यापार बहुत सुन्दर रीति से चलने लगा। यही नहीं, सभी ग्राहक लोग उसकी सत्यनिष्ठा से प्रभावित होकर उसकी भूरि–भूरि प्रशसा करने लगे। अहो जेन धर्म के अनुगामी सेठ सा का जीवन कितना सत्यनिष्ठ है । इस प्रकार जैन–जैनेतर सभी मे उसके सौम्य सत्यनिष्ठ आचरण से जैन धर्म की बहुत अधिक प्रभावना हुई। आज बहुत से लोग पतासा, शक्कर इत्यादि बाटकर प्रभावना करने की भावना रखते हैं पर विचार करिये कि उस प्रभावना का उतना मूल्य नही है, जितना कि यदि वे ज्ञान की प्रभावना करे, दर्शन की प्रभावना करें।

जैन धर्म की प्रभावना करने वाले बहुत से ऐसे सुज्ञ लोग हें जो दहेज मे भी अन्य–अन्य भोतिक पदार्थ न देकर शास्त्र प्रवचन की पुस्तके आदि साहित्य देते हैं और धर्म की भावना करते हैं। दान शील ब्रह्मचर्य, भद्रिक स्वभाव मधुर भाषीता उनसे भी स्वय 'आत्मा की शुद्धि के साथ जैन धर्म की भी प्रभावना होती है। क्योकि आत्मीय गुणो के प्रकाशन से उसका प्रभाव साधर्मियो पर पडता हे। पर खेद होता है कि आज दिखावा इतना आ चुका हे कि प्रशसा के भूखे प्रभावना तो बाटते हैं पर जहा कोई साधर्मी की सहायता का प्रसग सामने आता है तो बहुत विरले ही उसमे सहयोग प्रदान करते हैं। आज के धनाढय व्यक्ति शादी विवाह आदि प्रसगो पर हजारो रुपयों

के उपहार दे देगे। इन ससारी चीजो से मोह ही बढता है, जो दूसरो को भी कर्मो का बन्ध करवाते हैं। किन्तु जो साहित्य कर्म निर्जरा का, आत्म–शुद्धि और पुण्यार्जन का हेतु है, उससे धर्म की प्रभावना नहीवत् करेगे।

भव्यात्माओ ! आप महाप्रभु महावीर के उपासक हैं, तो जरा उनके द्वारा प्ररुपित धर्म की प्रभावना करना सीखिये। केवल वाहवाही, यशलिप्सा एव सासारिक प्रपचो मे ही रह गए तो आत्म–शुद्धि होने वाली नहीं है। बिना आत्म–शुद्धि के परमात्मा रूप प्रगट नहीं हो सकता। अत प्रभावना की विविध विधाओ पर ध्यान रखते हुए, यथाशक्ति आचरण की परिधि मे उन्हे उतारेगे तो आपका जीवन धन्य बनेगा। इसी भावना के साथ–

मोटा उपाश्रय, 23–7–85
घाटकोपर, बम्बई मगलवार

स्नात-पवित्र करे आत्मा को ज्ञानालोक से

इस काल चक्र मे चोबीस तीर्थकर भगवन्तो ने इस भू–धरातल को पावन किया था। तीर्थकर केवल–ज्ञान–दर्शन से युक्त होने के बाद समान शक्ति क धारक हो जाते हैं फिर उनमे कोई अन्तर नही रहता। शक्ति मे कोई न्यूनता नही होती। उनमे एक समान ज्ञान दर्शन, चारित्र, आनन्द एव सुख शक्तिया होती हें। तीर्थकर देव के वाणी रस को अलग–अलग तरीके से कवि अपनी कविता के माध्यम से अनुगूजित करते हैं।

यह तो बतला दिया गया है कि आत्म–प्रदेशो मे सकोच ओर विस्तार होता हे। दीपक के प्रकाश के समान। जब जीव चरम शरीरी बनता है। जिस शरीर से उसे मोक्ष जाना होता हे उस शरीर मे मरण अवस्था मे दो तिहाई भाग मे आत्म–प्रदेश घनीभूत हो जाते हें, जो कि सारे शरीर मे फेले रहते थे। शेलेशीकरण मे आत्म प्रदेश शरीर के प्रत्येक हिस्से से निकल कर पोलार भाग मे इकट्ठे होने के बाद शैलेशीकरण की अवस्था मे आ जाते हैं। शेलपर्वत को कहते हें जो कभी डिगता नहीं। विचलित कम्पित नहीं होता। मानलो कदाचित् पर्वत तूफान से प्रकम्पित हो भी जाय क्योकि तीर्थकर महावीर के जन्म के समय उत्सव मनाने के लिये उनको मेरु पर्वत पर ले गये थे। इन्द्र भगवान् की छोटी काया देखकर चिन्तित हो गये थे कि इतना अभिषेक किस प्रकार सहन करेगे। पर भगवान् को तो जन्म से ही अवधिज्ञान था जिससे उन्होंने इन्द्र की शका को जानकर निवारण के लिये पेर के अगूठे से पर्वत को हिला दिया। यह जानकर सभी आश्चर्य मे डूब गये। प्रसन्नता का पार न रहा। इससे तीर्थकर की शक्ति का पता चला। इन्द्र की शका का समाधान हो गया। इतनी शक्ति के धारक तीर्थकर जब अन्तिम भव में

शैलीशीभूत बने, तब दुनिया मे किसी के पास ताकत नही है कि उनके आत्म–प्रदेशो को हिला सके, कम्पित कर सके। ऐसी निष्प्रकम्प आत्मा, अन्त मे निर्वाण को प्राप्त कर लेती है, जहा जाने पर वह उसी रूप मे अनन्त काल तक रहती हुई शाश्वत सुख का अनुभव करती रहती है।

शाश्वत सुख की अनुभूति उपलब्धि के लिये सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यक् ज्ञानाराधनादि का प्रसग चल रहा है। यह चिन्तन का विषय है, कि आराधना का अन्तिम फल क्या होगा ? तो सभी यही कहेगे कि मोक्ष। परन्तु उससे पहले हमारे आत्म प्रदेशो मे, मन मे जो चचलता है, मन बाहर की ओर भाग रहा है, आत्म प्रदेश ऊचे से नीचे, नीचे से ऊपर की ओर भाग रहे हैं। जिस प्रकार कढाई मे उबलता हुआ तेल नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे की ओर जाता है, उसी प्रकार मस्तिष्क के आत्म–प्रदेश पैरो की ओर और पैरो के आत्म–प्रदेश मस्तिक की ओर चलते रहते हैं।

जिसका कारण है–आठ कर्म और इनके पैदा होने मे निमित्त तीन मन, वचन, काया की अप्रशस्त प्रवृत्ति। सबसे पहले जिन कारणो से कर्म बधते हैं, उन्हे रोको। बाहर से लगता है कि शरीर पाप कर्म कर रहा है, पर यह मालूम है कि यह स्वत कुछ भी नही करता है। उससे करवाया जा रहा है। वह तो आज्ञा का पालक है। विचार करना है कि भावना कहा पैदा होती है मन मे, मस्तिष्क मे ? शरीर को तो जैसी आज्ञा होती है, तदनुसार उसमे हलचल हो जाती है। वैसे लोग कहते हैं कि शरीर चल कर आया, पर वास्तव मे मन चलकर आया है। शरीर तो मन का वाहन है। आप कहते हैं कि कार आ गई पर क्या वास्तव मे कार चलकर आ सकती है। नही। कार तो आप चला रहे हैं। आप ड्राइवर हैं। वह तो साधन मात्र है। वैसे ही आत्मा की कार शरीर है एव ड्राइवर मन है। वही कार को चलाता है। मन भी अकेला कुछ नहीं करता। वह भी आत्मा के साथ जुडा हुआ है। शरीर से कर्म होता है। वह मन कराता हे और मन को भी आत्मा कर्म कराती है। यह साकल जुडी है। उसको ठीक करने के लिए जीवन को समझने का प्रसग है। पर किस प्रकार ? सम्यग्ज्ञान से ज्ञान के बाधक तत्त्वो को रोकने का प्रसग है। मनुष्य अन्दर आने की कोशिश करता है पर दरवाजा बन्द है तो जब तक वह दरवाजा बन्द होने का कारण एव उसको खोलने का पुरुषार्थ नहीं करेगा, तब तक वह न तो भीतर जा सकेगा न बाहर आ सकेगा। ज्ञान तो प्रकट होने की कोशिश करता ह पर रास्ता बन्द हे, क्योकि दीवार का अवरोध हे। पूर्वजन्म के ज्ञानावरणीयादि कर्मो ने आकर ज्ञान को आवृत्त कर दिया है। वे हटे तभी ज्ञान प्रकट हो

सकता हे। ज्ञान को प्रकट करने के लिये यह जान ले कि इसके बाधक कारण क्या हैं, और उन्हे केसे दूर किया जाय ? सम्यकज्ञान के जो आचार हैं उन्हे जानना आवश्यक है। तभी हम कर्मो के आश्रव को रोककर बद्ध कर्म का आवरण हटा पायेगे। ज्ञानावरणीय कर्म, आयु कर्म बाधना मनुष्य के हाथ की बात है और वह उसे तोड भी सकता है, पर अज्ञान अधकार मे रहकर नही।

एक रूपक है कि एक व्यक्ति आखो से देख सकता है, पर वह कमरे मे जाकर द्वार बद कर दे, और बिस्तर पर रजाई ओढकर सो जाय और फिर विचार करे कि मैं देखू तो क्या वह देख सकेगा ? चाहे आखे खुली हो या बन्द, आगे रजाई का आवरण है। वहा वह देखने की कोशिश भी करे और रजाई को भी ओढे तो कभी भी देख नहीं सकेगा। जब तक रजाई नहीं हटेगी तब तक नही देख सकता। यदि रजाई हटाकर दरवाजा खोलकर बाहर आ जाएगा तभी प्रकाश देख सकेगा। प्रकाश तो है पर जब तक पर्दा नही हटेगा तब तक न तो बाहर जा पाएगा, और न प्रकाश के दर्शन ही हो पायेगा। इसी तरह ज्ञानावरणीय कर्म को रजाई की तरह ओढ लिया है। इसी कारण ज्ञान नही होता। इसलिये ज्ञान आवरण का रोकना चाहिये। ज्ञान, ज्ञानी पर द्वेष करने से, दुश्मनी करने से, इस प्रकार की ज्ञानी की आशातना करने से, ज्ञान के साधनो की तोडफोड करने से, ज्ञान जिनसे सीखा उनके नाम का गोपन करने से ज्ञानावरणीय कर्म बधता है, कोई माता सोचे कि उसका बालक ज्ञान नहीं करे, अत जब वह पढने लगता है तो वह कभी किताबे छिपा देती, कभी उसे दूसरा काम सौंप देती है। इस तरह वह कुछ–न–कुछ अवरोध पैदा करती है, जिससे बालक को ज्ञान न होने पाए। इस तरह वह माता ज्ञानावरणीय कर्मो का बन्ध कर लेती है। अत जिनको ज्ञान पैदा करना है, उन्हे इन कारणो को छोडना चाहिये। जब ज्ञानावरणीय कर्म बन्ध जाता है तो कभी–कभी बहुत परिश्रम करने पर भी ज्ञान का उपार्जन नहीं हो पाता। लेकिन जब व्यक्ति सत्पुरुषार्थ के बल पर आगे बढता है तो एक–न–एक दिन साधना ससिद्धि प्राप्त कर लेता है। उदाहरणार्थ एक साधु गाथा याद कर रहे थे जोर–जोर से। पर याद नहीं हो पा रही थी तब आस–पास के लोग हसते हुए निकल गये कि एक गाथा नहीं याद कर पा रहा है तो यह साधु आगे क्या करेगा। यह सुन उन्हे खेद होता। वे सोचते कि अहा ! ये सब मेरी कितनी हसी उडा रहे हैं। बहुत दु ख करते ये, पर जब दूसरे व्यक्ति प्रशसा करते कि उहो कितने पुरुषार्थी हैं। कितनी मेहनत से याद कर रहे हैं, तो वे अपनी प्रशसा सुनकर प्रसन्न भी हो जाते। इस तरह निन्दा से नाराज और प्रशसा

से प्रसन्न होना, उनकी प्रवृत्ति बन गई। एक वार वे गुरुदेव के पास पहुचे ओर कहा कि मैं इतनी मेहनत करता हू फिर भी मुझे याद नही होता। लोग मेरा उपहास करते हैं। गुरुदेव ने कहा कि तुमने पूर्व भव मे किसी को अन्तराय दी होगी। ज्ञान के साधनो का तिरस्कार किया होगा। ज्ञानी की आशातना की होगी। ज्ञान उपार्जन करते समय किसी को सहायता नही दी होगी। जिनसे ज्ञान प्राप्त किया, उनका अपमान किया होगा। नाम का गोपन किया होगा। इसी कारण तुम्हे ज्ञान याद करने मे इतनी कठिनाई हो रही है। गुरुदेव की बात सुनकर वह कहने लगा, अब वर्तमान मे क्या करू ? तो गुरुदेव ने कहा– प्रतिज्ञा करो। किसी के भी ज्ञान अर्पण करने मे अन्तराय नहीं दोगे और ज्ञानी के प्रति द्वेष भाव नहीं रखोगे। साथ ही प्रतिज्ञा करो कोई निन्दा करेगा तो दु खी नहीं बनोगे। कोई प्रशसा करेगा तो खुश नहीं होवोगे। गुरुदेव ने कहा–'मा रुष मा तुष' इस समभाव का तुम आचरण अपनालो और पुरुषार्थ को अपनालो। गुरुदेव के अमृतामय उपदेश को उसने दृढता के साथ धारण किया, और उसी के अनुसार वर्तन करने लगा। मा तुष, मा रुष तो याद नही रहा, पर इतना याद रहा कि माष तुष। लेकिन इसके अर्थ को उन्होने जीवन मे अच्छी तरह उतार लिया। उनके अशुद्ध उच्चारण से हसते भी, तो भी वे 'समो निदा पससासु' के सिद्धान्त को जीवन मे रमा लेने से सब समभाव से सह लेते, चमत्कार हुआ महाप्रभु के एक वाक्य को जीवन मे उतार लेने मात्र से। उन साधु को केवलज्ञान, केवलदर्शन हो गया। उनके ज्ञानावरक घनघाती कर्म नष्ट हो गये। एक गाथा तो याद नहीं हो पाई, पर वे उसकी साधना से पूरे विश्व दृष्टा बन गये।

बन्धुओ ! यदि सम्यक्ज्ञान का उपार्जन कर जीवन का चरम लक्ष्य ससिद्ध करना है तो ज्ञान के आचारो का बोध प्राप्त करे। ज्ञानावरणीय कर्म बध कराने वाले वैभाविक प्रवृत्तियो से हटने का पुरुषार्थ करे। अपने आपको समभाव मे रमण करावे तो एक–न–एक दिन जीवन मे ज्ञान का अभिनव आलोक विकसित होगा, जिससे सदासदा के लिए अज्ञान अधकार भाग जाएगा, परिपूर्ण ज्ञानी आत्मा परिपूर्ण दृष्टा बन जायेगी।

ज्ञान के परिपूर्ण आवरण तोडने के लिए मोह को दूर करना प्रथम आवश्यक है, क्योकि मोह उसकी मूल जड है, जड मूल के साथ मोह के उखडते ही ज्ञानावरणीय कर्म भी नष्ट हो जायेगा। आत्मा ज्ञान के अलौकिक प्रकाश मे स्नात हो जायेगी।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

24 7 85
बुधवार

सम्यक्-ज्ञान
(वैचारिक जीवन जीने की कला)

आठ-आचार

- कालाचार
- विनयाचार
- बहुमानाचार
- उपधानाचार
- अनिह्नवाचार
- व्यंजनाचार
- अर्थाचार
- तदुभयाचार

कालाचार

(सम्यक् ज्ञान का प्रथम आचार)

तीर्थंकर महापुरुषो का मनुष्य जीवन पर इतना अधिक उपकार है कि उस उपकार का प्रत्युपकार चुकाना बहुत ही कठिन है। उन्होने प्राणी मात्र पर कितनी परम कृपा दृष्टि बरसाई और सभी प्राणियो की सुरक्षा के लिये उपदेश दिया कि जो जीवन आज जी रहे हैं, वह जीवन शरीर पिंड के साथ ससार अवस्था में रहा हुआ है। सिद्धात्मा मे एक भी शरीर नहीं रहता है। वर्तमान मे यहा पर मनुष्य के औदारिक, तैजस और कार्मण तीन शरीर हैं।

व्यक्ति जो जीवन का निर्वाह कर रहे हैं, वह दो रूप में है। एक शरीर की दृष्टि से और दूसरा आत्मा की दृष्टि से अर्थात् शरीर और आत्मा की सहावस्थान स्थिति से ही यह जीवन चलता है। उसी को जीवन की सज्ञा दी जाती है। दोनों मे से एक की भी कमी हो तो उसे जीवन नहीं कहा जा सकता है। शरीर की सुरक्षा के लिए मनुष्य शरीर को भोजन देता है, उसके तीन माध्यम हैं, पानी, अन्न और हवा। यदि ज्ञानी है तो वह शरीर को ये तीनो चीजे आध्यात्मिक साधना के लिये देता है और अज्ञानी है तो वह ये तीनो चीजे सिर्फ इहलौकिक सुख का उपभोग करने की दृष्टि से देता है। यह ज्ञानी और अज्ञानी का छोटा–सा अन्तर है। यदि शरीर को भोजन न दिया जाय तो कितने समय तक शरीर का सयोग रह सकता है। पानी के अभाव मे व्यक्ति 14 दिन निकाल सकता है और ऐसा सुना है कि अन्न के बिना तो आज कई लम्बी तपश्चर्या हो ही रही है। अन्न खुराक है। पानी उसे पचाने मे मददगार है और हवा प्राणो की सुरक्षा में सहायक बनती है। जिस पुरुष को यह विश्वास हो जाता है कि ये तीनो तत्त्व लेने से जीवन सुरक्षित रह सकता है, वही इन तीनो को ग्रहण करता है। जब प्यास और भूख दोनो हैं तो पहले वह पानी ग्रहण करेगा और बाद में अन्न। ठीक वैसे ही शरीर को

खुराक देने तक ही आप सीमित न रहे, प्रत्युत जीवन के दो मुख्य अग हैं, इसका ख्याल रखे।

आत्मा को खुराक देने के लिये आप क्या कुछ सोच रहे हैं ? आत्मा की खुराक शरीर की खुराक से भिन्न है। आत्मा का पानी, आत्मा का खाद्य पदार्थ और आत्मा के लिये हवा कुछ और ही प्रकार की है। इसके लिये ही आपको वीतराग वाणी श्रवण कराई जा रही है। आत्मा की शक्ति, आत्मा का शुद्ध स्वरूप अधिक से अधिक पुष्ट अवस्था को प्राप्त होता जाय, ऐसी सुसाधना रूप खुराक इसको नित्य प्रतिदिन खिलाई जाय तथा सम्यग्ज्ञान रूपी पानी पिलाया जाय। साधना के साथ यदि आत्मा को सम्यक्ज्ञान रूपी पानी जब तक नही मिलेगा तब तक आत्म-साधना मे निखार नही आ सकता। अत जैसा श्रद्धान किया, उसके अनुरूप आत्मा को खुराक भी दी जाय। आत्मा को बराबर योग्य खुराक प्राप्त होती रहे, इसका ख्याल रखे।

शास्त्र जो पुस्तको मे अक्षर रूप से समाहित हैं ये मात्र अक्षर ही परिपूर्ण रूप से आगम नही हैं। वे तो सिर्फ निमित्त हैं। उन अक्षरो को पढकर आगम ज्ञान अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञानादि प्राप्त किया जा सकता है। आत्मा को आध्यात्मिक ज्ञान की खुराक देने के लिये सर्वप्रथम आगमो का अध्ययन करे। जेसे शैलडी के टुकडे के भीतर ही उसका रस रहा हुआ है ठीक वैसे ही जो यह पुस्तको मे अक्षर रूप श्रुत निहित हैं उसी मे आध्यात्मिक आदि ज्ञान का रस भी भरा हुआ हे। अत अपने ज्ञानाचार का निर्वाह करने हेतु सर्वप्रथम अपने जीवन मे स्वाध्याय की सम्यक् प्रणाली अपनाये। जो लिपि आज हमारे सामने अर्ध मागधी भाषा मे निबद्ध हे, वह सभी के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण हे। अर्ध मागधी भाषा को देव भाषा भी कहते हैं। आपको विशिष्ट श्रुतरूप ज्ञानरूपी पानी को पीने के लिये अनाचार का स्वरूप समझना अतीव आवश्यक है। उसके आठ भेद हें। उनमे सर्वप्रथम भेद है **कलाचार**। जिस समय स्वाध्याय का काल है, उस समय ही स्वाध्याय करना हे ओर जो काल स्वाध्याय का नहीं ह उस समय स्वाध्याय नही करना। आगमो का अध्येता, विज्ञाता स्वाध्याय-अस्वाध्याय के काल का पूरा-पूरा ख्याल रखे। शास्त्र दो तरह के हैं, कालिक और उत्कालिक। कालिक सूत्र का स्वाध्याय दिन के व रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहर मे ही किया जाय और सूर्यास्त आदि के सन्धिकाल को समय मे छोड दे।

शास्त्र मे वर्णन आता है कि साधु प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय करते थे दूसरे प्रहर मे ध्यान, तीसरे प्रहर मे गोचरी और चौथे प्रहर मे स्वाध्याय। और यही क्रम रात्रि मे भी बताया है। सिर्फ तीसरे प्रहर मे गोचरी की जगह निद्रा लेना कहा है। परन्तु यह कार्यक्रम हर समय लागू नही हो सकता है। क्योकि जिस क्षेत्र मे गोचरी का जो काल हो, उसी काल मे गोचरी करने का भी शास्त्र मे विधान है। जैसे कि दशवैकालिक सूत्र के पाचवे अध्ययन की चौथी गाथा में बतलाया है–

कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।
अकाल च विवज्जित्ता, काले काल समायरे।।

अत द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव से ही यह सारी शास्त्रीय विधि लागू होती है। शास्त्रकारो ने दिन के चारो प्रहरो मे से विहार करने का किसी भी प्रहर में नहीं बतलाया, जबकि आगमो मे साधु के लिये नव कल्पी विहार का विधान है तो वह विहार कब करे ? अत स्पष्ट है कि विहार के समय स्वाध्यायादि कार्यक्रम गौण करें। इस प्रकार करने से कल्प मर्यादा का भी उल्लघन नहीं होता। शास्त्र मे साधक को सकेत दिया है–

काले काल समायरे' यह सूत्र साधक को आह्वान कर रहा है कि हे साधक ! जिस कार्य का जो समय हो, वही कार्य उस समय करना योग्य है। अर्थात् जिस क्षेत्र मे गृहस्थी के घर जिस समय भोजन बनता है, उसी समय साधक गोचरी के लिए जा सकता है। कई लोग कहते हैं, कि साधु के लिये तो सिर्फ एक टाइम भोजन करने का शास्त्र मे विधान है, पर उनका यह कथन सार्वकालिक नहीं है। शास्त्र मे साधु के लिये यदि एक वक्त ही भोजन करने का विधान होता तो भगवती सूत्र मे ऐसा उल्लेख क्यो आता कि साधु पहले प्रहर का आहार–पानी चौथे प्रहर मे नहीं भोगे। इससे यह स्पष्ट होता है कि जैसी–जैसी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से शास्त्रीय मर्यादानुसार अनुकूलता होवे, उसी प्रकार साधु अपना आहारादि कार्य करता हुआ, स्वाध्याय के काल का ध्यान रख कर स्वाध्याय करे। क्योकि अस्वाध्याय काल मे स्वाध्याय करने पर उस समय यदि आकाश मार्ग से देवो का गमनागमन हो रहा हो तो जो स्वाध्याय प्रेमी सम्यग्दृष्टि देव होते हैं वे कष्ट तो नहीं देते हैं किन्तु किसी न किसी रूप में अस्वाध्याय का सकेत करा देते हैं। पर जो मिथ्यादृष्टि देव होते हैं वे अस्वाध्याय मे स्वाध्याय करने वाले पर उपद्रव भी कर सकते हैं।

अत ज्ञानाचार के पहले आचार **कालाचार** का बोध प्राप्त कर विवेक रखना आवश्यक है।

एक महात्मा, सध्या के समय प्रतिक्रमण करने बाद आकाश की प्रतिलेखना करके स्वाध्याय करने के लिये बैठे, पर वे स्वाध्याय करते हुए इतने आत्मविभोर बन गए कि शब्द–उच्चारण रूप स्वाध्याय का काल परिपूर्ण हो गया, उसका यह ध्यान ही नही रहा अत अकाल मे भी स्वाध्याय करते रहे। उस समय एक सम्यग्दृष्टि देव आकाश मार्ग से जा रहा था। उसका उपयोग उस तरफ लगा और विचार किया कि ये साधु प्रशस्त भावो से स्वाध्याय तो कर रहे हैं, पर अस्वाध्याय काल आ गया है, इसका इन्हे ध्यान नहीं है। कही मिथ्यादृष्टि देव इन पर प्रकुपित होकर कष्ट न दे, इससे पूर्व इन्हे सकेत कर देना चाहिये। यह सोचकर वह देव उन्हे प्रतिबोध देने हेतु अहीर का रूप बनाकर दही बेचने की दृष्टि से जोर–जोर से उस साधक के उपाश्रय के नीचे गुजरते हुए आवाज लगाने लगा। दधि लो दधि लो इत्यादि। ये शब्द श्रवण कर वे साधक बीच मे स्वाध्याय रोक कर उस अहीर को कहने लगे–अरे अभी तो सभी लोग सोये हुए हैं। तुम्हारा दही कोन खरीदेगा ? इतने जोर–जोर से क्यो बोल रहे हो, क्या यह कोई अभी दही बेचने का समय हे ? तब देव ने प्रत्युत्तर मे कहा कि महाराज ! यह ठीक हे कि अभी दही बेचने का समय तो नही हे पर मैं आपको पूछता हू कि क्या अभी स्वाध्याय करने का समय हे ? यह बात सुनते ही वह साधु एकदम चोंका ओर समय का ख्याल किया, तब उसे पता चला कि "अहो मैं अस्वाध्याय काल मे भी स्वाध्याय कर रहा हू। मैंने कितनी बडी गलती कर दी।" बडी सरलतापूर्वक वे साधक अपनी गलती को स्वीकार करते हैं, और उस देव का बडे नम्र शब्दो से आभार मानते हैं।

बन्धुओ ! जो सरल होता है, और सरलतापूर्वक अपनी गलती स्वीकार कर लेता है वही अपनी आध्यात्मिक स्थिति को सुरक्षित रख सकता है। शास्त्र मे उल्लेख आया है कि एक चक्रवर्ती महाराज छ खण्ड का राज्य छोडकर मुनि बन जाय और यदि उनसे कुछ गलती हो जाय, तब उनकी [illegible] दासी भी यदि उन्हे प्रतिबोध देवे तो भी उनका कर्त्तव्य है कि वे अह [illegible] उस दासी का उपकार मानते हुए सरलतापूर्वक अपनी गलती को [illegible] स्वीकार कर प्रायश्चित, आलोचना पश्चाताप कर ले।

बन्धुओ ! ज्ञान की प्यास शात हो सके इसके लिए ज्ञान की वास्तविक स्थिति जीवन मे लाने के लिए कालाचार आदि ज्ञान के सभी आचारो का स्वरूप समझना है। कालाचार का स्वरूप सम्यकतया समझकर शास्त्र मे जिस समय जिस आगम का स्वाध्याय करने का विधान आया है, उस समय अस्वाध्याय के सारे बोलों का ख्याल रखते हुए चिन्तन मनन पूर्वक स्वाध्याय करे तो जरूर आप आध्यात्मिक ज्ञान की खुराक आत्मा को बराबर देते हुए आत्मिक शक्तियो को पुष्ट बना सकेंगे। इन्हीं मगलमय शुभ भावो के साथ–

मोटा उपाश्रय 25 7 85

घाटकोपर बम्बई गुरुवार

ज्ञान हो पर अनुभूति के साथ

वीतराग देव की पवित्र वाणी का रसास्वादन भव्य मुमुक्षु जन प्रतिदिन कर रहे हैं। यह वाणी ही ऐसी है कि इस वाणी को यदि जीवन मे उतारने का प्रसग आ जाय तो आत्मा की जितनी भी दु खमय अवस्थाए हैं, वे सभी समाप्त हो सकती हैं।

प्रत्येक ससारी आत्मा दु ख की अनुभूतिया कर रही हैं, पर सबसे अधिक दु ख मृत्यु के समय मे होता है। मृत्यु कोई नही चाहता। मृत्यु का नाम सुनते ही कपकपी छूट जाती है। जन्म लेते समय भी दु ख होता है, पर वह अवस्था अबोध होने से, उस समय दु ख की विशेष अनुभूति नहीं हो पाती है, पर मृत्यु का नाम श्रवण करते ही जो दु खद अनुभूति होती है, वह जन्म के समय होने वाले दु ख से बहुत अधिक है। जन्म और मृत्यु ये दोनो ही अवस्थाए आत्मा को, किस कारण से होती हैं, इस विषय मे शास्त्रकार कहते हैं, कि यदि तुम्हे जन्म लेने की इच्छा न हो, सदा–सदा के लिए आनन्दमय स्थिति को प्राप्त करना हो तो अन्य को जन्म मत दो। जो दूसरो को जन्म देता है, वह स्वय जन्म ग्रहण करता है, तथा जो अन्यो को मारता है (आसक्ति पूर्व) कषायपूर्वक तो वह अत्यधिक जन्म–मरण की परम्परा को बढाता है।

आचाराग सूत्र मे कहा है कि जो मनुष्य पृथ्वीकायादि षट्काय के जीवो को मारता है, उनका हनन करता है, वह अपनी जन्ममरण की परम्परा बढाता है। मनुष्य पृथ्वीकाय के जीवो का हनन कैसे करता है, जैसे कि उदाहरण के तौर पर समझलो, कोई मनुष्य अपने मकान की नीव खुदवा रहा है, तो वहा असख्य पृथ्वीकाय के जीवो की हिसा का प्रसग बनता है। यदि कोई कहे कि यह कार्य तो मजदूर करता है अत सारा पाप उसे लगेगा, पर उसका यह मानना गलत है कारण कि वह मजदूर तो लाचारीवश कर रहा

है अत उसको कम पाप लगता है पर जो करा रहा है आदेश दे रहा है, उसे विशेष पाप लगता है। जैसे–सेठ मुनीम से बहीखाता का काम कराता है, पर यदि कभी उसकी गलती पकडली जाती है तो सारा दण्ड मुनीम भोगता है या सेठ ? उत्तर होगा सेठ। इसी प्रकार नींव आप मजदूर से खुदवा रहे हैं पर पाप सिर्फ मजदूर को ही नही लग रहा है, मजदूर से विशेष पाप आपको लग रहा है। पर खेद होता है, कि आज के युग मे जो पच महाव्रत– धारी साधु कहलाते हैं, छ काया के रक्षक माने जाते हैं, उनमे भी कई छ काया के जीवो की हिसा मे भाग ले रहे हैं। कई प्रसग ऐसे सुनने मे आ रहे हैं, कि साधु स्वय नींव खोदना आदि–आदि कार्य मे सक्रिय सहयोग प्रदान करते हैं। भले वो स्थानक बनाने का कार्य हो या फिर सार्वजनिक धर्मशाला, हॉस्पिटल, स्कूल आदि किसी भी मकान का किसी भी नाम से निर्माण कार्य हो। सभी मे हिसा तो होती ही है। जिसका साधु के लिये सर्वथा त्याग होता है, वह तो अपनी सीमा मे रहकर दान, शील, तप, भावना का उपदेश दे सकता है, बाकी आरम्भ–जनक कार्यो मे सहभागी बनना उसके लिये कतई अभीष्ट नहीं है।

बन्धुओं ! व्याख्यान के प्रसग से भी स्वाध्याय का प्रसग उपस्थित होता है। ज्ञानीजन कहते हैं कि हिसा करने वाले प्राणी भी स्वाध्याय मे सलग्न बन पश्चाताप की स्थिति से अपनी असख्य जन्ममरण की श्रृखला तोड सकते हैं। श्रावक सोचें कि मेरा भी वह दिन धन्य होगा, जब मैं भी समस्त सासारिक प्रपच छोडकर अणगार प्रवृत्ति को अगीकार करूगा। ऐसी भावना भाते हुए भी आप अपने कर्मो की निर्जरा कर सकते हैं। शास्त्रे का स्वाध्याय करने से अत्यधिक लाभ की उपलब्धि हो सकती है। जब भगवान् से पूछा गया कि स्वाध्याय करने से क्या लाभ है ? तब प्रभु ने फरमाया कि स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म की निर्जरा होती है। उत्तराध्ययन सूत्र के 29 वे अध्ययन मे बतलाया है–

'सज्झाएण भते। जीवे कि जणयइ ?
सज्झाएण नाणावरणिज्ज कम्म खवेइ।

स्वाध्याय भी दो प्रकार का है–एक तो शास्त्रीय स्वाध्याय, पुस्तक के माध्यम से किया जाने वाला। दूसरा है 'स्वास्मिन् अध्याय इति स्वाध्याय अर्थात् अपना चिन्तन करने वाला स्वाध्याय। आप शास्त्रें का स्वाध्याय करते हैं, इससे भी निर्जरा होती है। पर स्वाध्याय के बाद ध्यान यदि आप करते हैं तो वह ध्यानरूपी स्वाध्याय अक्षरीय स्वाध्याय का रस लेने का एक

अत्युत्तम साधन बनता है। यह एक प्रकार की अनुप्रेक्षा है, अनुप्रेक्षा का तात्पर्य गइराई से अर्थ का एव स्वय का चिन्तन मनन करना, इससे स्वय के जीवन की स्वाध्याय होती है। स्व के अध्याय का प्रसग उपस्थित होता है। यह स्वाध्याय का दूसरा प्रकार है।

आप आधा घटा पुस्तक से स्वाध्याय करे तो आधा घटा ध्यान रूपी स्वाध्याय अवश्य करे। पुस्तकीय स्वाध्याय भी आवश्यक है, पर उसका रस लेने के लिए आत्मरमण की स्थिति से ध्यान करना अतीव उपयोगी होगा। ध्यान रूपी स्वाध्याय मे स्व का अध्ययन करते समय चिन्तन यह करे कि हम बहुत लम्बे समय से अशुद्ध विभाव के साथ रमण कर रहे हैं, पर अब सम्यक्त्व के साथ स्वभाव से अपना सम्बन्ध स्थापित करे। आत्म शक्तियो को निरन्त वृद्धिगत करते हुए चेतन के भेद विज्ञान से आत्मान्मुखी बने। स्वय के जीवन का समीक्षण करे कि मेरा जीवन किस ढग से चल रहा है। मैं जन्म मरण की श्रृखला बढा रहा हू या कम कर रहा हू ? यदि पारिवारिक आसक्ति एव धन वैभव की तृष्णा मे ही जिन्दगी व्यतीत कर दूगा, तो अवश्य ही गेरी भव–श्रृखला बढ जाएगी। अत इसे तोडने के लिए स्वाध्याय, स्व का चिन्तन करना आवश्यक है।

आज व्यक्ति अक्षरीय ज्ञान प्राप्त कर बडी डिग्रिया तो प्राप्त कर रहा हे, पर स्व के ज्ञान के अभाव मे कितनी हास्यास्पद स्थिति जीवन मे बन जाती है, इसे आप कथानक के माध्यम से समझे।

प्राचीन काल मे काशी के विश्वविद्यालय मे बहुत से विद्यार्थी पढते थे। एक गाव का विद्यार्थी भी वहा पढने आया। वह वहा का सारा अध्ययन बडी लगनपूर्वक करके उत्तीर्ण हो गया। तत्पश्चात् उसने अपने माता–पिता को समाचार प्रपित किये कि 'मेरा विद्याध्ययन पूर्ण हो गया है, में आ रहा हू। मुझे लेने के लिए आप जल्दी ही आना।'' सारे गाव वालो को यह सूचना जब मिली कि अमुक का लडका विद्वान् बन पडित की पदवी को पाकर काशी से आ रहा है तो सभी गाव वाले उत्सुकतापूर्वक उसके स्वागत की तैयारी करने लगे। इधर वे पडितजी अपने गाव के बाहर पहुचकर, गाव वाले लोग, जो स्वागत करने के लिए आने वाले हैं, उनकी प्रतीक्षा करने हेतु एक वृक्ष की छाया म वट गय। तभी चार बहिने जो पनघट पर पानी भरने के लिए आई, व परस्पर वात करन लगीं उन्हीं पडितजी के विपय मे, जा काशी से पढकर आय हैं और वृक्ष के नीचे वैठ हुए हैं। वे अनुभवी बहिने परस्पर कहने लगीं

कि ये पडितजी काशी से पढकर भले ही आये हैं, पर लगता ऐसा हे कि सिर्फ इन्होने अक्षरीय ज्ञान ही प्राप्त किया है। कहावत के अनुसार इन्होने पढा है पर गुना नहीं है।

अपनी इस अनुभूति का साक्षात्कार करने हेतु वे बहिने उनके पास पहुची और इधर–उधर की बाते करती हुई बोली– पडितजी ! आप तो पढ लिख करके आ गये, पर क्या कहू ? पडितजी ने पूछा–क्यों क्या बात हुई ? कहो–कहो जल्दी कहो। तब वे बहिने कहने लगीं–पडित साहब क्या कहू। कहने की हिम्मत नहीं हो रही है। पडितजी बोले अरे बहिनों। आप सकोच क्यों कर रही हो ? जो कुछ भी है, साफ–साफ कह दो। मैं जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हू। तब वे बहिने बोली–पडित साहब आप तो काशी पढने के लिए गये थे, पर पीछे से आपकी पडितानीजी । पुन कहती–कहती रूक गई तो पडितजी झुझलाते हुए कहने लगे– अरे तुम चुप क्यो हो गई, कहो ना पडितानीजी को क्या हुआ ? पडितजी आपकी पडितानीजी अर्थात् आपकी धर्मपत्नी विधवा हो गई। ज्योंही यह बात पडितजी ने सुनी तो वे बडे दु खी दिल होकर फूट–फूट कर रोने लगे। उनको रोते देख उन बहिनों को बडी जोर से हसी आने लगी, पर बडी मुश्किल से हसी रोककर पडितजी को ढाढस बधाने लगी। कहने लगी कि पडित सा ! अब रोने से क्या होने वाला है, जो होना था सो हो गया। आप चुप रहिये और चलिये घर की तरफ पर पडितजी के अश्रुओ का निर्झर बद नहीं हुआ और इधर परिवार वाले तथा गाव के सभी लोग उनका स्वागत करने के लिए वहा आ पहुचे थे। वे बहिनें जिन्होने बडी मुश्किल से हसी रोक रखी थी, उस भीड का लाभ उठाते हुए वहा से नौ दो ग्यारह हो गई। इधर परिवार वाले और गाव वाले सभी सदस्यों ने उन पडित साहब को इस प्रकार जोर–जोर से रोते देखकर अनुमान लगाया कि शायद किसी "गमी" के समाचार इन्हे मिले हैं, इसलिये ये इस तरह रो रहे हैं। वे सभी लोग भी रीतिरिवाज के अनुसार पडित सा के रोने में साथ देने लगे और सभी रोते–राते घर पहुचे। घर पहुचने के बाद भी बहुत देर तक रोने का कार्यक्रम चलता रहा। आखिर रोते–रोते पडित सा, जब कुछ चुप हुए तो सभी ने पूछा कि क्या हुआ पडित साहब। किनकी मृत्यु के समाचार मिले हैं आपको ? तब पडित साहब ने आश्चर्यपूर्वक कहा कि किसकी मृत्यु ? अरे ! आप गाव रहते हो, फिर भी आपको पता नहीं ? बेचारी पडितानीजी विधवा हो गई। यह सुन कर सभी लोग एक साथ खिलखिलाकर हस पडे और उनकी विधवा बहिन जो अपने

भैया का स्वागत करने के लिए आई हुई थी, कहने लगी कि वाह भाई वाह ! आपने भी खूब अपनी हसी करवाई। अरे ! आपके रहते हुए मेरी भाभी विधवा कैसे हो सकती है ? तभी पडितजी जो काशी से पढ लिखकर विद्वान् बनकर आये थे, तर्क देते हुए कहने लगे ओह ! तुम भी कैसी बात करती हो ? मेरे रहते हुए तुम्हारी भाभी "विधवा" नही हो सकती है तो मैं पूछता हू कि मेरे रहते तुम कैसे विधवा हो गई ? यह सुनकर सभी लोग पुन खिलखिलाकर हस पडे। बहिन भी अपनी हसी को रोक नही सकी, कहा कि भाई ! मेरे पतिदेव मर गये हैं इसलिये मैं विधवा हो गई हू पर मेरी भाभी के पतिदेव तो आप हैं अत आपके रहते हुए मेरी भाभी विधवा नहीं हो सकती है। अब कुछ बात पडित सा को समझ मे आई और गहराई से सोचकर कहा कि अच्छा। अब समझा, ऐसी बात है या ! ओह ऽऽ मैं कितना उल्लू बन गया। उन बहिनो ने भी मेरी अच्छी हसी करवाई। पूछा गया किन बहिनो ने ? तब पडितजी ने उनका परिचय दिया तब घर के सदस्य इस बात का रहस्य पूछने उनके पास गए तब उन्होने बताया कि हमने जब यह देखा कि पडितजी जहा बैठे थे वहा कीडी–नगरा था। जब पडितजी को बैठने के स्थान का भी विवेक नही है तो हमने अनुमान लगाया कि ये काशी से पढकर भले ही आये हैं पर इनमे विवेक–ज्ञान का अभाव है, इसीलिये हमारे अनुमान का प्रत्यक्षीकरण हमने किया और हमारा अनुमान शतप्रतिशत ठीक निकला।

बन्धुओ ! इस कथानक से यह सबक ग्रहण करना है कि ज्ञान सीखे अवश्य पर, विवेक का जागरण जीवन मे अवश्य हो। केवल तोता रटन ज्ञान से जीवन का सद् विकास नही हो सकता है। आज स्वाध्याय करने के प्रसग से प्राय मनुष्य मात्र मूल–मूल को रट लेते हैं, पर उसका अर्थ क्या है यह नहीं जानते हैं। ज्ञान के आचार क्या हैं इनका भी उन्हे ज्ञान नही रहता। यही कारण है कि प्रभावमय स्वाध्याय जिसका महान् फल आत्मशुद्धि है, वह प्राप्त होने के बजाय कभी–कभी उल्टा प्रसग भी उपस्थित हो जाता है।

अत आप स्वाध्याय की स्थिति जीवन मे अपनाने से पहले सर्वप्रथम ज्ञानाचार का भेद कालाचार व इसके स्वरूप का सम्यक् बोध करे और यथासमय स्वाध्याय, ध्यान आदि प्रक्रियाओ से आत्मशुद्धि रूप प्रशस्त पथ के पथिक बने। इन्हीं मगलमय शुभ भावो के साथ–

मोटा उपाश्रय — 26 7 85

घाटकोपर, बम्बई — शुक्रवार

महाप्रयाण

(महासती श्री नगीनाकुवरजी)

आज का प्रसग सर्वविदित है, कि ब्यावर मे महासती श्री नगीना कुवरजी का स्वर्गवास हो चुका है, अत व्याख्यान का प्रसग तो नही है, सिर्फ उन महासतीजी के जीवन पर कुछ प्रकाश डालने का प्रसग है।

बन्धुओ ! सयमी जीवन कितना महत्त्वपूर्ण जीवन है ! इस जीवन मे जो व्रत अगीकार करते हैं, वे व्रत कितने विशाल एव व्यापक होते हैं, यह विचारने का प्रसग है। कई मनुष्य विचारते हैं, कि व्रत प्रत्याख्यान तो जीवन मे बधन हैं, ये बधन तो मैं नहीं ले सकता हू। पर विचारना है कि ये व्रत–प्रत्याख्यान बधन हैं या बधन से मुक्ति हैं।

जो मनुष्य परिवार मे जन्म लेकर परिवार के सदस्यो के साथ अपना सम्बन्ध करके चलता है, उन्हीं को अपना मानता है वह अपने विराट जीवन को सकुचित घेरे मे रखकर चलता है। अपने परिवार के बन्धन मे ही बन्धा रहता है। वह व्यक्ति कहीं भी जाता है पर पुन लौटकर शीघ्र घर जाने की ही भावना बनी रहती है। इस प्रकार घर के बन्धन मे बन्धा हुआ होने पर वह अपना ससार और भी अधिक सकुचित कर लेता है। सिर्फ अपनी पत्नी को ही अपनी मानता है और विचार करता है कि हमारा यह दाम्पत्य जीवन अमर रहे। इस आसक्ति बन्धन मे फसा, अन्य सभी के प्रति परायापन की वृत्ति रखता है। आतरिक बन्धन से घिरा हुआ वह इस सकुचित सासारिक बन्धन रूपी कैदखाने मे रहता हुआ, अपनी हविशो की परिपूर्ति के साथ क्या क्या अनर्थ वृत्तिया जीवन में अपना लेता है ? 1 हिसा, 2 असत्य, 3 चौर्य, 4 अब्रह्म 5 परिग्रह आदि–आदि वृत्तियो मे उलझता हुआ,

बन्धनमय जीवनयापन करता है। उसकी यह बन्धन परम्परा भव-भव तक चलती रहती है।

इस विश्व मे एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त सभी जीव जन्म-मरण कर रहे हैं। निगोद जिसके एक शरीर मे अनन्तानन्त जीव होते हैं और सचित्त जल में सात प्रकार के जीवो की नियमा हैं, उसमे भी लीलन-फूलन की अपेक्षा अनन्तानन्त जीव हैं।

वे व्यक्ति इन अनन्त जीवो की ही नही, छ काया के जीवो की हिसा करते रहते हैं, पर जो सकुचित घेरे से निकलकर सयम व्रत ग्रहण करते हैं, वे अपने प्रथम महाव्रत की स्थिति से सभी जीवो को अभयदान देकर विराट् जीवन मे प्रवेश कर लेते हैं। जो विराट् जीवन को प्राप्त हो जाते हैं, वे छ ही काया की रक्षा करते हुए आहार, पानी ग्रहण करते हैं। असत्य भाषण भी उनके छूट जाता हे। अचौर्य व्रत की स्थिति से बिना किसी की आज्ञा के तृण मात्र भी वे नहीं उठा सकते हैं। जैसे-स्थानक मे जब साधु प्रवेश करते हैं, तब वे स्थानक मे रही हुई समस्त चीजो को, जो उनके कल्पनीय हैं, उन्हे भी बिना आज्ञा ग्रहण नही करते हैं। यही नही यदि कपडा सीलने के लिए सुई लाने का प्रसग भी आवे तो भी वह जो कुछ सीलना है और उसे ही सीलने की आज्ञा लेकर आया है, तो यह उसी वस्त्र को सील सकता है, अन्य कुछ भी नहीं। अगर अन्य कुछ सीलता है, तो उसे चोरी लगती है। कार्य पूरा होने पर सूर्यास्त के पहले-पहले वह सुई पुन गृहस्थ को भोला दी जाती है। सुई भी साधु रात्रि मे स्वय के पास नही रख सकता है। इतनी सूक्ष्मरूपेण चोरी का भी उसे त्याग होता है। चौथा व्रत ब्रह्मचर्य है, जिसमें वह अपने मन की सम्पूर्ण विकारी वृत्तियो को अपने जीवन से निकाल देता है, और अनादि-कालीन मोह बन्धन से छूटने हेतु नववाड ब्रह्मचर्य व्रत की परिपालना करता है, तथा पाचवा अपरिग्रह व्रत जिसमे धर्म सहायक उपकरण के अलावा कुछ भी नहीं रखता है। उन पर भी मूर्च्छा (ममता) नही रखता है। यही नही साधु धातु का चश्मा भी अपने पास न रखे। उसमे छोटी से छोटी कील भी क्यो हो उसे भी न रखे। साधु अपने हाथ से किसी को पत्र न लिखे, न अपने नाम से मगवावे। गृहस्थ बन्द पत्र लेकर आवे तो साधु स्वय के हाथ से खोले भी नहीं, गृहस्थ स्वय उसे फाडकर दे तो साधु पढले और लिखाने योग्य उत्तर हो तो गृहस्थ से ही लिखावे। इस प्रकार साधु समस्त बन्धनों से छुटकारा पाकर विराट् पथ का पथिक बन जाता है। मुक्ति के मगलमय राजपथ पर उसके चरण अग्रसित हो जाते हैं। वह सबका वन्दनीय बन जाता है।

इस विषयक एक उदाहरण है। सुधर्मा स्वामी राजगृही नगरी मे जब पधारे तब एक लकडहारा जो कि अतीव निर्धन स्थिति मे था वह सुधर्मा स्वामी के पास आकर कहने लगा कि मुझे ससार की लालसाओ से मुक्ति का मार्ग बताओ। तब सुधर्मा स्वामी ने मुक्ति का मार्ग बताया तो लकडहारे ने सयम ग्रहण कर लिया। एक बार का प्रसग है, जब महाराज श्रेणिक अभयकुमार के साथ वन भ्रमण हेतु बाहर निकले हुए थे तब वही लकडहारा मुनि वेश में उस रास्ते से निकला तो अभयकुमार उस मुनि को वदन करने हेतु वाहन से नीचे उतरे और उन्हें विधिवत् वदन किया। अभयकुमार की यह चर्या देखकर अन्य सब कर्मचारी मन ही मन हसने लगे कि यह लकडहारा जिसको कि अभयकुमार वदन कर रहा है, उसने क्या त्याग किया ? अभयकुमार, जो कि ओत्पति की बुद्धि के मालिक थे, वे अपने बुद्धि बल से उन लोगो के भावों को पहचान कर उनकी भ्रमणा निकालने हेतु एक योजना बनाई। नगर भर मे ऐलान करवाया कि तीन करोड सौनया, तीन शर्त पर मिल सकती है, जिसको चाहिये वह लेने के लिए राजसभा में उपस्थित हो जाय। बहुत बडी मात्र मे भीड़ इकट्ठी हो गई। राजसभा प्रजाजनो से खचाखच भर गई, तब अभयकुमार ने अपनी शर्त जाहिर की--

1 पहली शर्त है कि जो पुरुष अपने जीवन मे पूर्ण ब्रह्मव्रत की आराधना करे, तीन करण तीन योग से तो उसे एक करोड सौनया मिलेगा।

2 दूसरी शर्त है कि जो तीन करण तीन योग से अहिसा व्रत की आराधना करे, किसी भी सूक्ष्म, बादर, त्रस, स्थावर जीवो की हिसा नही करे, उसे भी एक करोड सौनया मिलेगा।

3 तीसरी शर्त है कि जो अग्निकाय के आरम्भ का सम्पूर्णतया आजीवन तीन करण तीन योग से त्याग करे, उसे भी एक करोड सौनया मिलेगा।

इन तीनों शर्तो के साथ तीन करोड सौनया मिलने की घोषणा कराई गई जिसे श्रवण करके सब आहिस्ते--आहिस्ते खिसकने लगे। तब अभयकुमार उन कर्मचारियो को कहने लगे कि देखो मैंने जब उस लकडहारे को जो अब मुनि बन चुके हैं, पाच महाव्रत जिन्होंने अगीकार कर लिया है-- अहिसा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप उनको वन्दना की तो आप लोग हस पडे, आपकी यह विचारधारा थी कि यह लकडहारा जो कल तो दीन, हीन अवस्था को प्राप्त था और आज साधु बन गया तो अभयकुमार भी इसको

वदना कर रहे हैं। चरणो का स्पर्श कर रहे हैं। आखिर इसने क्या त्याग किया है ? पर अब आप समझ चुके होगे, उसने जो त्याग किया है वह त्याग स्वीकार करने का सामर्थ्य क्या हर किसी मे हो सकता है ?

क्योकि मेरे बताये इन तीन व्रतो मे से कोई एक व्रत को भी स्वीकारने के लिए तैयार नही है, जबकि प्रत्येक के पीछे एक--एक करोड सौनया देने को तैयार है। तो विचार करिये वह लकडहारा जिसने ऐसा एक व्रत नहीं अपितु पाच महाव्रत अगीकार कर सासारिक बधनो से निवृत्त होकर मुनि रूप मे पालन कर रहा है, अत उसका त्याग तीन करोड सौनयो से भी कई गुणाधिक है।

बन्धुओ ! त्याग प्रत्याख्यान का महत्त्व पहचानो ! त्यागी महापुरुषो का जीवन कितना दिव्य होता है। वे मानवो के तो क्या सुरासुरो के इन्द्रो के भी वदनीय बन जाते हैं। बाह्य बन्धनो से ही नही वरन् आभ्यन्तर जबरदस्त कर्मो के बधन से भी मुक्त होते जाते हैं। अमित आत्मीय वैभव को समुलब्ध कर लेते हैं।

जो महासतीजी सयमी जीवन मे जिन आत्मीय गुणो की ज्योति को प्रज्वलित कर जो आज स्वर्गवास हो गये हैं, यदि उन्हे सच्ची श्रद्धाजलि अर्पित करना चाहते हैं, तो इन सासारिक बन्धनो से कुछ परे हटे। बधन से परे हटने का एक मात्र उपाय है, त्याग–प्रत्याख्यान। उन्हे जीवन मे स्वीकार कर मुक्ति के प्रशस्त राजमार्ग पर आगे बढे। इन्हीं शुभ भावो के साथ।

मोटा उपाश्रय | 27 7 85
घाटकोपर, बम्बई | शनिवार

मृत्यु भी महोत्सव है

(72 दिन के सथारे के साथ
महासती श्री वल्लभकुवरजी का महाप्रयाण)

कल दिन एक महासती के स्वर्गवास का प्रसग आया। उस प्रसग से उनके जीवन पर प्रकाश डाला गया। आज पुन प्रसग आया है। जिस महासतीजी का सथारा लम्बे समय से चल रहा था वह कल रात्रि को सीझ गया है, अत व्याख्यान का प्रसग तो नही रहा है, लेकिन उन महासतीजी के जीवन के विषय मे चितन करना सभी के लिए हितावह है।

दुर्लभ अगों की सप्राप्ति बहुतो को होती है, और कई आत्माए उनका फायदा उठाकर मोक्ष मार्ग की पथिक भी बनती हैं, पर ऐसी आत्माए विरल ही होती हैं, जो अपने इसी जीवन मे समग्ररूपेण रूपान्तरण करले। वस्तुत उन्हीं आत्माओ की विशेषता है। महासतीजी वल्लभकुवरजी आज सभी के कितने वल्लभ बन गये हैं। कौन जानता था कि ये महासतीजी प्रभु महावीर एव क्रान्तिकारी युवाचार्यो के इस शासन मे एक जाज्वल्यमान नक्षत्र के रूप में एक ऐसा अश्रुतपूर्व आदर्श उपस्थित करेगी।

इन महासतीजी का जीवन कोई अक्षरीय विद्वता से परिपूरित नही था। विद्वान् कौन होता है ? सिर्फ अक्षरीय ज्ञान से कोई विद्वान् नही होता है। वास्तविक विद्वान् वे ही हैं, जो आत्मस्थ बन आत्मिकगुणो की ज्योति से अपने जीवन को प्रकाशमय बना लेते हैं।

62 दिन का सथारा पूर्व मे इसी शासन मे हुआ जरूर, पर 72 दिन का यह अद्वितीय सथारा प्रथम ही सुनने को मिला।

शरीर का ममत्व छोडना कोई सहज बात नहीं है। शरीर के ममत्व को छोडकर अन्तिम समय की साधना कोई कम महत्त्व की चीज नहीं है।

राग–द्वेष की चित्तवृत्तियो का शमन करके अपने आप मे आत्मस्थ हो जाना बहुत दुर्लभ है। यह समाधि है। इसका स्वरूप अतीव गहन है। समाधि का तात्पर्य हे–जहा मलिन विचार राग–द्वेष से परिपूरित जो वृत्तिया हैं, उनसे परे हटकर शान्त–दान्त बन जाना, यही सच्ची समाधि है। साधना जीवन मे कितनी हुई और कितनी नहीं हुई, इसका रिजल्ट अन्तिम समय मे आता है। हमारे सुकृत्यो की परछाया अन्तिम समय मे आती है। यदि अन्तिम समय की साधना सुधर जाती है, तो भव्यात्मा के अनेक जन्म–मरण की स्थिति समाप्त हो सकती है। बहुत जल्दी मोक्ष प्राप्ति का प्रसग बन सकता है। अन्तिम समय को सुधारने के लिए पहले से आत्मा को सलेखित करना अति आवश्यक है। सलेखना के साथ सथारा की स्थिति जीवन म आती है तभी वह सथारा देहातीत अवस्था को प्राप्त हो, आत्मरमण के सम्मुख आ सकता है और वह आत्मा सच्चे अर्थो मे पडित की पदवी प्राप्त करती है।

गीता के अन्दर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से प्रश्न किया कि– "भगवन् ! आज दुनिया मे बहुत से व्यक्ति अपने आप को विद्वान् शिरोमणि मानते हैं, तो क्या वे वस्तुत पडित हैं ? विद्वान् हैं ?" तब कृष्ण महाराज ने कहा कि नही सिर्फ मानने मात्र से कोई विद्वान् या पडित नही होता वरन् विद्या और विनय से जो सम्पन्न है और प्रत्येक आत्मा के साथ समदर्शिता की स्थिति लेकर जो चलते हैं, वही पडित हैं। जैसा कि गीता का श्लोक है–

"विद्या विनय सम्पन्ने, बाह्मणी गवि हस्तिनि।
शुनि चेव श्वपाकेच, पण्डिता समदर्शिन ।।"

जैन आगम मे भी बताया है, कि जो लाभ और अलाभ मे समभाव रखता है, वही पडित है। सस्कृति मे व्युत्पत्ति करते हुए बतलाया है कि –"पापात् बिभेति इति पडित" जो साधना की स्थिति से आगे बढ रहा है और उसकी साधना की चतुर्दिक् मे भूरि– भूरि प्रशसा हो रही है, उस समय प्रशसा मे फूलकर ऐसा कार्य न करना, जो श्रमण सस्कृति से निर्गन्थपने की स्थिति से विरुद्ध हो तथा कोई निन्दा करे तो भी किचित् मात्र भी निन्दा करने वालो के प्रति द्वेष भाव नही लाना प्रत्युत निरन्तर राग–द्वेष की वृत्तियो से ऊपर उठने की साधना मे सलग्न बने रहना, वास्तविक आराधना है। साधना होती ह आत्म–समाधि के लिये। उस साधना से, उस आत्म– समाधि से कई एक लब्धिया भी उपलब्ध हो सकती हैं। चूकि साधना चमत्कार लब्धियो की प्रसव भूमि है, पर चमत्कार दिखाना साधना का आदर्श नहीं है न उद्देश्य ही है। ज्ञानीजना का फरमाना है कि अपना वास्तविक कल्याण चाहते हो तो

चमत्कार से बचकर सदाचार का अभ्यास करो। सदाचार ही ससार का महान् चमत्कार है। अपनी प्राप्त लब्धियो को गोपकर चलो। ऐसी स्थिति जिसे प्राप्त हो जाती है वही यथार्थ मे पडित की सज्ञा को प्राप्त हो सकता है।

सथारे की स्थिति मे अपनी महिमा का प्रसार देखकर प्रफुल्लित न हो और किसी के द्वारा निन्दा किये जाने पर खिन्न न हो।

'समोनिन्दापससासु'

यह आदर्श जीवन में उतारे। ससार की, न किसी भी प्रकार के इस लोक की कामना रहे न परलोक की कामना रहे, न इस लोक–परलोक की कामना रखी जाय। सभी प्रकार की भौतिक कामनाओं से हटकर आत्मा मे रमण करते रहना सथारे की सार्थकता है।

ऐसी आत्मलीनता मुझे स्व गुरुदेव आचार्य श्री गणेशीलाल जी म सा मे देखने को मिली, जिनके शरीर मे भयकर कैंसर जैसी व्याधि होते हुए भी किस शान्त–दान्त भाव से उसको उन्होने सहन किया, जिसे देखकर उदयपुर के डॉक्टर शूरवीरसिहजी, रामावतारजी एव बम्बई से डॉक्टर बोरजस की रिपोर्ट भी आयी। उसमे भी यही भाव थे कि इस बीमारी को देखते हुए जीना बहुत मुश्किल है। यह तो इन महात्मा के तपोबल का ही प्रभाव है कि वे शात भाव से आगे बढ रहे हैं। डॉक्टर रामावतार ने साफ कहा कि इन महात्मा के सामने तो हमारी डॉक्टरी थ्योरी फैल हो चुकी है।

जब स्वर्गीय गुरुदेव ने सथारा ग्रहण किया तब अत्यन्त सजगता के साथ मेरे से सथारा की पाटियो का उच्चारण करवाते हुए ग्रहण किया था। यह बतलाते रहे कि यह पाटी बोलो, यह पाटी बालो। 29 घटे तक सथारा चला जिसे देखकर जनता आश्चर्यचकित हो गई। किसी आचार्य के इस प्रकार सथारा चलना, देखने–सुनने को कम मिलता है।

स्वर्गीय गुरुदेव ने अपनी वृद्धावस्था मे भी श्रमण सस्कृति की सुरक्षा बनाये रखने के लिए जो एक दीक्षा–शिक्षा प्रायश्चित–चातुर्मास एक आचार्य के सान्निध्य मे हो, का क्रान्तिकारी कदम उठाया, वही आज पल्लवित, पुष्पित फलित होता परिलक्षित हो रहा है। स्वर्गीय गुरुदेव को सयम प्रिय था, पद नहीं इसलिए उन्होंने सयम की सुरक्षा के लिए उपाचार्य जैसे सर्व सत्ता सम्पन्न पद की भी कुर्बानी दे दी। यह शासन बीस–बाइस वर्षो से किसी प्रकार प्रगतिशील है, यह आप सबके सामने है।

आज जो महासतीजी के स्वर्गवास के समाचार मिले हैं, उनके शरीर मे भी असाध्य बीमारी की स्थिति बन गई थी। वृद्धावस्था भी आ चुकी थी। एक दिन जब बीमारी ने उग्र रूप धारण किया तब शरीर की स्थिति देखते हुए एव महासतीजी के बार–बार आग्रह को देखते हुए, कि कही मैं खाली नही चली जाऊ, उन्हे सथारा करा दिया गया। बाद मे जब सथारा लम्बा चलने लगा तो उन्हे सूचित भी किया गया कि आप पारणा कर सकते हैं। आपके सथारे मे भी आगार रखा गया है, किन्तु महासतीजी अपनी प्रतिज्ञा से दृढ रही। वह कभी भी सथारे को छोडने के लिए तैयार नही हुई।

ऐसी स्थिति मे यदि उन्हे जबरदस्ती आहार करवाने की स्थिति बने तो यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि शरीर मे असमाधि उत्पन्न हो सकती है, जो उनके जीवन के लिए खतरा बन सकता है। समाचार मिला कि महासतीजी अत्यन्त प्रसन्नता के साथ समभाव की साधना मे रमण करती हुई, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर आगे बढती रही थी। आज उन्ही महासतीजी के स्वर्गवास का समाचार मिला है। उनकी समभाव की साधना की यह सारी रिपोर्ट भी दर्शनार्थी भाइयो से बराबर मिलती रही थी। अपूर्व शाति, सौम्यता और सुख समाधिपूर्वक महासतीजी का सथारा चला। महासतीजी वस्तुत विद्वान् थीं, पडित थी। जहा विद्वता सिर्फ कलात्मक हो, वह वास्तविक विद्वता नही है। पर जहा विद्वता रचनात्मक हो, जीवन निर्माण की भूमिका अदा करती हो वह विद्वता व्यक्ति को सच्चा विद्वान् बनाती है। जितने आगम हैं, उन्ही आगमो का मात्र अक्षरीय रूप चारदीवारी मे आबद्ध रहकर अपने आपको भले ही विद्वान् मान ले, पर ज्ञानीजन कहते हैं। कि वह सही विद्वान् नही है पर जो आध्यात्मिक जीवन और आत्मीय गुणो को जागृत विकसित करने की स्थिति से सयमनिष्ठ बनकर सम्यक आचरण की दिशा मे आगे बढता है, वही सच्चा सिद्वान् हे। अपने सयमी जीवन को सवारने वाला ही प्राणीमात्र को अभय दे सकता है। उस अभय देने वाली आत्मा को समाधि प्राप्त हो सकती हे।

दूसरो को शान्ति देने वाली आत्मा स्वय अखूट शाति प्राप्त कर सकती हे। अशाति देने वाले को कभी शाति नही मिलती। क्रिया ओर प्रतिक्रिया ये दोनो साथ–साथ चलती हैं। यह वहुत बडा वैज्ञानिक तथ्य हे। अहिसक के समक्ष हिसक भी अपना वेर विरोध भूल जाते हें और हिसक को देखकर तो उल्लेख आता ह कि वनस्पति भी भयभीत हो जाती हे। अत आप परिपूर्ण अहिसक वन सभी को शाति दे, समाधि समुलब्ध कराये।

बन्धुओ। जो सभी को भयभीत कर असमाधि उत्पन्न करता है वह स्वय कैसे समाधि सम्प्राप्त कर सकता है ? प्राणी मात्र के अभय प्रदाता प्रभु महावीर ने समवशरण मे प्रवेश करने वालो के लिए जिन पाच अभिगमो का विधान किया उसमे बताया कि धार्मिक स्थान जो कि निरवद्य स्थान है वहा सभी को अभयदान मिलने का प्रसग बनता है। अत समवशरण की भूमि में उत्तरासन्नपूर्वक सम्पूर्ण सचित्त वस्तुओ का त्याग करके प्रवेश किया जाता है।

चातुर्मास के इन पुण्यमय दिनो में कम से कम इस पवित्र धर्म स्थान में छोटे से छोटे जीव को भी अपनी तरफ से अशाति असमाधि उत्पन्न नही करना चाहिए। साधु जीवन इसी का प्रतीक है कि वह किसी प्राणी को कष्ट देना, सताना नहीं चाहता है, चाहे स्वय कितने ही कष्ट उठा लेता है। इसी प्रकार समाधिमय साधना करने वाला ही अन्तिम समय मे पूर्णरूपेण समाधि रूप पडित मरण की स्थिति को प्राप्त कर सकता है। इस पडित मरण के समाचार के उपलक्ष्य मे यह प्रतिज्ञा करें कि अपना जीवन समाधिमय बनाकर चलें। किसी भी आत्मा को असमाधि नहीं पहुचाये। यदि 24 घण्टो मे परिपूर्ण रूपेण अभय की साधना नहीं कर सके तो कम से कम 1 घण्टा भी जगत् के जीवों का अभयदान देने का अभ्यास करना चाहिये। ऐसी अभ्यास वृत्ति से अतिम समय को सुसफल बनाया जा सकता है। अभ्यास से सब कुछ साध्य है। जिनका सम्पूर्ण जीवन ममत्व से अलिप्त है, उनका अन्तिम समय में एकाएक सभी से ममत्व छूट जाय, यह कम सम्भव है।

जीवनभर अध्यवसायो की जिन स्थितियो से मानव गुजरता है, अन्तिम समय में वे ही अध्यवसाय प्राय बनते रहते हैं। जो असमाधि से परिपूरित जीवन को लेकर चल रहा है, उसका अन्तिम समय समाधिमय बनना कठिन है। विचार करिये। आप जिनकी ममता से सारी जिन्दगी व्यतीत कर देते हैं, क्या वह ममता अन्तिम समय मे दूर हो सकती है ? जल्दी से नही। 72 दिन का यह दिव्य सथारा हमारे लिये प्रेरणा स्रोत बन चुका है। वे महासतीजी जो भद्रिक भाव से साधना करते रहे। उनके 72 दिन का सथारा आज आप श्रवण कर रहे हैं। एक जीवन भी यदि पडित मरण से मृत्यु मे परिवर्तित हो जाय तो अवश्यमेव अतिशीघ्र मोक्षगामी बना जा सकता है।

शास्त्रें का अध्ययन, सयम का पालन प्रत्येक प्राणी को अभयदान देना ये सभी सद्-अनुष्ठान समाधि के ही हेतु हैं। उन सती के भावात्मक जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर जो अपने जीवन को शुभ भद्रिक एव सरल भावो से

परिपूरित करेगे तो समाधिमय बनते हुए अन्तिम घडियो मे दिव्य समाधि की स्थिति को सप्राप्त कर सकेगे।

उन महासतीजी के गुणमय भावमय जीवन को स्मृति मे रखते हुए उनसे सतत् प्रेरणा लेते रहेगे और सभी प्राणियो को समाधि पहुचायेगे। अभयदान देगे तो भव्यात्माओ का जीवन भी एक दिन अश्वयमेव मगलमय बनेगा।

मोटा उपाश्रय — 28 7 85

घाटकोपर, बम्बई — रविवार

ज्ञान का ज्ञान हो

तीर्थंकर भगवन्तो ने इस मनुष्य जाति के शरीर मे रहकर सुसाधना के द्वारा घनघाती कर्म क्षय करके केवलज्ञान एव केवलदर्शन प्राप्त किया, तदनुसार चार तीर्थ की स्थापना की तथा उपदेश की धारा मे द्वादशागी का ज्ञान फरमाया। साथ ही यह भी बतलाया कि सिर्फ द्वादशागी तक ही ज्ञान सीमित नहीं है, वरन् उससे भी आगे ज्ञान है।

महाप्रभु ने मति, श्रुत, अवधि, मनपर्याय और केवलज्ञान के भेद से ज्ञान को पाच भागों मे विभक्त किया है। इन 5 प्रकार के ज्ञानो में सारा ज्ञान समाहित हो जाता है। जिस समय शरीर मे रहती हुई आत्मा केवलज्ञान और केवलदर्शन की उपलब्धि के बाद जब पाच ज्ञानो का प्रतिपादन करती है उस समय वह आत्मा रूपी एव साकार अवस्था में रहती है। पर जब वही आत्मा सिद्ध बन जाती है, तब वह निराकार और अरूपी अवस्था में आ जाती है।

प्रार्थना की कडियों में जो ये निराकार, साकार शब्द आये हैं, वे ससारी और सिद्ध आत्मा की अपेक्षा से हैं। साकार और निराकार यह आत्मा का ही भिन्न–भिन्न स्वरूप है। चैतन्य रहित जड पदार्थ भी साकार–निराकार दोनो तरह के होते हैं। जैसे जो मकान हैं, स्तम्भ हैं, वे साकार हैं, पर धर्मास्तिकाय जो कि चैतन्यरहित है, उसका कोई आकार नहीं है। यहा प्रार्थना की कडियो में जड के साकार, निराकारपने का कथन नहीं है वरन् सचेतन आत्मा के लिये कथन आया है, और वह सचेतन आत्मा साकार अवस्था में रही पुरुषार्थ बल से अपनी अष्टकर्म बेडी तोडकर अनन्तज्ञान/केवलज्ञान की निराकार अवस्था को प्राप्त कर स्वामी बन सिद्ध रूप मे पहुच सकती है पर कब ? जब वह कर्म आच्छादित अनन्तज्ञान राशि का बोध करके उसे प्राप्त करने के लिये कटिबद्ध हो जाये। ज्ञान की अनन्तता के विषय में क्या कहा जाय।

एक बार स्थूलिभद्र ने पूर्वो का अध्ययन करते हुये भद्रबाहु स्वामी से जिज्ञासा की कि भगवन् ! मुझे कितना ज्ञान हो गया और कितना ज्ञान होना शेष है, तब भद्रबाहु स्वामी ने फरमाया कि हे आयुष्मान् ! कल्पना करो कि एक विशाल समुद्र जो अथाह जल से परिपूरित है, उसमे से चिडियॉ अपनी चोच मे जितना पानी ग्रहण कर सकती है, उतना सा ज्ञान अभी तक तुम्हे हुआ है। ज्ञान अथाह समुद्र के पानी की तरह अनन्त है। अभी बहुत ज्ञान करना शेष है।

बन्धुओ ! जब स्थूलिभद्र जैसे ज्ञानी के विषय मे भी भद्रबाहु स्वामी ने यह बात फरमायी, तो फिर हमारे ज्ञान की क्या कुछ स्थिति है, इसे हम स्वय पहिचानने की कोशिश करे और अत्यन्त विनीत भावो के साथ अनन्त ज्ञान राशि को प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थरत बने।

शास्त्र मे आने वाली वर्णमाला का तात्पर्य है, अक्षर क, ख, ग इत्यादि। इनका सामूहिक रूप शब्द कहलाता है। शब्दो के समूह से वाक्य बनते हैं। उन्ही वाक्यो से जो दूसरो को ज्ञान होता है, वह ज्ञान, मति और श्रुत ज्ञान है, जो कि 5 इन्द्रियो और मन की स्थिति से होता है। विशिष्ट ज्ञान पाने के लिये विशिष्ट पुरुषार्थ करना होगा। इसके लिए एक रूपक है–किसान जब यह समझता है कि यह जमीन मक्का है, गन्ना है, तब तो वह पुरुषार्थ करना छोड सकता है, पर जमीन मिलने मात्र से यह नही समझा जा सकता, और न ही उससे उसकी उदर पूर्ति ही होती है। बीज बोने आदि रूप पुरुषार्थ करने पर ही उसे मक्का, गन्ना आदि उदर–पूर्ति के साधन प्राप्त हो सकते हैं। इसी प्रकार श्रुत ज्ञान रूपी शास्त्र जमीन के तुल्य है। इससे ज्ञान रूपी फसल तैयार करना है। ज्ञान रूपी फसल तैयार करने के लिये सत्पुरुषार्थी बनना नितान्त आवश्यक है। शास्त्रे का चिन्तन मननपूर्वक पठन, पाठन वीतराग वाणी के श्रवण को आगे बढाने वाला है। पर सिर्फ शास्त्रे का अक्षरीय ज्ञान हासिल कर लेना, अस्वाध्याय, स्वाध्याय के ज्ञाता बन जाना, वीतराग वाणी कई बार श्रवण कर लेना पर्याप्त नहीं है। यह सब तो जमीन की तैयारी है, किन्तु जब गहन चितन मनन के साथ आत्मा की अनन्त शक्तियो को प्राप्त करने के लिये, भीतरी ज्ञान जागृत करने के लिये मन और इन्द्रियो से होने वाले ज्ञान तक ही सीमित न रहकर आत्मा से होने वाली प्राप्ति में सत्पुरुषार्थशील बनेगे तब ही वास्तविक अतिन्द्रिय ज्ञान की प्राप्ति हो सकेगी। यथार्थ मे यह आत्मा की फसल तैयार करना होगा जिससे परम तृप्ति प्राप्त हो सकती है।

ज्ञान प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो तरह का बतलाया गया है। इन्द्रियो और मन की सहायता से होने वाला मति और श्रुत ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। और आत्म मात्र की अपेक्षा अवधि, मनपर्याय तथा केवलज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है। यह कथन पारमार्थिक कथन की अपेक्षा से जानना चाहिये। क्योकि इन्द्रिय और मन से होने वाले ज्ञान को व्यावहारिक प्रत्यक्ष भी माना गया है।

मैं ज्ञानाचार के जिन–जिन आठ भेदो की चर्चा कुछ दिनो से आपके सामने कर रहा हू उसमे सर्वप्रथम कालाचार के स्वरूप का प्रतिपादन चल रहा है। बन्धुओ ! एक विद्वान् सारी जिन्दगी पुस्तक एव शास्त्रे को पढ़ने मे खपा देता है। दूसरो को भी पढा देता है, पर क्या उसने यथार्थ मे पुस्तके पढी हैं। जब तक जीवन में रूपान्तरण नहीं आवे तब उसका पढना, पढना नही है। स्वाध्याय और शास्त्र पठन के साथ ही जब किसी के जीवन में सही परिवर्तन आने लगता है, उत्तेजना कम होती है। ज्ञानी के ज्ञान की वास्तविक फसल जिसके जीवन मे लहलहाती है, तो हम यह कह सकते हैं, कि उस व्यक्ति ने ज्ञान की सम्यक आराधना की है।

यदि शास्त्र पढले पर परिवर्तन कुछ भी नहीं आये, सिर्फ वह ज्ञान के अह मे डूबा रहे, अपने आपको पडित मानता रहे, यदि मानले कि मेरे समान कोई ज्ञानी नहीं है तो अह का वह कीडा उसके आध्यात्मिक जीवन में "घुन" का काम करता है। जैसे खेती में जब घुन लग जाता है तो सारी फसल नष्ट हो जाती है। उसी प्रकार उस तथाकथित ज्ञानी की ज्ञान रूपी फसल सिर्फ अक्षरीय ज्ञान तक ही सीमित रह जाती है। आगे नहीं पहुच पाती है। बन्धुओं ! आज यह स्थिति बहुतों की हो रही है। कपडे की चिन्दी पा लेने मात्र से बन्दर बजाज नहीं बन सकता है। वैसे ही थोडा सा ज्ञान मात्र हो जाने से ही आज के कई साधक अपने आपको बहुत बडे ज्ञानी समझने लगते हैं, लेकिन उनका यह मानना उन्हीं के पतन का कारण है। वर्तमान मे अवधि ज्ञान का सम्पूर्णत विच्छेद नहीं हुआ है। सिर्फ परम अवधिज्ञान का ही विच्छेद हुआ है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आज भी व्यक्ति को अवधि ज्ञान हो सकता है और श्रुतज्ञान के साधनो की तो कोई कमी नहीं है। साधना के बल से श्रुतज्ञान मे विशिष्टता लाई जा सकती है, परन्तु वर्तमान मे कई मनुष्य थोडे से श्रुतज्ञान मे ही सतुष्ट रह करके विराम ले लेते हैं। यह समझ लेते है कि मैने बहुत ज्ञान अर्जित कर लिया है। उनके इस अह को दूर करने के लिये ही मै यह बात बता रहा हू। चाहे चौदह वर्ष पूर्वधारी ज्ञानी भी क्यों न हो जाय पर वह भी केवलज्ञान के सामने तो समुद्र में बूद के तुल्य भी नहीं है।

बन्धुओ ! जब तक आप आगे सर्वोच्च केवल ज्ञान को प्राप्त करने की कोशिश नही करोगे तब तक परिपूर्ण लक्ष्य वरण नही कर सकोगे।

गौतम स्वामी जब आनन्द श्रावक को दर्शन देने के लिये गये तब आनन्द जी ने कहा–भगवन् ! मैं आपके चरण स्पर्श करने की भावना रखता हू, पर आप कुछ आगे पधारने की कृपा करावे। तब गौतम स्वामी आनन्द श्रावक के पास आये। आनन्द श्रावक ने तीन बार मस्तक झुकाकर वन्दन नमस्कार किया और फिर पूछा कि भगवन् ! क्या गृहस्थ को घर मे रहते हुए अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है ? गौतम स्वामी ने उत्तर दिया–"हत्ता अत्थि"। "हा आनन्द हो सकता है"–तो भगवन् मुझे भी अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है। उसके द्वारा मैं पूर्व की पश्चिम ओर दक्षिण मे 500 योजन लवण समुद्र के अन्दर तक, उत्तर मे चूल हिमवत पर्वत तक, अधोलोक मे प्रथम नरक के लोलुच्च्य नरक तक, ऊर्ध्वलोक मे सोधर्म स्वर्ग जानने और देखने लगा हू। यह सुनकर गौतम स्वामी ने आनद श्रावक को कहा–कि हे श्रावक ! गृहस्थावास मे रहे हुये गृहस्थ को अवधिज्ञान तो उत्पन्न हो सकता है, पर इतना विशाल अवधिज्ञान श्रावक को नही हो सकता है जबकि आनन्द श्रावक को उतना ज्ञान हो चुका था, जिसका स्पष्टीकरण स्वय भगवान् ने किया था। लेकिन विशिष्ट ज्ञान के धनी गौतम स्वामी इस बात को नही जान पाए कि आनन्द श्रमणोपासक को कितना ज्ञान हुआ ? इस पर कई भाई–बहन कहते हैं कि गौतम स्वामी चार ज्ञान के स्वामी है तो क्या उपयोग नही लगा सके ? प्रथम तो वे चार ज्ञान के स्वामी थे, ऐसा विशेषण आनन्दजी के यहा जाते गौतम स्वामी के शास्त्र मे देखने को नहीं मिलता है, तथा यह मान भी लिया जाय कि उन्हे चार ज्ञान थे, तो भी वे आनन्दजी श्रावक के अवधिज्ञान को नही जान सकते हैं, क्योकि ज्ञान तो अरूपी है और अवधि और मन पर्याय ज्ञान का विषय रूपी है, अत गौतम स्वामी भले ही उस समय ज्ञान के धनी हो पर वे आनन्द श्रावक के उस अरूपी ज्ञान को अपने रूपी विषयक अवधि, और मन पर्याय ज्ञान से कैसे जान सकते ? यही कारण था कि भगवान महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी से कहा कि–

"न हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सइ मग्गदेसिए।
सपइ नेयाउए पहे समय गोयम ! मा पमायए।।" उत्तरा 10/31

अर्थात् हे गौतम ! तू आज जिनको नहीं देखता है। प्रभु महावीर के इस कथन से यह भी स्पष्ट जाहिर हो रहा है कि छदमृस्थ रूपी विषयक ज्ञान से अरूपी ज्ञान को नहीं जान सकते हैं।

त्रिषष्टिशलाका पुरुष मे एक प्रसग आया है कि एक बार भगवान् महावीर चम्पक नगरी के बगीचे मे तप सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विराजमान थे। तब वहा का सम्राट जिसका नाम 'शाल' था, वह अपने युवराज 'महाशाल' आदि को साथ लेकर भगवान के चरणो मे पहुचा। भगवान् की अपूर्व देशना श्रवण कर सम्राट को ससार से विरक्ति हो गई और कहने लगे कि भगवन् ! ऐसा अमृतमय ज्ञान का निर्झर आज जिन्दगी मे मुझे प्रथम बार ही मिला है। मैं यह जान पाया कि इस जीवन मे कितनी महान् शक्ति है। उसको प्राप्त करने पर लोकालोक देखा जा सकता है। पर कब, जब उसके अनुरूप पुरुषार्थ करे, तब भगवन् ! मैं भी आपश्रीजी के चरणों मे दीक्षित होकर अपनी अनन्त ज्ञान ज्योति को प्रज्वलित करना चाहता हू। तब प्रभु महावीर ने फरमाया–

अहा सुह देवाणुप्पिया।
महा पडिबध करेह।।

जैसा तुमको सुख हो वैसा करो। शुभ कार्य मे विलम्ब मत करो। जब सम्राट ने पूर्णरूपेण दीक्षित होने की तैयारी करली, तब तक उनका पुत्र युवराज कहने लगा कि आप तो दीक्षा ले रहे हैं। इस दुर्लभ मनुष्य भव को सार्थक बनाना चाह रहे हो, तब यह बधन रूप राग का भाव मेरे सिर पर क्यो डाल रहे हो ? तब महाराज ने कहा कि नहीं भाई–तुम मेरे अप्रिय नहीं हो। यदि तुम भी इस ससार रूपी जल से निकलना चाहते हो तो तैयार हो जाओ, मैं तुम्हे सहर्ष अनुमति देता हू दीक्षा लेने की। तब युवराज ने पूछा कि पिताजी राज्य किसको समलाओगे ? तब महाराज ने कहा "तुम इसकी चिन्ता मत करो" । भानजे को राज्य भार सौंप देंगे। इस प्रकार भाणेज का राजमहोत्सव मनाकर पिता पुत्र दोनो प्रभु महावीर के चरणो मे दीक्षा ले लेते हैं, और दीक्षित होकर प्रभु महावीर के साथ विचरने लगते हैं। जब एक बार चम्पा नगरी में भगवान् महावीर का समवसरण हुआ तब वे दोनो साथ थे। उनमे जो शालमुनि थे वे भगवान् से निवेदन करने लगे–भगवान् ! मेरा भानजा ससार रूपी जेलखाने मे पडा हुआ है आप आज्ञा फरमायें तो उसे भी इस जेल से छुटकारा दिलाने के लिए पृष्ठ चम्पा नगरी मे जाना चाहते हैं, तब भगवान् ने उन्हे आज्ञा प्रदान की तब पिता–पुत्र जो मुनि बन चुके थे, गौतम स्वामी के साथ पृष्ठ चम्पा नगरी पहुचते हैं और तप सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। महाज्ञानी गौतम स्वामी ने अमृतोपम वाणी से सम्राट को उद्बोधन दिया। उससे वे जागृत होकर मुनिशाल का भानजा सम्राट

गागली, पुत्र को राज्य भार सभलाकर माता–पिता के साथ दीक्षा अगीकार कर लेते हैं। इस प्रकार गौतम स्वामी पाच भव्यात्माओ को लेकर पुन जब प्रभु महावीर के चरणो मे पहुचने हेतु पृष्ठ चम्पा से विहार कर जा रहे थे, तब उन नवीन सतो को ज्ञान देते हुए कहा कि तुम अब भगवान् की विराट् परिषद् मे जा रहे हो, वहा विनय धर्म का यथोचित पालन करना। केवली की, अवधिज्ञान की, मन पर्याय ज्ञान की आदि–आदि सभी की जुदी–जुदी परिषद है। तुम नवदीक्षित की परिषद् मे जाकर बैठना। गौतम स्वामी की यह आज्ञा सभी ने विनयपूर्वक शिरोधार्य की। लेकिन उनके अन्दर मे भावो की विशुद्धि निरन्तर बढती चली गयी। आत्मा ऊर्ध्वगामी साधना के लिये सर्वतोभावेन समर्पित होकर तन, मन, वचन से एकाकार हो गई। एक ही लक्ष्य की तरफ जिन का ध्यान तन्मय हो गया। भावनाओ मे विशुद्धि के प्रकर्ष गुणस्थानो पर आरोहण करने लगे। क्षपक श्रेणी पर चढकर अन्तरमुहूर्त मे ही भगवान् के पास पहुचने से पहले ही घनघाती कर्म क्षय कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन गये और महाप्रभु के समवसरण मे आकर सीधे केवली परिषद मे आकर बैठ गये। तब गौतम स्वामी को आश्चर्य हुआ। उनके मन मे कई सकल्प, विकल्प उठने लगे। तब घट–घट के अन्तर्यामी भगवान् महावीर कहने लगे कि गौतम ! तू क्या सोच रहा है। ये तन–मन से सर्वतोभावेन तुम्हारी आज्ञाओ मे समर्पित होकर चलने वाले मुनि अब तुम्हारी आज्ञा पालन की स्थिति से बहुत आगे बढ चुके हैं अर्थात् इनको केवलज्ञान, केवलदर्शन हो गया है। तब गौतम स्वामी ने यह सुना तो कहने लगे भगवन् ! यह क्या ? मैं इतने वर्ष से श्रुतचारित्र धर्म की आराधना कर रहा हू, पर अभी तक मुझे केवलज्ञान नहीं हुआ और ये मुनि जिनको अभी दीक्षा देकर मैं लाया और इतना जल्दी इन्हे केवलज्ञान हो गया, भगवन् ! ऐसा क्यो ? गौतमस्वामी के भीतर हलचल सी मच गई। उसे शात करने की दृष्टि से सात्वना देते हुए महाप्रभु ने फरमाया कि हे आयुष्मान गोतम ! तुम्हारा मेरे प्रति अनुराग हे, वह प्रशस्त है। वह आगे बढने वाला है। राग दो प्रकार को होता है–प्रशस्त और अप्रशस्त। प्रशस्त राग गुरु के प्रति, श्रुत के प्रति होता है और माता–पिता, पारिवारिक सदस्यो और पुद्गलो के प्रति जो अनुराग होता हे वह अप्रशस्त राग है। गोतम ! तुम इतने बेचेन मत बनो, कारण कि तुम्हारा जो मेरे प्रति प्रशस्त राग है, वह तुम्हे आगे बढाने वाला है। पर अभी तक काल की परिपक्वता नहीं आई हे, कर्मो के क्षय की स्थिति नही बनी है। तुम्हे केवलज्ञान नहीं हो पा रहा है। अभी तुम्हारे कुछ कर्मो का उपभोग अव शेष है, पर जव मुझे मोक्ष हो जायगा, तव तुम केवली

बन जाओगे। अत खेद मत करो। पुरुषार्थरत रहो। उत्तराध्ययन सूत्र के दसवे अध्ययन की पैंतीसवीं गाथा में भगवान् ने गौतम स्वामी को सम्बोधित करते हुए फरमाया कि हे गौतम–

अकलेवर–सेणि उस्सिया, सिद्धि गोयम ! लोय गच्छसि।
खेम च सिव अणुत्तर समय गोयम ! मा पमायए।।

अर्थात्–हे गौतम ! शरीर से रहित जो सिद्ध श्रेणि है, उसके सदृश पवित्र क्षपक श्रेणि पर चढकर सर्वोत्कृष्ट कल्याण रूप सिद्धलोक को प्राप्त होगा अत तू समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

यहा विचार करने की बात है कि इतने विशिष्ट ज्ञानी को भी महाप्रभु ने समय मात्र का भी प्रमाद नहीं करने के लिए कहा है जिनका कि उसी भव में मोक्ष निश्चित है। तो फिर आज के अधिकाश साधक जिनके पास श्रुतज्ञान भी पूरा नहीं है फिर उनके ज्ञान की इति भी हो गई जो प्रमाद या आलस्य मे समय व्यतीत करे। गौतम स्वामी से सम्बन्धित यह घटना चाहे किसी भी रुप मे घटित हुई हो लेकिन इससे यह शिक्षा मिलती है कि सदा आलस्य प्रमाद त्यागकर पुरुषार्थ करते रहो।

(यहा आप एक बात स्पष्ट करलें कि गौतम स्वामी ने जो गागली सम्राट के माता–पिता को दीक्षा दी, वह सारी विधिवत् हुई थी। और जब वे महाप्रभु के समवसरण मे पहुचे तो गागली अनगार के माताजी जो अब सर्वज्ञ बन गई थीं। साध्वी की केवली परिषद् मे जाकर विराजीं। –सम्पादक)

आज हम देख रहे हैं कि कई साधु जो शास्त्रध्ययन भी कर रहे हैं, तो वे उसी मे सतुष्ट बने बैठे हैं। सोच रहे हैं कि हम तो साधु बन गये हैं। हमने इतना बडा सयम ले रखा है, बस और हमे क्या चाहिये ओर श्रावक जिसने सामायिक, प्रतिक्रमण, भक्तामर आदि–आदि सीख लिया और सोचे कि हमने तो बहुत कुछ सीख लिया यही भावना तो आगे बढने में रुकावट डाल रही है। इसे हटाकर ज्ञानाचार के भेदो को समझते हुए आगे बढिये। कालाचार से शास्त्रीय स्वाध्याय का समय ध्यान मे रखिये। शास्त्रीय स्वाध्याय करने के अनन्तर जब स्वय का स्वाध्याय–चिन्तन–मनन चालू करते है उसमे निमग्न हो जाते हैं तो ज्ञान का अथाह आनन्द भी एक दिन पा सकते हैं। कहने का तात्पर्य है कि जितना ज्ञान मिला है उसका अभिमान नही करते हुए ज्ञान का ज्ञान करिये कि यह तो है ही पर मुझे इससे वहुत आगे बढना है इसके लिए कालाचार को समझे, ज्ञानाचार सम्पन्न बने। जैसे एक

लखपति जब हजारपति की ओर देखता है तो उसे अभिमान होता है, पर करोड़पति की ओर देखता है तो उसका अभिमान उतर जाता हे। इसी प्रकार छोटे–मोटे ज्ञानी को देखकर अपने ज्ञान का अह न करे प्रत्युत विशिष्ट ज्ञानी की ओर निहारते हुए अपनी अपूर्ण अवस्था का स्थल पाने की भावना रखते हुए अपने ज्ञान को, अपने पुरुषार्थ को अधिक से अधिक बढाने का प्रयत्न करे, ताकि एक न एक दिन अवश्य मगलमय दशा को प्राप्त कर सके।

मोटा उपाश्रय — 29–7–85

घाटकोपर, बम्बई — सोमवार

विनयाचार-बहुमानाचा

(सम्यक्ज्ञान का द्वितीय–तृतीय आचार)

वीतराग परमात्मा के उपदेश को समझने के लिये उनकी स्तुति चाहे किसी रूप मे, किसी भी नाम से की जाए, पर करना आवश्यक है। स्तुति का अर्थ है प्रभु की प्रशसा करना, प्रभु के गुणो का वर्णन करना और उसकी अभिव्यक्ति स्वय मे लाने के लिये सत्पुरुषार्थशील बनना।

कई लोग प्रार्थना का अर्थ याचना करना समझते हैं, परन्तु लेने की कामना रखकर प्रार्थना करने वाले सामान्य व्यक्ति होते हैं, तत्वज्ञानी नहीं। चूकि तत्वज्ञानी यह जानते हैं कि भगवान् कुछ नहीं देते हैं। लेन–देन का प्रसग ससारियो का है, व्यापारियो का है। व्यापारी वर्ग बाजार मे एक वस्तु दूसरे को देते हैं और उससे दूसरी वस्तु लेते हैं, यह प्रक्रिया व्यापारी वर्ग की है। उनकी यह प्रक्रिया स्वार्थपूर्ण होती है। अन्दर मे उनकी कामना रहती है कि मैं ज्यादा से ज्यादा कमालू। वे अन्य के कष्ट, दु ख की परवाह नहीं करते। यदि ऐसा लेन–देन का कार्य कोई भगवान् के साथ करने के लिये प्रार्थना करता है तो वह उत्तम कोटि का भक्त नहीं है, प्रत्युत निम्न कोटि का भक्त है। जो वस्तु अन्यो से उपलब्ध हो सकती है, उसकी मागनी भगवान् से की जाती है तो यह बात कम ज्ञान का परिणाम है। ससार मे धन है, मकान है, फ्लैट है, वस्त्र है सोना है चादी है इन सब पदार्थो की मागनी किसी बडे सेठ को खुश करके की जाए तो वह भी इन वस्तुओ की पूर्ति कर सकता है। यदि कोई इन्ही पदार्थो की मागनी भगवान् से करता है तो वह भगवान् को क्या समझता है–पैसे वाला सेठ ? यह धारणा यदि है तो बिल्कुल गलत है।

एक स्वर्ग का इन्द्र यहा आकर आपकी धर्म करणी से प्रसन्न होकर मन–इच्छित वरदान मागने का प्रस्ताव रखे तो आप उससे क्या मागोगे ? आपकी कुछ मागने की इच्छा होगी या नही ? उत्तर होगा–क्यो नही होगी ? अरे ! आप तो बुद्धिमान हैं। अत सम्भव है मोटी सारी लिस्ट बनालोगे। पर यदि कोई मनुष्य कहे कि इन्द्र ! यदि आप मेरे पर खुश हो तो मैं वरदान मागता हू कि मेरे घर मे एक भैंस है, उसके लिये एक घास का भारा लाकर दे दो। दूसरा मनुष्य कहे कि मुझे भोजन बनाने हेतु लकडी अथवा कोयले की आवश्यकता है, सो वह लाकर दे दो। तीसरा कहे कि मेरे लडके को तीन दिन से बुखार आ रहा है, आप बुखार मिटा दो। चौथा कहे कि मेरी पुत्री की शादी नही हो रही है, आप उसकी शादी करा दो। तो आप विचार करिये कि ऐसी माग करने वालो ने इन्द्र की कितनी कद्र की, कितनी कीमत की ? जिसने घास का भारा मागा उसने इन्द्र की कीमत मजदूर के बराबर की। जिसने लकडी, कोयले मागे, उसने इन्द्र की व्यापारी जितनी कीमत की तथा जिसने बुखार उतारने के लिये कहा उसने मेटासिन की गोली जितनी कीमत की तथा जिसने पुत्री की शादी कराने की बात कही, वह तो एक सामान्य पुरुष भी करा सकता था। ऐसे मागने वालो को आप यह कहोगे कि ये नासमझ हें। इन्होने इन्द्र की कद्र–पहिचान नही की कि उनमे कितनी शक्ति हे। बल्कि इन तुच्छ वस्तुओ को मागकर इन्द्र का अपमान कर दिया। चूकि छोटी–छोटी वस्तु मागने से उनकी कद्र नही होती वरन् उनका अपमान होता है। भारत के प्रधानमन्त्री यदि यहा आये और आपके काम से खुश होकर आपसे पूछे कि आपको क्या चाहिये ? और आप उन्हे कहे कि आप इस स्थानक का झाडू निकाल दीजिये तो उनका सम्मान हुआ या अपमान ? अपमान ही माना जायेगा तो फिर प्रधानमन्त्री से इन्द्र का पद बडा है ओर उस इन्द्र से भी वीतराग भगवान् बडे हैं। पच–परमेष्ठी मन्त्र से जिन भगवान् को याद करते हो। उनकी आप कितनी कीमत कर रहे हो ? यही तो ज्ञान की, श्रद्धा की कमी हे। इसी कारण कई व्यक्ति वीतराग देव की कमी जानते–अजानते अशातना कर बेठते हें, अविनय कर वेठते हैं। अत आवश्यक हे कि सही ज्ञान पाया जाय, ताकि आत्मा मे ज्ञान का अभिनव आलोक प्रसरित हो जिससे हिताहित का विवेक किया जा सके।

विश्व की समस्त भव्यात्माआ म ज्ञान की अनन्त शक्ति दवी हुई पडी हैं। जिस प्रकार कि अगारे पर राख आ जाने से उसकी तपन आच्छादित हा जाती ह सूर्य पर वादल आ जाने से सूर्य का प्रकाश–तेज आच्छादित हा

जाता है। इसी प्रकार भव्यात्माओ की अनत–अनत ज्ञान शक्तियाँ कर्मो से आच्छादित हैं। उन्हे उदघाटित करने के लिये कर्मो के आवरण को हटाना होगा। ज्ञान का अभिनव आलोक विकसित करने हेतु सतत पुरुषार्थशील बनना होगा। उत्तराध्ययन के 32 वे अध्ययन की दूसरी गाथा मे महाप्रभु ने बतलाया है–

"नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अन्नाण मोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य सखएण एगत सोक्ख समुवेइ मोक्ख।।

अज्ञान और मोह का क्षय करिये। राग और द्वेष को हटाइये। परिपूर्ण ज्ञान की ज्योति जगाइये और एकान्त मोक्ष को प्राप्त करिये। बधुओ ! वीतराग देव तो निमित्त बनते हैं। वास्तव मे उपादान हमारा ही होता है। जब वह स्वय पुरुषार्थ करता है तभी भीतर मे रहा हुआ ज्ञान प्रकाश बाहर आ सकता है। भगवान् की स्तुति इसलिए की जाती है कि वे भव्यात्माओ के ज्ञान को प्रकट करने में निमित्त बने, जिससे उनके भीतर मे रहा हुआ ज्ञान अनावृत्त हो सके।

छोटे बालक को आप स्कूल में भेजते हैं। वह बालक वर्णमाला सीखता है। कितना प्रयत्न करता है। बार–बार उसे देखता है, लिखता है, तब वह उसे जान लेता है। उसी प्रकार जो ज्ञान भीतर है उसे निरन्तर पुरुषार्थ करने पर प्रकट किया जा सकता है। इसके लिये ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न करना अतीव आवश्यक है। आप किसी को निमन्त्रण देगे तो ही वे आपके घर आयेगे और उनका आप सत्कार सम्मान करेगे तभी वे आपके यहा जीमेगे। इसी प्रकार ज्ञान के प्रति विनय करना आवश्यक है। ज्ञान और ज्ञानी के प्रति बहुमान करना आवश्यक है। विनय, बहुमान होगा, तभी वह भीतर में प्रवेश कर सकता है। ज्ञान के प्रति विनय कैसे करे ? इसके लिए वीतराग देव के ज्ञान की कीमत करे। यह मानकर चले कि वीतराग देव का जो ज्ञान था है वह अद्वितीय अनुपम है, सत्य एव सर्वश्रेष्ठ है। ऐसी श्रद्धा करके विनय के साथ उसे पाने की पात्रता अर्जित करे। तदनन्तर वीतराग देव के उपदेश का चिन्तन–मनन करे। ध्यान मे बैठकर प्रभु के सिद्धान्तो की गहराइयों मे उतरे। उन्हे मथकर उनका नवनीत निकाले। यद्यपि ध्यान की प्रक्रिया भी महाप्रभु ने बहुत बतलाई है। सन्त बाहर जाते हैं तो आकर ध्यान करते है। सोते एव जागते समय भी ध्यान करते हैं। जेसे साधु को समय–समय पर ध्यान की प्रक्रिया प्रभु ने बतायी है, वैसे ही श्रावको को भी सामायिक, प्रतिक्रमण पौषध आदि मे ध्यान की प्रक्रिया का विधान किया गया है। ये ध्यान तो फिर भी आप करते ही होगे पर आप ज्ञान को प्रकट करने का

कितना व कौन–सा ध्यान कर रहे हैं ? "णमो नाणस्स" की माला फेरने मात्र से अथवा 'णमो नाणस्स" का ध्यान करने मात्र से ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। सबसे पहले तो ज्ञान को प्रकट करने के लिये ज्ञान के प्रति एव ज्ञानी के प्रति विनय होना चाहिये। विनय के साथ बहुमान भी अति आवश्यक है।

विनय का स्वरूप तो आप सम्यक् तरीके से जानते होगे। फिर भी कुछ विनय का स्वरूप भी स्पष्ट कर देता हू। "विनय" सम्यक् ज्ञान का द्वितीय आचार है। विनय शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए बतलाया है कि 'विनीयते कर्मानिनेति विनय,' जिससे व्यक्ति कर्म बध से निवृत्त होता है, उसे विनय कहते हैं। श्रेष्ठ पुरुषो का विनय करने से, झुकने से भव्यात्माओ के कर्म भी झुक जाते हैं और एक दिन आत्मा से अलग भी हो जाते हैं। स्थानाग सूत्र के 7 वे ठाणे मे विनय के 7 भेद प्रतिपादित किये हैं–"सत्तविहे विणए पण्णत्ते तजहा–णाण विणए, दसण विणए, चरित्त विणए, मण विणए, वइ विणए, काय विणए, लोगोवयार विणए।"

विनय के सात भेद हैं–ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय, मन विनय, वचन विनय, काय विनय और लोकोपचार विनय। सात प्रकार से अपने विनय भावो को बनाये रखना सम्यग् ज्ञान पाने के लिये आवश्यक है।

विनम्रता कैसी होनी चाहिये इसके लिये गौतम स्वामी का आदर्श सामने है। भगवान् जब निर्वाण पधार रहे थे, उस समय दूर–दूर से लोग महाप्रभु की सेवा मे आए हुए थे। महाप्रभु के निर्वाण को देखने के लिये। ऐसे समय मे महाप्रभु ने गौतम स्वामी को आदेश दिया–देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिये। गोतम स्वामी उसी क्षण बिना रुके खडे हो गए और महाप्रभु को वन्दन कर देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने प्रस्थित हो गए।

बधुओ ! विचार करिये ! गौतम स्वामी का विनय कितना उच्चकोटि का था। उन्होने मुह से उफ तक करने की बात तो दूर रही, पर मन मे भी यह नहीं सोचा कि महाप्रभु इस विकट समय मे मुझे क्या आदेश फरमा रहे हैं। यह तो बाद मे भी किया जा सकता हे। अभी तो मुझे यहीं रहना चाहिये। ऐसा कुछ न सोचकर वे अत्यन्त विनय के साथ वहा से रवाना हो गए। विनय ऐसा हाना चाहिये जीवन मे। जब इतना उच्चकोटि का विनय आता हे, तब विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति म भी देरी नही लगती। गोतम स्वामी ने विनम्रता का उत्कृष्ट रूप उपस्थित किया तो विशिष्ट परिणाम भी सामने आया कि उन्हे केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त हो गया।

यह तो प्रभु महावीर के समय की बात है। लेकिन मैं आपको निकट अतीत में हुई घटना भी सुना देता हू। प्रभु महावीर की इस क्रातिकारी परम्परा के 76 वे पाट पर विराजमान आचार्य श्री उदय सागरजी म सा के जीवन से सबधित घटना है। उन्हें जब यह ज्ञान हुआ कि रामपुरा मे केशरीमलजी गाग नाम के श्रावक शास्त्रे के विशिष्ट ज्ञाता हैं तो वे जब रामपुरा पधारे तो सोचा कि उनसे शास्त्रीय चर्चा की जाय ताकि यदि उनके पास और भी नया ज्ञान हो तो प्राप्त हो सके।

आचार्य प्रवर जिज्ञासु बने और उस श्रावक को अपने यहा न बुलाकर स्वय चलकर उसके घर पहुचे। जब केशरीमलजी को ज्ञात हुआ कि आचार्य प्रवर ज्ञान पाने की जिज्ञासु भावना से मेरे पास आ रहे हैं तो उनके मन में आचार्य प्रवर की जिज्ञासु भावना के प्रति अत्यन्त श्रद्धा जागृत हुई । किन्तु इसी के साथ ही एक विचार मन मे आया कि जरा आचार्य प्रवर का परीक्षण किया जाय कि इनमें जिज्ञासा के साथ ज्ञान पाने के लिये विनयाचार की स्थिति भी है या नहीं ? आचार्य प्रवर ने जब केशरीमलजी के घर मे प्रवेश किया तो आश्चर्य ! कि वह श्रावक उठकर भी सामने नहीं आता है। किन्तु विनयाचार की गहराइयो मे उतरे आचार्य–प्रवर कुछ भी अन्यथा न विचारते हुए उन श्रावक के पास पहुचकर फरमाते हैं कि मुझे आपसे शास्त्र चर्चा कर ज्ञान प्राप्त करना है। तब केशरीमलजी ने कहा कि अभी अवसर नही है। एक महान् आचार्य प्रथम तो उसके घर पहुचे और फिर श्रावक यह कह दे कि अभी अवसर नहीं है तो आज के युग में कैसी विचित्र स्थिति बन सकती है, यह विचार करिये। परन्तु आचार्य–प्रवर तो उसी जिज्ञासु भावना के साथ लौट गये। दूसरे दिन पुन उनके घर पर जाकर यही कहा, तब भी उन श्रावक जी का यही जवाब मिला। फिर भी आचार्य प्रवर ने कुछ भी अन्यथा नहीं विचार किया और तीसरे दिन भी उसी जिज्ञासु भावना के साथ उनके घर पहुचे तब केशरीमलजी यह अच्छी तरह समझ गये कि आचार्य प्रवर सम्यक् ज्ञान और क्रिया की ठोस भूमि पर खडे हैं। इनके जीवन मे सयमी मर्यादाए साकार हो उठी हैं। बस ! फिर क्या था, ज्योंही उन्होने आचार्य प्रवर को दूर से आते देखा, त्योंही उठकर सामने गये। विनम्रता से वन्दन नमस्कार किया और अश्रुधारपूर्वक अपने अविनय के लिये बार–बार क्षमायाचना करने लगे। वास्तव में आचार्य प्रवर, प्रभु महावीर के सयमी सिद्धातो के प्रायोगिक आदर्श थे। उनका जीवन प्रभु महावीर के सिद्धान्तो को प्रत्यक्ष करने वाली प्रयोगशाला था। वे अपने जीवन प्रयोग से महाप्रभु के सिद्धान्तो का प्रायोगिक रूप

उपस्थित करते थे। केशरीमलजी गाग ने निवेदन किया–"कहा आप और कहा मैं ? आपके विशाल ज्ञान के आगे मेरा ज्ञान क्या महत्त्व रखता है ? फिर भी आप जो चाहे, चर्चा करे। मेरे पास जो कुछ है, गुरुओ के प्रसाद से है। उसे अवश्य मैं आपको देने को तैयार हू। चर्चा करने से आपको मेरे से कुछ मिले या न मिले, पर मुझे आपसे बहुत कुछ मिलेगा।'

बन्धुओ ! सम्यक् ज्ञान पाने के लिये किस प्रकार का विनय होना चाहिये, जरा विचार करिये। ऐसे आदर्शो से कुछ जीवन मे शिक्षा ग्रहण करने का प्रसग है। आचार्य प्रवर की विनम्रता का प्रभाव उनके शिष्यो मे पर्याप्त मात्र मे था। उसके भी कई प्रसग हैं। पर एक प्रसग सामने रख देता हू।

आचार्य प्रवर का एक शिष्य अत्यन्त विनयशील था। उसकी विनम्रता को लेकर गुण गरिमा बहुत दूर–दूर तक फैली हुई थी। इसी विनम्रता के आदर्श को देखने के लिये एक बार एक सरकारी आदमी आचार्य प्रवर के पास पहुचा और पूछने लगा कि भगवन् ! मैंने सुना है कि आपके पास एक अत्यन्त विनम्रशील मुनिराज है। मैं उनके दर्शन करना चाहता हू। आचार्य प्रवर ने उसका कुछ भी उत्तर नही देते हुए एक साधु को आवाज लगाई। वे ऊपर बैठे हुए स्वाध्याय कर रहे थे। उन्होने ज्योही गुरुदेव की आवाज सुनी तो 'तहत्ति' के साथ वाणी को स्वीकार करते हुए विनम्रता से गुरुदेव के चरणो मे आ खडे हुए। गुरुदेव ने उन्हे कुछ भी न कहते हुए वापस भेज दिया। वे ऊपर पहुचे ही थे कि पुन आवाज लगाई। वे पुन उसी विनम्रता के साथ उपस्थित हुए। फिर उन्हे कुछ भी कहे बिना वापस भेज दिया। यह क्रम लगातार लगभग 27 बार तक चलता रहा। वे मुनिराज बिना किसी तर्क के अत्यन्त श्रद्धा के साथ गुरुदेव के चरणो मे उपस्थित होते रहे। उनके मन मे भी यह भावना नही आयी कि गुरुदेव यह क्या कर रहे हैं ? काम है तो बतला क्यो नहीं देते ? बार–बार बुलाते क्यो हैं ? ऐसा कुछ भी न सोचकर वे अत्यन्त श्रद्धा के साथ आते रहे। आखिर वह अफसर समझ गया कि विनयशील मुनिराज कौन हैं ? उसने गुरुदेव से निवेदन किया–भगवन् मैंने इनके दर्शन कर लिये हैं। आप इन्हे रोकिये। बार–बार कष्ट न दे।

सज्जनो ! देखिये विनम्रता का आदर्श ! क्या है ऐसी विनम्रता, आज की भव्यात्माओ मे ? मैं सबकी बात नहीं कहता, पर अधिकाश साधक–साधिकाओ के जीवन पर विचार करता हू तो विनय की बहुत कमी महसूस होती है। गुरुदेव यदि शिष्य को बुला रहे हैं तो पहले तो वह जल्दी से आयेगा

ही नहीं और आ भी गया ओर उसे कुछ भी बतलाये बिना कारण जाने के लिये कहा गया तो वह तुरन्त प्रतिक्रिया कर बैठेगा कि अरे ! फिर बुलाया किसलिये ? बिना कारण इधर–उधर घुमाने का क्या तात्पर्य ? विनम्रता के अभाव मे ही कइयो की साधना सफल नहीं हो पाती। महाप्रभु ने विनय को धर्म का मूल बतलाया है। 'विणओ धम्मस्स मूलो' जब तक विनयाचार की स्थिति जीवन मे नहीं आयेगी तब तक सम्यग्ज्ञान का विकास नही हो सकता।

वैसे आप लोग देख ही रहे हैं कि ये सत–सती वर्ग किस प्रकार सुन्दर तरीके से विनय एव अनुशासन पद्धति को लेकर चल रहे हैं। यह सब उन अतीत के क्रातिकारी आचार्यो की साधना का परिणाम है कि एक ही की आज्ञा मे पूरा साधु–साध्वी समाज, शिक्षा–दीक्षा, प्रायश्चित, चातुर्मास आदि कार्य सम्पन्न कर रहा है, यह भी विनम्रता का प्रतीक है।

भव्यात्माओ के जीवन मे सम्यग्ज्ञान की ज्योति जगाने हेतु इस दूसरे विनयाचार को जीवन मे स्थान दीजिये। गुर्वादिक के प्रति विनम्रता का व्यवहार रखिये। अवश्य ही यह विनम्रता विकास की ओर ले जाने वाली बनेगी। विनम्रता के अभाव का ही परिणाम समझिये कि आज की युवा पीढी भौतिक विज्ञान की दृष्टि मे इतना विकास करने के बाद भी दु ख द्वन्द्वो मे उलझती जा रही है। अत स्पष्ट है जब तक जीवन मे विनय नही आयेगा, तब तक सम्यक आचरण नहीं बन सकेगा और बिना सम्यक् आचरण के शाति पाने की कल्पना मृग मरीचिका के तुल्य ही होगी।

विनयाचार के बाद सम्यग्ज्ञान का तृतीय आचार है–बहुमानाचार। बहुमान का अर्थ है ज्ञानी और गुरु के प्रति हृदय मे भक्ति और श्रद्धा का भाव रखना। ज्ञानी एव गुरु का दिल जिससे प्रसन्न हो वैसा ही कार्य करना सर्वतोभावेन उनके प्रति समर्पित हो जाना। जब तक पूरा समर्पण नहीं होता है, तब तक ज्ञान हृदयगम नही होता। विद्वान श्री अम्बिकादत्तजी ओझा के जीवन का प्रसग है। जब वे सतो को पढाते थे, तो कभी अपने जीवन का प्रसग सुनाते हुए कहते थे कि आज विद्यार्थी पढने की इच्छा कम रखते हैं। यही नहीं ज्ञान प्राप्त करने के लिये स्कूल–कॉलेजो मे जाते हें पर अध्यापको पर अपना आर्डर चलाते हैं किन्तु हमारे समय मे पढाने वाले बहुत कम मिलते थे और जो मिलते थे वे भी पैसे लेकर नहीं पढाते थे। वे कहते थे कि हम ज्ञान नही बेचते। पैसे लेकर पढाने से हम व्यापारी बन जायेगे। वे गरीब भी

क्यो न हो। खेती–बाडी करके काम चला लेते थे। मजदूरी करके पेट भर लेते थे, पर विद्या का व्यापार नही करते। मैं जिस गुरु से पढता था, उनकी ऐसी ही गरीब अवस्था थी। वे खेती का कार्य करते थे, और हम स्वय उस समय गरीब अवस्था मे थे। मजदूरी करके ही पेट भरते थे। आज तो विद्यार्थी को कितने पौष्टिक तत्त्व मिलते हैं शरीर को तन्दुरुस्त रखने के लिये। उनके लिए बोर्डिग मे हर साधन की उपलब्धि हो जाती है, पर हमारी यह अवस्था थी कि खाने को धान पाने के लिये भी परिश्रम करना पडता और पढाने के लिये भी गुरुजी के पास टाइम कहा रहता ? गुरुजी जब खेती मे हाकते–हाकते थक जाते थे तब, जब विश्रान्ति के लिए बैठते, उस समय हम उनसे विनय–वैयावच्च करते हुए ज्ञान लेते थे और रात्रि मे उस समय प्रकाश का साधन न होने से जुगनू को पकडकर उसके प्रकाश मे याद करते थे। खाने के लिये चने की दाल जिसे भिगोकर रख देते और उसे खाते थे तथा एक लगन से अध्ययन करते थे।

विचार करिये बन्धुओ ! कहा तो वह स्थिति और कहा आज की स्थिति ! आज तो कितनी सहूलियत आ गयी है इन विद्यार्थियो के पास। फिर भी क्या दशा हो रही है ?

उदयपुर मे मेरी एक प्रोफेसर से बातचीत हुई थी। बातचीत के सिलसिले मे उन्होने कहा कि "मुझे ट्राफिक का जितना डर नही रहता, उतना डर रहता है कॉलेज के लडको का। ट्राफिक से तो सावधानी के साथ बचा जा सकता है, पर कॉलेज के लडको से सुरक्षित बचकर घर पहुचना अतीव कठिन है। उनके साथ बडा विवेकपूर्वक व्यवहार करना पडता है।" देखिये ! लौकिक ज्ञान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो की यह स्थिति है। अब विचार करिये ऐसी स्थिति मे उन विद्यार्थियो को पढने का क्या फल मिल सकता है, जिनका अपने गुरु के प्रति समर्पण न हो, विनय न हो, वह भले ही कितना ही ज्ञान पा ले, जीवन मे सफल नहीं हो सकते। इसीलिये आज आप देख सकते हैं कितने ही पढ–लिखे ग्रजुएट लोग बेरोजगार घूम रहे हैं। इनकी बेरोजगारी मे एक कारण गुरु के प्रति अविनय भी है।

जब भौतिक क्षेत्र मे भी सफल होने के लिये विनय की आवश्यकता है तब आध्यात्मिक क्षेत्र मे कितनी क्या-विनय की आवश्यकता रहती है ? यह अत्यन्त विचारणीय है। परन्तु खेद है कि आज आध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र मे भी विद्यार्थियो की क्या दशा हो रही है ? मैं क्या कुछ कहू ? बन्धुओ ! ज्ञान

लेने के लिये विनय और बहुमान की अति आवश्यकता है। जिसमे विनय तो हर कोई कर लेता है, पर बहुमान करना कोई सहज कार्य नहीं है। इसे आप एक उदाहरण के द्वारा समझिये–

एक गुरुजी के पास कई शिष्य आध्यामिक जीवन का अध्ययन करते थे, जो किताबों से नहीं प्रत्युत अनुभूति से मिलता था। चूकि अनुभूति का ज्ञान अनुभूति से मिलता है। अक्षरीय ज्ञान भले ही पुस्तको से मिल जाए, पर ज्ञानी जनो का फरमाना है कि 'ज्ञान पोथी से न चाहो, किन्तु नम्र भाव से आत्मा को झुकाकर, गुरु से पूछकर उनकी सेवा करके प्राप्त करो।' आध्यात्मिक ज्ञान का निर्झर वहा बह रहा था। उसी समय, सयोग की बात है, एक सम्यग्दृष्टि देव आकाश मार्ग से दूसरे स्थान पर जा रहा था। उसका उपयोग उस आध्यात्मिक अध्ययन कराने–करने वाले गुरु शिष्यो की तरफ गया। उसने देखा कि गुरुजी शिष्यो को अपने अनुभव का ज्ञान दे रहे हैं और शिष्य बडे विनयपूर्वक ग्रहण कर रहे हैं। पर बहुमानाचार इनके जीवन मे कितना क्या है ? इस बात को उस देव ने प्रैक्टिकल रूप से जानना चाहा। अत उसने अपनी देव शक्ति से ऐसा रोग पैदा किया, जिससे गुरुजी की दोनो आखें चली गई। तत्पश्चात् वह स्वय चिकित्सक का रूप बनाकर वहा पहुचा और जोर–जोर से कहने लगा कि कोई दु खी–दर्दी है, किसी के नेत्र चले गये हैं तो मैं ठीक कर सकता हू। यह बात शिष्यो ने श्रवण की तो विनयपूर्वक गुरु की आज्ञा लेकर उसके पास पहुचे। उस देव रूप चिकित्सक के पास आकर कहा कि हमारे गुरुजी के नेत्र चले गये हैं। आप उनके नेत्र पुन लौटा दीजिये। वह चिकित्सक रूपधारी देव अन्दर आया और शिष्टाचार दर्शाते हुए गुरुजी को देखने लगा। सभी शिष्य भी गुरु के आस–पास बैठ गये।

चिकित्सक ने नेत्रे को देखा और कहा कि इनके नेत्रें मे रोशनी तो है, पर ऊपर की अवस्था विकृत हो गई है। अत इनके नेत्रे को ठीक तो किया जा सकता है पर किसी दूसरे जीवित मनुष्य के नेत्र निकाल कर लगाने पड़ेगे। आप विनयवान हैं, गुरु के प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पित हैं, तो क्या, आप मे से कोई नेत्र दे सकता है ? यह सुनकर सभी विद्यार्थी आगे–पीछे होने लगे और बहाने करने लगे कि गुरु महाराज के तो इतने चेले हैं, उनकी तो सेवा हो जायेगी पर हमारे कौन–से चेले हें ? अगर हमारी आखे चली गयी तो हमारी सेवा कौन करेगा ? पर उनमे से एक विद्यार्थी बिना बुलाये ही सामने आया और बडी विनम्रतापूर्वक कहने लगा, कि मेरा सारा शरीर ही गुरु–चरणों में समर्पित है। आप सहर्ष मेरे नेत्र निकाल कर गुरुजी के लगा

दीजिये। ऐसा कहकर सन्मुख बेठ गया, नेत्र निकलवाने के लिये। तब देव ने उसके बहुमानाचार से प्रसन्न होकर अपनी सारी माया समेट ली और अपना दिव्य रूप प्रकट करने के साथ गुरुजी के नेत्र पूर्ववत् कर दिये तथा उस शिष्य को साधुवाद देते हुए कहा कि "तुम धन्य हो, जो ज्ञानाचारो से सम्पन्न बन, अपने अनन्त ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करने मे प्रयत्नशील बने हुए हो।' बन्धुओ ! यह है विनय और बहुमान मे अन्तर। विनय तो सभी कर लेते हैं, पर बहुमान करना अतीव कठिन है। आज भी बहुत से व्यक्ति वीतराग देव का ज्ञान प्राप्त करने के लिये तत्पर तो हो जाते हैं, पर यह मानकर चलिये कि उनमे गुरु के प्रति विनय के साथ बहुमान की प्रवृत्ति जीवन मे नहीं आयेगी, तब तक भीतर का ज्ञान प्रगट नही हो सकेगा। अत ये बहुमूल्य उपाय रूप ज्ञानाचार ज्ञानियो ने बताये हैं। उन उपायो को अतीव श्रद्धा के साथ अपनाने का प्रयास करना चाहिये।

आज प्रतिक्रमण करने मे भी कई भाई लोग बहाना बनाते हैं कि हमे प्रतिक्रमण याद नहीं होता है। याद नही होता है तो बन्धुओ ! यह आपका प्रमाद है, आलस्य है। यह आप भव्यात्माओ के लिये योग्य नही है। तत्पुरुषार्थ करते जाइये और ज्ञान के साथ विनय, विनय के साथ बहुमान एव आगे के सभी आचारो का परिपालन करिये। अवश्य ही आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होगा। अन्यथा आत्म-कल्याण असम्भव है। जब तक सम्यक्ज्ञान एव वीतराग वाणी पर सम्यक् श्रद्धान नहीं होगा, जब तक गुरु के प्रति परिपूर्ण समर्पण, बहुमान नही आयेगा, तब तक जीवन से वास्तविक रूप मे अज्ञान अधकार दूर नही हो सकेगा। ज्ञान का सच्चा प्रकाश नहीं जगमगा सकेगा। बहुमानाचार की स्थिति जीवन मे कैसे लाई जाय-इसके लिये भी मुझे आचार्य श्री उदयसागरजी म सा के एक शिष्य का घटनाक्रम याद आ रहा है। वैसे समय आपका हो रहा है फिर भी उसे सुना देता हू। एक शिष्य के हाथ से अचानक काष्ठ-पात्र टूट गया। उस समय आचार्य प्रवर बाहर पधारे हुए थे और इधर ये मुनिराज किसी आवश्यक कार्य से बाहर पधार गये। आचार्य प्रवर जब वन-विहार से लौटे और देखा कि पात्र टूटा हुआ पडा है तो जो संत वहा उपस्थित थे, आचार्य प्रवर ने यही समझा कि इसी ने पात्र तोडा है और वे उपालम्भ की भाषा मे शिक्षा फरमाने लगे कि अरे ! यह क्या कर दिया? थोडा विवेक रखना चाहिये। इस तरह परिश्रमपूर्वक बने पात्र को फोड देना अयतना का परिणाम है। आलस्य-प्रमाद को छोड कर अवधानता से काम करना चाहिये।

वे शिष्य गुरुदेव की वाणी को अत्यन्त भक्ति एव बहुमान के साथ सुनते रहे। लेकिन जब वे मुनिराज आये, जिनके हाथ से पात्र टूटा था, और उन्होने देखा कि पात्र मेरे हाथ से टूटा है और उपालम्भ इनको मिल रहा है तो वे तुरन्त बोले भगवन् ! पात्र इन मुनिराज के हाथ से नही मेरे हाथ से टूटा है। आचार्य प्रवर बोले– अरे ! तुमने बतलाया नहीं कि मेरे हाथ से नहीं टूटा ? तब वे क्षमासागर मुनिराज बोले–भगवन् ! यदि मैं ऐसा बोल देता तो आज आपकी यह अमृतमय शिक्षा कहा सुनने को मिलती ? ये मुनिराज भी हैं तो मेरे गुरु भ्राता ही। इनके सयोग से मुझे आज हित शिक्षा सुनने को मिली।

भव्य पुरुषों ! देखिये बहुमान का आदर्श ! गुरु के प्रति, गुरु के वचनो के प्रति कितना बहुमान होना चाहिये– यह इस घटना से स्पष्ट होता है। यदि बहुमान की ऐसी स्थिति बनती है तो सम्यक ज्ञान का जीवन मे त्वरित विकास हो सकता है। इन ऐतिहासिक दृष्टान्तों के घटनाक्रम का भाव ही मैं आपके सामने रख गया हू।

अन्त में मेरा आपसे यही कहना है कि सम्यक् ज्ञान का आलोक प्राप्त करने के लिये विनय एव बहुमान के स्वरूप का बोध प्राप्त करिये। विनय–बहुमान के साथ शास्त्रीय अध्ययन करने हेतु वीतराग वाणी का रसपान कीजिये। इस प्रकार से किया गया ज्ञान निश्चय ही सम्यक् रूप मे परिणमित होगा और आत्मा मे विशिष्ट ज्ञान और विशिष्ट शाति प्राप्त कराने में सहायक बनेगा।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर बम्बई

30 7 85
मगलवार

उपधानाचार

(सम्यक्ज्ञान का चतुर्थ आचार)

वीतराग परमात्मा के कई नाम भूतकालीन दृष्टि से प्रचलित हैं। जिस शरीर से आत्मा ने मोक्ष प्राप्त किया, उस शरीर से सिद्ध भगवन्तो की स्तुति करने हेतु उनको उन्ही नाम से पुकारा जाता है। इस काल चक्र मे तीर्थंकर 24 हो गये हैं। उनकी स्तुति जो वर्तमान मे करने मे आ रही है, वह सब भूतपूर्व शरीर के नाम को लेकर ही। सिद्ध भगवन्त होने के बाद उस आत्मा का कोई पृथक् नाम नही रह जाता है। आचाराग सूत्र मे सिद्ध के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है–

" अवण्णे, अगधे, अरसे, अरुवे, अफासे, अपयस्स पय नत्थि।'

सिद्ध भगवन्त के वर्ण, गध, रस, स्पर्श कुछ नही है तथा अपद अर्थात् शब्दो से सिद्ध भगवान् के स्वरूप का पूर्ण वर्णन नही किया जा सकता है। अत वे अपद हैं। सिद्ध भगवान् को चाहे जिस रूप मे पुकारा जाये, पर उनका मौलिक शुद्ध स्वरूप ही सामने रखना चाहिये। उनका स्वरूप समकक्ष रखकर ही वीतराग भगवान् के सिद्धान्तो को श्रवण किया जाना अपेक्षित है। ऐसा कहने पर ही आत्मा अपनी आध्यात्मिक ज्योति को प्रज्वलित करने के लिए उल्लसित हो सकती है। आज जो धर्मस्थान मे सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय आदि का विशेष प्रसग दृष्टिगत हो रहा है, उन सभी का एक ही उद्देश्य होना चाहिये–मोक्ष प्राप्ति का।

चतुर्विध सघ मे साधना करने वाले सभी का एक ही लक्ष्य है पर सभी की साधना पद्धति भिन्न–भिन्न है। एक मजिल है पर चलने के रास्ते भिन्न–भिन्न हैं। एक महाव्रतो की सडक पर चल रहा है तो दूसरा अणुव्रतो की। एक हवाई जहाज मे जा रहा है, तो दूसरा बैलगाडी मे, पर पहुचना दोनो को एक ही जगह है। कौन कब पहुचता है, यह अपने–अपने सद् पुरुषार्थ

पर निर्भर है। जेसे कि उत्तराध्ययन सूत्र मे प्रभु ने फरमाया है कि—

'सन्ति एगेहि भिक्खूहि गारत्था सजमुत्तरा।
गारस्थेहि य सव्वेहि, साहवो सजमुत्तरा।

अर्थात्— कुछेक साधुओ से तो गृहस्थो का सयम भी अच्छा होता है। और सव गृहस्थों से साधुओं का सयम श्रेष्ठ होता है। भावार्थ यह है कि कुतीर्थी, भग्नव्रती और निह्नवादि साधुओं की अपेक्षा व्रत नियमादि को पालने वाले, गृहस्थों को इसलिये श्रेष्ठ कहा गया है कि कुतीर्थियो मे तो सम्यक् चारित्र के अभाव से सयम का होना असम्भव है और भग्नव्रती चारित्र के विराधक हैं इसलिये उनमे भी सयम नहीं हो सकता है। अत उनकी अपेक्षा देश चारित्र की आराधना करने वाले गृहस्थों के सयम को अवश्य श्रेष्ठ कहा है। पर जो सर्वविरति प्रधान साधु हैं, उनका सयम सभी देशविरति साधको से अनुत्तर है। क्योकि उनमें द्रव्य—भाव दोनो प्रकार से चारित्र की उच्चता होती है। कहने का तात्पर्य है कि चारित्र की न्यूनाधिकता चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय एव क्षयोपशम पर निर्भर है। अत जितना—जितना उक्त कर्म के क्षय एव क्षयोपशम मे पुरुषार्थ किया जाता है, उतनी—उतनी देशव्रत या सर्वव्रत के रूप मे धर्म की प्राप्ति अधिक होती है। आप इस बात का दृढ श्रद्धान करे कि आत्मा वधन की स्वय निर्मात्री है तो बधन को तोडने वाली भी आत्मा ही है। अत सद्—पुरुषार्थ को जागृत करे। सम्यक धर्म आराधना की स्थिति जीवन मे अपनाये।

जो रत्नत्रय की आराधना भगवती सूत्र मे प्रभु ने बताई है, वही विषय स्थानाग सूत्र मे त्रिविध धर्म के रूप मे तथा तत्त्वार्थ सूत्र मे ' सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग और आगम गाथा मे अहिसा, सयम और तप रूप मे दर्शाया गया है।

'धम्मो मगल मुक्किटठ अहिसा सजमो तवो।

आप आराधना करने के लिए यहा उपस्थित हुए हैं। अत आराधना का स्वरूप समझकर मनुष्य जीवन को सार्थक करने का प्रसग है। शास्त्र की बाते बहुत तत्त्वपूर्ण हैं जिनके विवेचन मे बहुत समय अपेक्षित हे। ऊपर—ऊपर की आदर्शभूत बाते तो कहने मे आ जाती हैं पर वर्तमान जीवन मे कैसे आचरण की भूमिका पर आकर जीवन का रूपान्तरण कर सके। प्रेक्टिकल रूप किस तरह जीवन मे आये इत्यादि का विचार करने की स्थिति बहुत कम रहती है। सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्र रूप जो सारभूत रत्न—त्रय है वही

आत्मा की प्यास बुझाने वाला है। आध्यात्मिक सुख की तृप्ति कराने वाला है। अनन्त आनन्द मे अवगाहन कराने मे समर्थ है।

अनन्त शक्ति पैदा करने वाले ये तीन ही तत्त्व हैं। इनका आचार क्या है ? आचार का तात्पर्य है जीवन मे जो व्रत प्रत्याख्यान ग्रहण करने मे आते हैं उन्हे किस तरह जीवन मे उतारना, कैसे उनकी आराधना करना, यह पद्धति आचार कहलाती है। इसी क्रम मे तपस्या को जीवन के व्यवहार पथ मे लाना भी ज्ञान का आचार है। जिस प्रकार सम्यग्दर्शन को किस तरह जीवन मे लाया जाये, यह सम्यग्दर्शन का आचार है। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान को जीवन मे जागृत करने के लिये ज्ञान के आठ आचार का प्रसग भी आपके सामने चल रहा है जो सम्यक् ज्ञान को प्राप्त कराने मे सहायक भूत हैं। उनमे से काल, विनय और बहुमान इन तीन आचारो का सक्षिप्त विवेचन तो मैं कर चुका हू। चौथा आचार है–**उपधानाचार** अर्थात्–उपधान तप, जिसका तात्पर्य है ज्ञान प्राप्त करते हुए आयम्बिल वगैरह तप करना। आज उपधान तप का जो मौलिक स्वरूप है, आज बहुत स्थानो पर वैसा नहीं हो रहा है। उसमे विकृति दृष्टिगत होती है। शास्त्र का जो आशय तप को लेकर रहा हुआ है, उसका सकेत मैं आपके सामने करना चाह रहा हू।

भीतर का अनन्त ज्ञान कैसे प्रकट हो सकता है, इसके लिये प्रभु ने अनेक उपायो के साथ उपधान तप भी बताया है। कई मनुष्य उपधान तप का अर्थ आयम्बिल तप करना मानते हैं और उसी अर्थ को आचार मे उतारकर सतुष्टि कर लेते हैं। पर उपधान का यह सीमित अर्थ नही है। अन्तर का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उपधान तप–आयम्बिल तप जरूर करना चाहिए। आयम्बिल तप करने से क्या होता है तथा उसी को उपधान तप क्यो बताया है उसका रहस्य यह है कि आप उपवास करते हो, उससे पाच इन्द्रियो विषय एव चित्त के विकास उपशात हो जाते हैं। पर पाचो इन्द्रियो मे विशेष विषय की तरफ झुकी हुई यह जिह्वा जितनी अपने विषय मे सशोधन की स्थिति को प्राप्त होती है, उतनी ही अवशेष चार इन्द्रिया भी शिथिल होती जाती हें। उपवास के दिन जिह्वा भूखी रहने से चारो इन्द्रियॉ भी वशीभूत रहती हें पर दूसरे दिन जब पारणा किया जाता हे तब जिह्वा की विषयपूर्ति होते ही अवशेष चार इन्द्रियॉ भी अपनी–अपनी विषय प्रवृत्ति को चालू कर देती हें। उपवास तो फिर भी आप लोग सहज कर लेते हें, पर आयम्बिल करने से बहुत से मनुष्य कतराते हें। कारण कि उसमे इस जिह्वा की विषयपूर्ति नहीं होती हे। नीरस पदार्थ खाने पडते हें। उस नीरस भोजन

को खाना जिह्वा को वश मे रखना कोई सहज नही है। आपने धन्ना अणगार का वर्णन सुना होगा जो बेले–बेले की तपस्या का पारणा आयम्बिल से करते थे और वह आयम्बिल का भोजन भी कैसा ? रक–भिखारी भी जिस भोजन को खाने की इच्छा नहीं करे, वैसा आहार लाकर उसे 21 बार पानी से धोकर करते थे तथा उस पानी को पीते थे। यदि आपको भी आयम्बिल के दिन ऐसी ही वस्तु मिले तो आप कितने आयम्बिल करेगे ? बन्धुओ ! धन्ना अणगार जैसा उत्कृष्ट आयम्बिल करते थे, वही वास्तव मे उत्कृष्ट उपधान तप है क्योकि कर्म निर्जरार्थ एव ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति मे उपधान तप और उससे अनन्त ज्ञान राशि की प्राप्ति मे अधिक सहायता मिलती है। जब श्रेणिक महाराज ने प्रभु महावीर से प्रश्न किया कि हे भगवान् ! आपके चौदह हजार शिष्यो मे सबसे ज्यादा निर्जरा करने वाला महान् तपस्वी कौन है ? तब प्रभु ने फरमाया कि हे श्रेणिक ! धन्ना अणगार है। क्योकि वह बेले–बेले का पारणा करता है। और पारणे मे भी उपधान तप आयम्बिल तप करता है। जिससे वह बहुत अधिक कर्म की निर्जरा कर रहा है। धन्ना अणगार के लिये जैसा कि अनुत्तरोपपातिक सूत्र मे पाठ मिलता है–

"तएण से धण्णे अणगारे ज चेव दिवसं मुडे भवित्ता जाव पव्वइयाए त चेव दिवस भगव महावीर वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता एवं वयासी-एव खलु इच्छामिण भन्ते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समण्णे जावज्जीवाए छट्ठ छट्ठेण अणिक्खित्तेण आयबिले-परिग्गहिएण तवो कम्मेण अप्पाण भावेमाणे विहरित्तए, छट्ठस्सवि य ण पार-णगसि कप्पइ मे आयविल पडिग्गहित्तए, णो चेव ण अणायविल, तपि य ससट्ठेण णो चेवण अससट्ठेण, तपि थ ण उज्झियधम्मिय, णो चेव णं अणुज्झियधम्मिय, तपि य ण ज अन्ने वहवे रागणमाहणे अतिहि किवण वणिमग्गा णावकखति ? अहासुय देवाणुप्पिया ! मा पडिवध करेह।।

तएण से धण्णे अणगारे समणेण भगवया महावीरेण अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठ-तट्ठ जावज्जीवाए छट्ठ-छट्ठेण अणिखित्तेण तवो-कम्मेण अप्पाण भावेमाणे विहरह।

इस तरह कर्मो की बहुत निर्जरा होती है। कर्म कटते हैं। ज्ञानावरणीय कर्म खपता है। साथ ही मोहनीय कर्म के खपने से विशिष्ट ज्ञान की उपलब्धि होती है। यह उपधान तप सम्यग् ज्ञान का आचार है। पर ऐसा उपधित करने का प्रसग बहुत कम आता है। 'उप' का अर्थ है समीप।

'अधान' से तात्पर्य ज्ञान को प्राप्त करना। जो तप हमारे पास मे रही हुई अनन्त ज्ञान राशि को प्राप्त करने मे अर्थात् प्रकट करने मे सहायक होता है वह **'उपधान तप'** है। यह आयम्बिल तप का विशिष्ट स्वरूप है। 24 घण्टो की मौन लेकर आश्रव के त्याग के साथ आयम्बिल किया जाय। वह भी एक दाने का हो चाहे एक धान का, उसमे नमक, काली मिर्च आदि कुछ भी न हो। ऐसे नीरस आहार को पानी मे घोलकर आयम्बिल तप किया जाय। दिन भर मौन रखकर आत्मा के समीप जाने की कोशिश की जाय। तभी सम्यक् रूप से आपका यह आयम्बिल सार्थक होगा। तभी रसनेन्द्रिय को सही तरीके से जीता जा सकेगा जिससे कर्मो की निर्जरा होगी और सम्यक् ज्ञान की पुष्टि होगी। 24 घण्टे तक उपवास अथवा आयम्बिल का प्रसग आवे तो उसमे आश्रव को बन्द रख कर सवर की स्वाध्याय की आराधना की जाय। अन्तर की आत्म स्थिति मे अवगाहन किया जाय। क्योकि आत्म स्वरूप के नजदीक पहुचने पर ही उपधान तप की पूर्ण सार्थकता हो सकेगी। पर खेद है कि आज कई स्थानो पर आयम्बिल का नाम लेकर एकासना जैसी स्थिति अपनाकर आयम्बिल किया जाता है, यह उचित नहीं है। परन्तु आज क्या कुछ स्थिति इस तप की बन रही है सो आप देख ही रहे हैं। विस्तार से कहने का प्रसग नहीं। मैं तो सिर्फ शास्त्रीय बात बता गया हू। शास्त्र में वर्णित आयम्बिल तप के सही स्वरूप को समझकर उसी रूप मे उसका यथाशक्ति सम्यक् अनुष्ठान किया जाय। आप अधिक से अधिक तप करें। मैं उसका अनुमोदक हू। पर उसे उसकी पद्धति के अनुसार ही करे। नाम तो आप आयम्बिल का करे एव पदार्थ अन्य ग्रह"ा करे , यह कहा तक उचित है ? क्या भगवान के समय में इस तप की यही पद्धति थी ? आप जरा गहराई से विचार करे। यदि सही रूप से आयम्बिल तप का अनुष्ठान पर आत्मिक गुणो की अभिवृद्धि के साथ आत्मा के नजदीक पहुचने की प्रवृत्ति मे ज्यादा से ज्यादा सलग्न बनोगे तो एक न एक दिन जरूर आप अनन्त कर्म निर्जरा के साथ अपने ज्ञान–प्रकाश को जागृत कर सकोगे।

जिस तप की ज्यादा से ज्यादा प्रदर्शनी होती है, आत्मीय गुणो की सजावट के बजाय तप महोत्सव मनाते हुए शरीर को वस्त्राभूषणो से सजाया जाता है तो वहा तप की शक्ति एव आत्मीय गुण विलुप्त होते जाते हैं। वे वास्तविक कर्म निर्जरा से वचित हो जाते हैं। भौतिक सपत्ति को जिस तरह आप तिजोरी मे बद करके रखते हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक गुणो को भी आत्मारूपी तिजोरी मे स्थित करे। दिखावा नहीं करे, अन्यथा इनमे बाधा

अयेगी। क्योकि लौकिक सपत्ति के प्रदर्शन मे भी कैसी बाधा आती है, इसके लिए दृष्टान्त दे देता हू। जिससे आप लोग आध्यात्मिक सम्पत्ति को गुप्त रखने का मूल्य समझ सके।

दृष्टान्त–मोतीलाल नाम के एक सेठ थे। उनके पास बहुत ज्यादा सपति थी। वह अत्यधिक पाप अनुष्ठान से पूर्वजों द्वारा एकत्रित की हुई थी। एक बार रात्रि के समय मोतीलाल सेठ अपनी सपत्ति के विषय मे चिन्तन करने लगे। और उन्हें यह महसूस हुआ कि मेरे पास इतनी अधिक सम्पत्ति है पर मेरी कोई प्रसिद्धि नहीं हुई है। रात भर यही चितन चलता रहा। प्रात काल अपने घर के सभी सदस्यो को बुलाकर कहने लगे कि रात्रि मे मुझे एक विचार आया यदि आप लोग अनुमोदन करो तो मैं कहू। स्वीकृति मिलने पर उन्होने कहा कि–देखो, अपने घर मे इतनी सम्पत्ति है, पर अभी तक राज–दरबार मे मेरा कुछ भी मान–सम्मान नहीं है। अत अपने यहा राजा को जीमने के लिए बुलाकर सारी सम्पत्ति का दिग्दर्शन कराया जाये। अपना अतुल वैभव देखकर वे अपनी प्रशसा करेगे। इससे प्रजा भी अपना सम्मान करेगी। सभी ने एक स्वर में सेठ की बात का अनुमोदन किया। छोटी पुत्रवधू जो कि गभीर मुद्रा मे सभी के बीच बैठी हुई थी सारी बात श्रवण करने पर भी कुछ नहीं बोली। अपने विनय एव शिष्टाचार का निर्वाह कर रही थी। पर क्योंकि सेठ की दृष्टि उस पर गिरी तो सहज ही पूछ लिया कि बहू, तुम चुप क्यों हो तुमने मेरी बात के अनुमोदन में कुछ भी नहीं कहा, ऐसा क्यों ? तब वह विनम्रतापूर्वक बोली– पिताजी ! मैं क्या कहू, जो अपनी सम्पत्ति है, वह बाहर दिखाने की नहीं है। यदि आप इसका प्रदर्शन महाराजा के समक्ष करेगे, तो निश्चित ही आप सकट को बुलावा देगे। मुझे आपका यह प्रस्ताव उचित नहीं लगा इसलिए मैं कुछ नहीं बोली। परन्तु सभी ने छोटी समझकर उसकी बात हसी मे उडा दी और बहुमत के अनुसार कार्य को क्रियान्वित किया गया। पुत्रो को गहनो से लाद दिया गया। माणक मोती से थाल भरकर बाजार के बीच से होते हुए अपनी सम्पत्ति के प्रदर्शन का मुख्य लक्ष्य रखते हुए राज–दरबार मे पहुचे। वह भेट राजा को अर्पित की और राजा को अपने घर भोजन के लिये पधारने का निमन्त्रण दिया। निमन्त्रण को स्वीकार करके ठीक समय पर राज्य के बडे–बडे अधिकारियों के साथ महाराजा राजसी ठाठ–बाट से सेठ के भवन पर पहुचे। भवन की भव्य सजावट देखकर राजा आश्चर्य मे पड गए। क्या मेरे राज्य मे भी इतने धनवान सेठ हैं ? भोजन करने पहुचे तो तरह–तरह के पकवान देखकर राजा की मन स्थिति कुछ और ही हो गई।

सेठ के अतुल वैभव ने राजा के अन्तर मे लोभ वृत्ति जागृति कर दी। उसव
दृढ भावना बन गई कि किसी न किसी प्रकार से इस सेठ की सारी सम्पत्ति
हडपनी है। जैसे-तैसे भोजन का कार्य निपटा कर सेठ का सत्कार-सम्मा
ग्रहण करके अपने अन्दर की स्थिति गोपनीय रखते हुए पुन राजमहलो
लौट आये। राजा को अन्यमनस्क देखकर मत्री ने कारण पूछा तब राजा
सारी हकीकत कह सुनाई और पूछा कि किस तरह इस सेठ की सारी सम्पत्ति
अपने अधिकार मे ली जाय ? मत्री ने कुछ समय विचार करने के बाद कह
कि "आप कोई ऐसा प्रश्न सेठ के सामने रखे जिसका समाधान वह न क
सके और इस प्रसग पर उसकी सारी सम्पत्ति अपने अधिकार मे ले ली जाये
भोजन का निमन्त्रण लेकर के मत्री सेठ के घर गया और भोजन के लि
राजमहल मे पधारने का आग्रह किया। सेठ बडा ही प्रसन्न हुआ और सभ
पारिवारिक जनो से कहने लगा कि "देखा तुम लोगो ने ! यह सब अपन
विपुल सपत्ति का ही प्रभाव है। पर छोटी पुत्रवधू तो उस समय भी गभीरत
को धारण किये बैठी रही। जबकि मन ही मन वह सारी बाते समझ रही थी
इधर सेठ मन ही मन मे अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ राजमह
मे पहुचा। राजा ने बहुत ही आदर सत्कार किया एव अपने बराबर आसन प
बैठाकर भोजन करवाया। सम्राट यह सभी कार्य ऊपरी मन से करवा रहा थ
पर भीतर ही भीतर तो वह अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लि
उत्सुक हो रहा था। भोजन से निवृत्त होने के बाद बातो ही बातो मे सम्रा
ने सेठ से कहा- 'सेठ सा आप तो बहुत बुद्धिमान हैं, तभी तो अपार वैभव
स्वामी हैं। मेरे मन मे जो प्रश्न उभर रहे हैं कोई भी उनका उत्तर नहीं दे सका
मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इनका उत्तर दे देगे, पर इसके साथ एक श
हे यदि आप उत्तर नही दे सके तो आपकी सारी सपत्ति राज्याधिकार मे
ली जायेगी। और यदि उत्तर दे देगे तो उपहार देकर बहुत मान-सम्मान दिय
जायेगा। सेठ अपनी प्रशसा सुनकर फूला नहीं समा रहा था। अति उत्सुकत
से पूछा-कोन से प्रश्न हैं ? आप जल्दी पूछिये में सुनने के लिये अतीव आतु
हू। तब महाराज दोनो प्रश्न सेठ से सामने रखते हुए कहने लगे बताओ-

1 निरन्तर समाप्त होने वाली वस्तु कोनसी हे ?

2. निरन्तर विस्तार प्राप्त करने वाली वस्तु कौनसी हे ?

इन दोनो प्रश्नो को सुनकर सेठ साहब ठडे पड गये। विचार करने लग
कि इन प्रश्नो का जवाब तो मुझे आता नहीं। मेंने अपनी जिन्दगी मे कभी एर
विचित्र प्रश्न नहीं सुने। अहो ! मुझे छोटी वहू की वात उस समय तो महत्त्वपू

नहा लगी पर अब समझ मे आ रही है। उसने मुझे बहुत उचित सलाह दी थी पर अब पश्चाताप करने का समय नही है। अभी भी अवसर हे, छोटी बहू बहुत बुद्धिमति हे समव वह इन प्रश्नो का उत्तर देने मे समर्थ हो जाये। अत उसी से क्यो न पूछ लू। ऐसा विचार कर सेठ ने महाराज से कहा कि 'राजन् ! आज बहुत गरिष्ठ भोजन खाने से मस्तिष्क भारी बना हुआ है। अत आप कृपा करके मुझे एक दिन की छुट्टी दे दीजिये। राजा ने उसे एक दिन की छुट्टी दे दी। छुट्टी लेकर सेठ साब घर पहुचे और घर के सभी सदस्यो के सामने सारी हकीकत रखते हुए छोटी बहू से अपने कृत–कार्य के लिये माफी मागकर कहा कि– बहू ! तुम तो बहुत बुद्धिशाली हो। तुम्हारी बात हमने नहीं मानी इसलिये आज यह भी सकट सामने उपस्थित हुआ हे। राजा के दोनो प्रश्नो का क्या कुछ समाधान है ? यह कार्य मेरी बुद्धि से परे हे। मुझे तुम्हारे ऊपर पूर्ण विश्वास ह कि तुम उन दोनो प्रश्नो का उत्तर देने म समर्थ हो सकती हो अत बहू तुम प्रश्नो का उत्तर देकर अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा करो। मेरी लाज रखो।

वह छोटी बहू जो सारी बात गभीरतापूर्वक सुन रही थी वह सेठ साहब को सात्वना देती हुई कहने लगी कि पिताजी ! आप कुछ भी चिता न कर। राजा को कहला दे कि आपके इन सामान्य प्रश्नो क उत्तर तो मेरी सबसे छोटी बहू भी दे सकती ह। और आप मुझे राज्य–दरबार म भेज दीजिये। मैं अपनी मर्यादा मे रहती हुई महाराज के इन दोनो प्रश्नों का उत्तर द दूगी। सेठ यह सुनकर अतीव प्रसन्न हुआ तथा महाराजा को कहलवा दिया कि आपके इन सामान्य प्रश्नो का उत्तर तो मेरी छोटी पुत्रवधू भी द सकती है। दूसरे दिन वह पुत्रवधू सादी–सीधी पोशाक म राज्य दरबार म एक घास का भारा व एक दूध का कटोरा लेकर पहुची। राजा ने पूछा कि आप यहा

दीवान की बुद्धि तो प्रजा हितैषी, व्यापक और विशाल होनी चाहिए। पर आप अपनी प्रजा के साथ ऐसा अन्याय करते हो, सम्राट को भी गलत मार्ग पर आगे बढा रहे हो। आपकी बुद्धि मे पशुता नही तो क्या है ? और जो पशु होता है, उसे खाने के लिये घास चाहिये। अत मैं आपके योग्य ही यह उपहार लाई हू। यह श्रवण कर मत्री और भी उत्तेजित हो गया, पर राजा ने उसे शात करते हुए उस पुत्रवधू से पूछा कि यह दूध का प्याला तुम किसलिये लाई हो ? तब पुत्रवधू ने कहा कि दूध का प्याला आपके लिये लाई हू ? कारण यहा के राजा अर्थात् आप नन्हे बालक के समान हैं। जैसा दीवान कहता है, वैसा ही कार्य करते हैं। अपनी बुद्धि से कोई काम नही करते हैं। यह श्रवण कर राजा स्वय बहुत शर्मिन्दा हुआ और गलती महसूस करने लगा और उसकी बुद्धिमत्ता से अत्यधिक प्रभावित होता हुआ अपने प्रश्नो का उत्तर जानने के लिये उत्सुक बना। जब उसे दोनो प्रश्नो का उत्तर देने के लिये कहा तो वह निर्मल बुद्धि सम्पन्ना पुत्रवधू कहती है कि राजन् !

1 आयुष्य एक ऐसा तत्त्व है जो निरन्तर अर्थात् क्षण–क्षण मे कुछ भी विलम्ब किये बिना समाप्त हो रहा है।

2 आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर है–निरन्तर विस्तार को प्राप्त करने वाली वस्तु तृष्णा है।

यह श्रवण कर राजा, दीवान और सारी राज परिषद् धन्य–धन्य का गुजार करती हुई, पुत्रवधू को शतश धन्यवाद समर्पित करती हुई, उसे बडे मान–सम्मानपूर्वक विदा करती है। दीवान, महाराजा से कहता है कि –"महाराज ! सेठ साहब के पुत्रवधू की कमाल की बुद्धि है। अपनी सारी योजना निरर्थक गयी। अब आप सेठ साहब की सम्पत्ति नहीं ले सकते हैं।" बन्धुओ, यह तो एक कथानक है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब भोतिक सम्पत्ति को प्रकट करने से इतनी विपत्ति आती हे तो आध्यात्मिक गुणो का बखान करने से केसे क्या होगा ? यह विचार करने की बात हे। अत बाहरी प्रदर्शन का लक्ष्य न रखते हुए अधिकाधिक आत्मानुष्ठान की पवित्र चर्याओ मे अपने आपको सलग्न बनाकर अपने भीतर म रहे हुए अनन्त–प्रकाश को उजागर करने म कटिबद्ध हो जाये। अपन जीवन की सारी प्रवृत्तिया विनय एव विवेक बुद्धि के साथ धर्ममय बनाय। आपका जीवन अवश्य मगलमय बनेगा।

आज क युग मे प्रदर्शन बहुत बढता जा रहा हे। उपधान तप के नाम से अनक प्रकार का आडम्बर बढाया जा रहा है। अत उपधान का स्वरूप

सही रूप से समझकर सम्यक् ज्ञान की वृद्धि के लिये विधिवत् तपानुष्ठान मे प्रवृत्ति करे।

बन्धुओ ! शास्त्र का अमृतोपम तात्त्विक ज्ञान श्रवण करते हुए ज्ञेय तत्त्वो की जानकारी प्राप्त करे। हेय तत्त्वों का अपने जीवन से विसर्जन करे तथा उपादेय तत्त्वो से अपनी आत्मा को सवारने मे प्रयत्नशील बने। कर्म निर्जरा का प्रमुख लक्ष्य रखते हुए सम्यक् तपानुष्ठान से अपनी आत्मा को अनन्त वीर्य सम्पन्न, अनन्त ज्ञान सम्पन्न बनाकर सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक लक्ष्मी का वरण करें। इसी मगल कामना के साथ।

गोटा उपाश्रय — 31 7 85

घाटकोपर बम्बई — बुधवार

दीवान की बुद्धि तो प्रजा हितैषी, व्यापक और विशाल होनी चाहिए। पर आप अपनी प्रजा के साथ ऐसा अन्याय करते हो, सम्राट को भी गलत मार्ग पर आगे बढा रहे हो। आपकी बुद्धि मे पशुता नही तो क्या है ? और जो पशु होता है, उसे खाने के लिये घास चाहिये। अत मैं आपके योग्य ही यह उपहार लाई हू। यह श्रवण कर मत्री और भी उत्तेजित हो गया, पर राजा ने उसे शात करते हुए उस पुत्रवधू से पूछा कि यह दूध का प्याला तुम किसलिये लाई हो ? तब पुत्रवधू ने कहा कि दूध का प्याला आपके लिये लाई हू ? कारण यहा के राजा अर्थात् आप नन्हे बालक के समान हैं। जैसा दीवान कहता है, वैसा ही कार्य करते हैं। अपनी बुद्धि से कोई काम नही करते हैं। यह श्रवण कर राजा स्वय बहुत शर्मिन्दा हुआ और गलती महसूस करने लगा और उसकी बुद्धिमत्ता से अत्यधिक प्रभावित होता हुआ अपने प्रश्नो का उत्तर जानने के लिये उत्सुक बना। जब उसे दोनो प्रश्नो का उत्तर देने के लिये कहा तो वह निर्मल बुद्धि सम्पन्ना पुत्रवधू कहती हे कि राजन् !

1 आयुष्य एक ऐसा तत्त्व है जो निरन्तर अर्थात् क्षण–क्षण मे कुछ भी विलम्ब किये बिना समाप्त हो रहा है।

2 आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर है–निरन्तर विस्तार को प्राप्त करने वाली वस्तु तृष्णा है।

यह श्रवण कर राजा, दीवान और सारी राज परिषद् धन्य–धन्य का गुजार करती हुई, पुत्रवधू को शतश धन्यवाद समर्पित करती हुई, उसे बडे मान–सम्मानपूर्वक विदा करती है। दीवान, महाराजा से कहता है कि –"महाराज ! सेठ साहब के पुत्रवधू की कमाल की बुद्धि है। अपनी सारी योजना निरर्थक गयी। अब आप सेठ साहब की सम्पत्ति नही ले सकते हें।' बन्धुओ, यह तो एक कथानक है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब भौतिक सम्पत्ति को प्रकट करने से इतनी विपत्ति आती हे तो आध्यात्मिक गुणो का बखान करने से केसे क्या होगा ? यह विचार करने की वात हे। अत वाहरी प्रदर्शन का लक्ष्य न रखते हुए अधिकाधिक आत्मानुष्ठान की पवित्र चर्याओ मे अपने आपको सलग्न बनाकर अपने भीतर मे रहे हुए अनन्त–प्रकाश को उजागर करने मे कटिबद्ध हो जाये। अपने जीवन की सारी प्रवृत्तिया विनय एव विवेक बुद्धि के साथ धर्ममय वनाये। आपका जीवन अवश्य मगलमय वनेगा।

आज क युग म प्रदर्शन वहुत वढता जा रहा हे। उपधान तप के नाम स अनक प्रकार का आडम्बर वढाया जा रहा है। अत उपधान का स्वरूप

सही रूप से समझकर सम्यक ज्ञान की वृद्धि के लिये चिंतन तथा मनन में प्रवृत्ति करें।

बन्धुओं ! शास्त्र का अमृतोपम तात्विक ज्ञान श्रवण करते हुए नव तत्त्वों की जानकारी प्राप्त करे। हेय तत्त्वो का अपने जीवन से विसर्जन करे तथा उपादेय तत्त्वों से अपनी आत्मा को सवारने मे प्रयत्नशील बने। कर्म निर्जरा का प्रमुख लक्ष्य रखते हुए सम्यक् तपानुष्ठान से अपनी आत्मा को अनन्त वीर्य सम्पन्न, अनन्त ज्ञान सम्पन्न बनाकर सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक लक्ष्मी का वरण करें। इसी मगल कामना के साथ।

मोटा उपाश्रय — 3.1.7.85

घाटकोपर, बम्बई — बुधवार

अनिह्नवाचार

(सम्यक् ज्ञान का पाचवा आचार)

इस ससार मे सबसे ऊचा और श्रेष्ठ अगर कोई तत्त्व है, तो आत्मा ही है। और वही परमात्मा के रूप मे प्रकट होती है, जिसे ईश्वर, भगवान्, सिद्धादि किसी भी नाम से कहा जा सकता है। वही अनन्त सुख की स्वामी है। मनुष्य ससार मे रहता हुआ, सुख की प्राप्ति हेतु ज्ञान प्राप्त करता है। विचारता है कि अमुक पुरुष मुझे शाति देगे, मैं उनकी शरण मे जाऊ। इस कल्पना को लेकर सासारिक मनुष्य ससार के कामो मे लगता है। आवश्यकता पडने पर राजा, महाराजा, सन्तो के चरणो की उपासना भी करता है, और चाहता है कि ये मुझ पर मेहरबान हो जाए, पर उस पुरुष को यह पता नही है कि जिसको मैं स्वामी बनाकर चल रहा हू वे स्वय दु ख मे डूबे हुए हैं, तो मुझे क्या शाति देगे।

सुना जाता है कि अमेरिका मे 127 मजिल की हवेली है। उसका मालिक 127वी मजिल पर रहता है, जहा नीचे के जमीन की गर्म हवा भी (अपेक्षा से) उसे न लग सके। उसके पास डाक्टर हर समय लगा रहता है, उसे यह भय हरदम बना रहता है, कि मेरी सम्पत्ति न लूट ली जाय, इस तरह उसकी स्वय की दशा क्या है ? आप उसको देखे या स्वय के भीतर अनुभव करे। जितनी–जितनी सम्पत्ति बढती है, उतनी–उतनी शाति मिलती है या अशाति बढती है ? स्पष्ट हो जाएगा कि भौतिकता की दृष्टि से शाति कम एव अशाति ही बढती है। अत भगवान् ही सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके बतलाये मार्ग पर समर्पित हो जाऊ, उनके ज्ञान मे तल्लीन बन जाऊ, इस भावना के अनुरूप जो जीवन बना लेता है, उसकी मनोकामना स्वत पूर्ण हो जाती है। उसका मन इतना शक्ति सम्पन्न बन जाता है कि मन मे सकल्प आते ही वह भावना

पूर्ण भी हो जाती है।

कामना हर सामान्य मनुष्य करता है, पर उसकी सभी भावना पूर्ण नही होती, किन्तु अध्यात्म पथ पथिक की हर भावना पूर्ण हो जाती है।

जाको राखे साईया, मारी सके न कोय।
बाल न बाका करि सके, जो जग बेरी होय।।

जो वीतराग उपदेश को जीवन मे ले लेता है और उस ज्ञान के अनुसार अपने जीवन को बना लेता है, उसके जीवन में फिर कोई कमी नही रह पाती है। कवि कहता है, भगवन, आपके ज्ञानलोचन को देख लेने से मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गए, अब मुझे कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

विमल जिन सिद्धा लोयण आज।
मारा सिद्धया वछित काज।

तीर्थंकर देवो का जो विमल स्वच्छ निर्मल ज्ञान है, उसकी उपासना आचार नियमो के साथ करे, जिससे वह एक रोज उन दिव्य नेत्रो को देखने में समर्थ हो सकता है, जो पुरुष ज्ञान की परिपूर्ण प्राप्ति के लिए एकनिष्ठ बन जाता है, अन्य विषय गौण कर देता है, बस एकमात्र परमात्मा के साक्षात्कार का ज्ञान किस प्रकार होवे इसमे तल्लीन बन जाता है उसे मनोवाछित प्राप्ति होती है।

आपने जम्बूकुमार की बात सुनी होगी। आठ देवागना तुल्य कन्याओं के साथ शादी की। शादी की रात्रि में ही उनको समझाने के लिए तत्पर हुए। पलग के चारो ओर आठो देवकन्यासम सौलह श्रृगार से सजधज कर वे राज–कन्यायें जम्बूकुमार को आकर्षित करने लगी, ऐसे समय मे व्यक्ति का मन अपने आप मे अकुश में रह सकना, बडी कठिन बात है पर सुधर्मा स्वामी के एक ही व्याख्यान से जो ज्ञान प्राप्त किया, उससे उनके ज्ञान चक्षु खुल गये कि 'मैं किस भूलभूलैया मे पडा हू, पूर्व जन्मो मे मैंने क्या नहीं किया होगा ? पर मुझे शाति नहीं मिली, आत्मा की तृषा नहीं मिटी, मेरे मनोरथ पूर्ण नहीं हुए। अब मुझे तो सिर्फ एक निष्ठा है ज्ञान की आराधना करनी है। इन स्त्रियो के जाल में नहीं उलझना है। ये मेरी आत्म तृप्ति को लूटने वाली हैं। अत वे एकनिष्ठ होकर उनकी एक–एक बात का उत्तर देने लगे।

उसी समय प्रभव चोर अपने 500 साथियो के साथ चोरी करने निकला। उसे अनेक विद्यायें सिद्ध थीं पर वे सब भौतिक थीं। सबको नींद मे सुला देने वाली और ताला तोडने वाली इन्हीं दो विद्याओ के माध्यम से वह

हवेली मे चोरी करने के लिए पहुचा। वहा दहेज मे आये हुए बहुमूल्य जवाहरात आदि की पोटलिया बधवाकर साथियो को आदेश देता है कि जल्दी से उठाओ इन पोटलियो को और चलो। अत्यन्त धीमे स्वर से कहने पर भी उसकी आवाज जम्बूकुमार ने सुन ली और सोचा कि यह सारा धन क्यो न ले जाय, मुझे दु ख नही है। मैं तो कल सुबह होते ही वैसे ही सब कुछ त्याग कर प्रव्रज्या अगीकार करूगा।

समुद्र कभी मर्यादा नही छोडता पर वह भी यदि छोड दे, सूर्य ठडक नहीं देता पर वह भी यदि ठडक देने लग जाय, यहा तक कि प्रकृति के सब नियम उल्टे हो जाय पर मेरा सकल्प टूट नही सकता। मैं निश्चय पर अटल हू परन्तु यह दुनिया तो दो रगी है। लोग तो कहेगे, दीक्षा लेने की भावना रखता था। दीक्षा की भावना तो ये आठो स्त्रियो भी उतार सकती थी, पर धन चला गया, इसलिये अब दीक्षा ले रहा है, इस लोकोपवाद से बचने के लिए आज रात्रि को धन की चोरी न हो। बस इतना–सा सकल्प किया और चोरो के हाथ पोटलियो पर चिपक गये। चोरो के सरदार प्रभव ने देखा कि मेरे ऊपर यह कौन आ गया। इधर–उधर देखा तो ऊपर प्रकाश नजर आया। वह वहा पहुचा और प्रथम क्षण मे ही आश्चर्य मे पड गया कि यह कोई देवलोक तो नही है। दूसरे ही क्षण वह सभला और देखा– यह देवलोक नही है। श्रेष्ठी का लडका जम्बूकुमार है और ये इसकी पत्निया हैं। मुझे इससे इसके पास की विद्या सीख लेनी चाहिए। यह सोचकर वह उन्हे नमन करता है ओर कहता हे 'आप जीते मैं हारा।' अपने आपसे सौदा करले, मेरे पास दो विद्या है, वह तुम सीख लो और पैर चिपकाने की विद्या मुझे सिखा दो। जम्बूकुमार ने कहा मुझे कोई सोदा नही करना है, मैं तो सब कुछ त्यागकर कल प्रात दीक्षा ग्रहण कर रहा हू। मुझे कोई विद्या आती नही है, मैंने तो मात्र सकल्प किया था कि "आज रात्रि मे सम्पत्ति की चोरी न हो"। यह सुनकर प्रभव विस्मित रह गया। उसने पूछा आपको यह सकल्प की दृढता कहा से मिली ? जम्बूकुमार ने कहा कि मैं तो वीतराग देव का परम उपासक हूँ। उनकी वाणी पर अगाध श्रद्धा रखता हू। इसी कारण उनकी श्रद्धा के फल स्वरूप आत्म बल की उपलब्धि हुई हे।

इस वात का प्रभाव यह पडा कि प्रभव अपने 500 साथियो के साथ जम्बूकुमार की अध्यात्म शक्ति–आत्म वल के आगे झुक गया, प्रतिबुद्ध हो गया। वीतराग वाणी पर उसकी अटूट श्रद्धा हो गई और जम्बूकुमार के साथ ही सुधर्मा स्वामी के चरणो में प्रव्रज्या (दीक्षा) अगीकार करली। सिर्फ एक

व्यक्ति के आत्मबल ने, दृढ सकल्प न सैकडो को प्रतिबाधित कर दिया।

सज्जनो ! विचार करिये और आप भी भगवान् के दिव्य स्वरुप को सामने रखकर चलने का प्रयास करे। एकनिष्ठ बन जाए तो सफलीभूत बन सकते हैं। जम्बूकुमार ने मात्र सकल्प किया जिससे उसका कार्य सफल बन गया। ऐसी आत्म–शक्ति प्राप्त करने के लिए वीतराग देव के बताये ज्ञान के आचारों का दिव्य स्वरूप समझना ह। पाचवा आचार अनिह्नवाचार अर्थात् जिससे ज्ञान प्राप्त किया है, उसके नाम को छिपाने की चेष्टा न करें। अध्यात्म का ज्ञान जिससे मिलता है, उसे भूलना नहीं चाहिये चाहे वह छोटा व्यक्ति हो चाहे बडा। गुरुजी ने ज्ञान दिया और चेलाजी आगे बढ गये गुरु से, पर वह सोचे कि मुझे ज्यादा हो गया है, अत गुरुजी का नाम किस तरह बताऊ ? इस तरह गुरु के नाम के गोपन से उसका वह प्राप्त ज्ञान भी विलुप्त हो जायेगा और जो उच्च स्थिति उसके जीवन मे है, वह नहीं रह पायेगी। इस बात को आप एक कथन के माध्यम से अच्छी तरह समझ सकते हैं।

एक नाई बडे शहर मे बाल साफ करने के लिये पहुचा। उसके पास विद्या थी जिसके प्रभाव से उसके साथ वह बक्सा आकाश मे चलता था। जहा हजामत करनी होती, वहा वह बैठ जाता और इशारा करने पर बक्सा नीचे आ जाता, जिसे देखकर लोग आश्चर्य चकित हो जाते। इस तरह उसकी आमदनी बढती गई। एक सन्यायी जिसने घरबार त्याग कर भगवे वस्त्र धारण कर लिये थे, वह सोचने लगा कि यह विद्या मुझे मिल जाय तो मैं निहाल हो जाऊ। जब नाई ने अपना कार्य निपटा कर मन्त्र विद्या से पेटी को आकाश मे रवाना किया और स्वय घर की ओर जा रहा था तब पीछे–पीछे सन्यासी भी चलने लगा। जब नाई के साथ वह सन्यासी उसके घर पर पहुचा और उसके पावों पर गिरकर प्रार्थना करने लगा कि आपने यह विद्या कहा से सीखी ? मुझे भी सिखाने की कृपा करे। आपका यह उपकार मैं कभी नहीं भलूगा, तब उस नाई ने कहा कि–मैंने तो यह विद्या एक सिद्धि प्राप्त महात्मा की कृपा से प्राप्त की है। यदि तुम्हारी भी सीखने की इच्छा हो तो तुमको भी सीखा सकता हू। इस प्रकार सरलतापूर्वक नाई ने सन्यासी को भी सिखा दी। विद्या सीखकर वह सोचने लगा कि जहा यह मैं विद्या का प्रयोग करूगा तो मेरी प्रसिद्धि नही होगी। वह दूर किसी शहर में चला गया और वहा मन्त्र के प्रयोग कमडल, मोर, पींछी, चिमटादि उपकरणो को आकाश

लोग यह चमत्कार देखते तो आश्चर्य मे पड जाते। प्रशसा करते कि यह तो कोई सिद्ध पुरुष है। राजा ने सुना तो मत्री से कहा कि मैं उस सिद्ध पुरुष के दर्शन करना चाहता हू। पर मत्री ने कहा कि यह चमत्कार नही है, कोई एकनिष्ठा से विद्या सिद्ध की है। पर जब राजा ने आग्रह किया ओर उसके दर्शन करने के लिए तरस बताई तो राजा से कहा—आप न पधारे। मैं भोजन के लिए उन्हे यही बुला लेता हू। ऐसा कहकर मत्री ने उस योगी को भोजन के लिए आमन्त्रण दिया। आमन्त्रण पाकर वह बडा प्रसन्न हुआ। खुशी—खुशी राजमहल आया। राजा ने भोजन का निवेदन किया और वह भोजन करने लगा। सम्मान से भोजन कराने के बाद राजा ने योगी को सम्मान के साथ बैठकर बातचीत की और पूछा कि यह विद्या आपने कहा से सीखी ? यह सुनकर वह सन्यासी विचार करने लगा कि मेरी आज इतनी प्रसिद्धि है, लोग जगह—जगह मेरे चमत्कार की प्रशसा कर रहे हैं, जब ये पुरुष मुझे सिद्ध पुरुष कह रहे हैं अगर मैं इनको बता दू कि मैंने यह विद्या एक नाई से प्राप्त की है तो ये लोग मेरी हसी उडायेगे और मेरी पोजीशन डाउन हो जाएगी तथा समाज मे मेरी कुछ भी इज्जत नही रहेगी। ऐसा सोचकर उसने कहा कि—किसी महात्मा के पास मैंने लम्बे समय तक कठिन साधना की। उस लम्बे समय की कठिन साधना के फलस्वरूप ही मुझे यह विद्या प्राप्त हुई है। उस सन्यासी का यह कहना था कि आकाश मे स्थित वे सारे उपकरण आकर धडाम से उसके सामने जमीन पर गिर गये। यह देखकर वह हतप्रभ रह गया। सोचने लगा कि अभी तक ऐसा नही हुआ फिर आज यह इस तरह यकायक क्यो हुआ ? गहराई से सोचने पर विचार आया कि अहो मैंने ज्ञानदाता गुरु के नाम का गोपन किया है, इसी कारण मेरी स्थिति आज यह बन गई है। उसे मन—ही—मन बहुत पश्चाताप हुआ। राजा ने जब उससे पूछा कि कहिये आपकी साधना कहा गयी, तब उसने पश्चाताप पूर्ण स्वर मे कहा कि जिसने मुझे विद्या सिखाई उसका नाम गोपन करके मैंने योगी का नाम लिया—इसी कारण मेरी सारी विद्या नष्ट हो गई। इसी तरह से आध्यात्मिक शिक्षा देने वाले हैं उनका नाम छिपाये नही। विचार करने की बात हे कि गुरु अनल्प उपकार करके वीतराग वाणी का ज्ञान देते हैं, अत उनके उपकार को विस्मृत करते हुए उनका नाम नही छिपाना चाहिये।

आज की स्थिति क्या बन रही हे, नवयुवक लोग ऊची—ऊची शिक्षा प्राप्त करके वडे—वडे ऑफिसर बन जाते हें, पर जब उनसे अपने पिताजी का नाम पूछा जाता हे तो अपने पिता का नाम बताने में भी शर्म महसूस करते

हैं, पर वह स्थिति उन्हे किसकी बदोलत मिली। इस तरह उपकारी के उपकार का गोपन करने से वे उच्च स्थिति मे नहीं पहुच सकते हैं। और पहुच भी गये तो ज्यादा समय तक स्थिर नही रह पायेगे। अत ज्ञान के आचारो को ध्यान मे रखते हुए पाचवा जो अनिह्वाचार है उसे यथाविधि से जीवन मे उतारना अति आवश्यक है। जो भी भव्य मुमुक्षु आत्मा ज्ञानाचारो का परिपालन वीतराग भगवान् के द्वारा बतलाई गई प्रक्रिया के अनुरूप करेगा वह अपना जीवन अवश्यमेव मगलप्रद अवस्था से आगे बढाने मे सुसफल बनेगा। इन्हीं शुभ भावनाओ के साथ।

मोटा उपाश्रय — 1 8 85

घाटकोपर, बम्बई — बृहस्पतिवार

व्यंजन-अर्थ-तदुभय

(सम्यक् ज्ञान का छठा, सातवा, आठवा आचार)

वीतराग देव की परम पाविनी वाणी का आस्वादन करने के लिये महाप्रभु का सस्मरण याद करना आवश्यक है। जो केवलज्ञान दर्शन से सम्पन्न तीर्थकर पद पर आसीन हुए, उपदेश दिया, वह कितना सरल और जीवन को सस्पर्श करने वाला है।

केवलज्ञान की अनुभूति से जो विचार करता है, वीतराग वाणी मे रत्नत्रय का उल्लेख है, उसमे सम्यक्ज्ञान का प्रथम उल्लेख मिलता है। प्रभु ने बताया–' पढम नाण तओ दया एव चिट्ठई सव्वसजए' और अपुट्ठ बागरणा मे उत्तराध्ययन सूत्र के 32 वे अध्याय मे "नाणस्स सव्वस्स पगासणाए" गाथा कही गई है, जिसमे बतलाया गया है कि ज्ञान को प्रगट करो तो आत्मप्रकाश जागृत होगा, राग–द्वेष दूर हटेगा।

जो अनाज है, उसमे ककर मिल जाते हैं, तो बहिने ध्यान से चुन–चुनकर उन्हे अलग–अलग कर देती हैं। इसी प्रकार दुनिया मे ज्ञान अज्ञान के अनेक शास्त्र हैं। उनमे वीतराग देव के सिद्धान्त को अपनी पैनी मति से खोजकर उसे प्राप्त कर तदनुसार गति करना, आत्मा के लिए सुखप्रदायक है।

ज्ञान प्राप्त करने के लिये मनुष्य को आठ बातो का अधिक से अधिक ख्याल रखकर पालन करना होता है। तभी सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। सम्यक्ज्ञान का छठा आचार **व्यजनचर** है, अर्थात् शब्दो का उच्चारण अच्छी तरह किया जाय। यदि उच्चारण शुद्ध नहीं हे तो ज्ञान का सरस आनन्द प्राप्त नही हो पाता। उसका अर्थ भी सही रूप मे समझ मे नही आ पाता।

मनुष्य मानस मे मनकल्पित योजना जमाले और उसके अनुसार । वाणी का पान करे तो यह उचित नहीं है, बल्कि अपनी मनकल्पित

योजनाओ को परे रखकर विचार करे कि वीतराग वाणी मे अनत ज्ञान है अनन्त पर्याय है पर मुझमे इतनी योग्यता नही कि उसका वर्णन कर सकू, वह तो यही सोचे कि मैं तो जितना अर्थ मेरी बुद्धि मे यथातथ्य रूप मे ग्रहण किया है, श्रद्धा के साथ मैं उसी को लेकर चल रहा हू और समभावपूर्वक उसी का प्रतिपादन कर रहा हू।

साधक के जीवन मे यदि विषमता है तब वह अर्थ करने बैठता है तो वीतराग वाणी का अर्थ सम्यक् न करके मनकल्पित कर लेगा, जो कि स्व और पर दोनो के लिए घातक होगा। ऐसा व्यक्ति भाव–भवान्तर तक भटकता रहता है। अत वीतराग वाणी को जो व्यक्ति बिना किसी शका आदि से उतारता है, जीवन मे तटस्थ भाव से परम श्रद्धा के शास्त्रो का उच्चारण अच्छी तरह से करता है, तो उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, विवरित, घोष, महाघोष आदि का ध्यान रखते हुए अर्थ का प्रतिपादन भी सम्यक प्रकार से कर सकता है। सम्यक्ज्ञान पाने के लिये कितनी प्रबल इच्छा होनी चाहिये। इसके लिए मैं आपको महापुरुषो के जीवन मे घटित उदाहरण प्रस्तुत कर देता हू।

पूर्व में आचार्य श्री अजरामर जी म सा हुए हैं। उनका जीवन तो चोपडी, पुस्तकों मे मिल जाएगा। अत मैं उनके जीवन को विस्तार से कहने की स्थिति मे नहीं हू, पर उनके जीवन का अध्ययन, जब मेरा सौराष्ट्र मे विचरण करने का प्रसग आया, तभी मुझे कुछ करने को मिला। उनके मन मे प्रान्तीय भावना नहीं थी। उनकी जिज्ञासा जबर्दस्त थी। आचार्य पद पर आरूढ होते हुए भी वीतराग वाणी का अर्थ ग्रहण करने में जो शब्द उच्चारण किये गये वे सही हैं या नहीं, इसकी जिज्ञासा बनी रहती थी। इसके लिए प्रमाण मिलता है कि सूरत मे उन्होने सूत्रसार पढा, अध्ययन किया पर उससे उनके हृदय में सतुष्टि नहीं हुई। क्योकि जिसके पास अध्ययन किया, उसका विचार–आचार वीतराग वाणी के अनुकूल नही था। स्वाभाविक है जो वीतराग वाणी के प्रति श्रद्धा नहीं रखता है, और मनकल्पित विचार दुनिया के सामने रखता है, तो उस पर श्रद्धा नही होती। यह तथ्य है, मनोवैज्ञानिक बात है।

एक बहुत बडा पडित है। उसका प्रभाव समाज पर उतना स्थायी नहीं पड़ता जितना कि एक साधक का पडता है। क्योंकि वह जीवन मे अनुभूति से उपलब्ध ज्ञान को लेकर चलता है। वह वाणी के अनुकूल आचरण करता हुआ सीधीसादी शैली मे उपदेश देता है, तो भी उसका ज्यादा प्रभाव पडता है।

जहा कही छोटे मोटे सुदूर ग्रामो मे सन्त अपनी मर्यादा मे रहते हुए नही पहुच पाते हैं, वहा श्रद्धानिष्ठ श्रावको का यह कर्त्तव्य हो जाता कि वे स्वय अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए अधिक नही तो कम से कम पर्युषण के आठ दिनो मे तो समय निकालकर वहा दया पाले एव वीतराग वाणी का सरल रीति से प्रतिपादन करे ताकि वीतराग देव के सिद्धान्तो का सम्यक् प्रचार हो सके। आज तो श्रावक प्राय आजीविका के लिये ही सारे समय लगे रहते हैं, पर जहा सन्त न पहुच सके वहा जाकर धर्म की प्रभावना करने की प्रवृत्ति बहुत कम दिखाई पडती है। आज लोग सोचते हैं कि साधुओ को अपनी मर्यादा छोडकर प्रचार करना चाहिये, पर यह मूल मे भूल है कि उन्हे साधु की मर्यादा का ख्याल रखते हुए प्रचार एव प्रसार का कार्य अपनी जिम्मेदारी पर लेना चाहिये। युगदृष्टा आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा ने भी यह स्पष्ट फरमाया था, कि आप साधु को, मर्यादा का उल्लघन न करावे, अपितु ब्रह्मचारियो का ऐसा वर्ग हो जो पर्युषणादि मे छोटे–छोटे गावो मे वीतराग वाणी का प्रचार कर सके, जहा कि सन्त समागम कम मिलता हो।

क्रान्तदृष्टा, ज्योतिर्धर आचार्य श्री के गहराइयो से अद्भूत चिन्तन का ही यह प्रभाव है कि आज स्थानकवासी समाज मे अनेक सस्थाए स्वाध्याय का प्रचार–प्रसार कर रही हैं। पर्युषणो मे भाईबहनो को वे सस्थाएँ धर्मप्रचारार्थ भेजने के लिए प्रयत्नशील हैं। यह आचार्यप्रवर के अनुभूतिपरक चिन्तन का ही परिणाम है। स्वाध्यायियो को वीतराग वाणी का प्रचार–प्रसार करते समय यह विशेष ध्यान रखना चाहिये कि किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर जिनवाणी से प्रतिकूल कथन कभी नही करना चाहिए। साथ ही जीवन मे त्याग प्रत्याख्यान भी करना चाहिये। आप देख रहे हैं– गुमानमल जी सा चौरडिया उपस्थित हैं, जिन्होने लगभग 38 वर्ष की अवस्था मे सजोडे शीलव्रत अगीकार किया हैं। चार वर्ष से एकान्तर चल रहा है और आठ द्रव्य प्रतिदिन रखते हैं। मन पर कट्रोल रखकर चल रहे हैं। भौतिकता से सम्पन्न होकर भी साधना पथ पर बढ रहे हें। यह अन्यो के लिये प्रेरणास्पद है। हा, तो मैं कह रहा था कि अजरामर जी म सा जब सूरत मे पढकर भी सतुष्ट नही हुये तब सूरत से तो वे लीम्बडी पहुचे, वहा के सघ से कहा कि मैं मारवाड जाने की इच्छा रखता हू। उन्होने पहले मजाक समझा पर दुबारा पूछा कि क्यो ? तो कहा कि पढने के लिये जाना चाहता हू। पूछा किसके पास पढोगे तो कहा कि आचार्य श्री दौलतरामजी म सा के पास। वे ~।रविच ् मे बहुत दृढ हैं, अत उनसे जो ज्ञान मुझे मिलेगा, वह अभूतपूर्व

होगा। सघ ने निवेदन किया कि आपश्री वहा पधारेगे और अकेले ही लाभ लेगे, हमारा सघ तो यो ही रह जायेगा। अत क्या ही अच्छा हो कि आचार्य श्री दौलतरामजी म सा को यहा पधारने की विनती की जाय। यदि हम इसमे सफल न हो सके तो आप मारवाड पधार जाए। सघ ने आचार्य श्री को विनती की। आचार्य प्रवर ने उनकी विनती स्वीकार कर जब अहमदाबाद पधार गये तो सघ का प्रतिनिधि जो साथ आ रहा था, उसने यह बात लिम्बडी जाकर सघ को सूचित की तो सघ ने खुश होकर उस व्यक्ति को लिम्बडी सघ की ओर से 1251 रुपये भेट मे दिये। उस समय उन लोगो मे यह भावना नहीं थी कि ये मारवाड के सन्त अपने गुजरात मे आकर हमारा प्रभाव कम कर देंगे। उस समय न तो कोई प्रान्तवाद था, न सम्प्रदायवाद। प्राय सभी सघ गुणग्राही थे। आचार्यप्रवर श्री दौलतरामजी म सा लिम्बडी पधारे। वीतराग वाणी का गहरा निचोड वहा के सघ को दिया ओर अजरामचार्यजी म सा को परम सतुष्टि प्रदान की। यह उनकी महानता थी। पर उस समय प्राय साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका रूप चतुविध सघ निर्ग्रन्थ –श्रमण–सस्कृति की सुरक्षा के लिये जागरूक था। अत उनमे गुजराती अथवा मारवाडी के प्रति जरा भी विरोधी भावना नहीं थी (होनी भी नहीं चाहिये)। मेरा आप लोगो से भी यही आह्वान है। निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की सुरक्षा के लिये अधिक से अधिक आत्मभोग दे, चाहे साधु हो या श्रावक। क्योंकि महाप्रभु ने साधु–साध्वी, श्रावक–श्राविका के लिये कोई प्रान्तीय भेद नहीं किया था। उन्होने स्पष्ट कहा कि साधु–साध्वी चाहे किसी भी प्रान्त मे हो, पर जो भाव से जागृत है वही सच्चा साधु है। जो भाव से सुप्त है वह साधु नहीं–

'सुत्ता अमुणी मुणिणो सया जागरति।।

जो श्रावक–श्राविका साधुओ की मर्यादा जानते हैं उन्हे पूरा ध्यान रखना चाहिये कि साधु मोटा भाई है और श्रावक छोटा भाई है। जब मोटा भाई आगे आगे चलता है तो छोटे भाई का कर्त्तव्य है कि उसका अनुकरण करे। जब श्रावक सामायिक पौषध करता है तो दो करण तीन योग से सावद्य कार्यो का त्याग करता है। तब सवत्सरी के दिवस पर माइक पर प्रतिक्रमण करें तो व्रत भग होता है और यह श्रमण सस्कृति का अपमान भी है। आपका क्या कर्त्तव्य है, विचार करे। निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति को सुरक्षित रखना है। माइक सभी दृष्टियो से अनुपादेय है। इस विषयक चर्चा फिलहाल अभी न करके प्रसग आने पर करने की भावना रखता हू। आचार्य श्री अजरामर जी

महाराज ने जहा गुजरात और सौराष्ट्र मे अमर क्रान्ति बुलन्द की थी, श्रमण सस्कृति की सुरक्षा के लिये जैसा कि वीरजी भाई ने कहा– आपका सघ भी बडा है, आप भी गहराई से विचार करे और इस सुरक्षा मे सक्रिय सहयोग दे। इस पुण्यतिथि पर आपको सहभागी बनना हो तो जहा–जहा हिसा का प्रसग हो, लाइट, माइक आदि का प्रसग हो वहा पर सामायिक–प्रतिक्रमण न करे। आज के दिवस पर क्रान्तिकारी कदम उठाते हुए यह प्रत्याख्यान अगीकृत करे। आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा की भी यह क्रान्तिभूमि है। जब आगमिक धरातल से भी क्रान्ति के एक–दो पगले उठते हैं, तो लोगो की उगलिया उस ओर भी उठ जाती हैं। अन्यथा भी कहने लगते हैं, पर भविष्य मे वे ही सभी उगलिया जुडकर वन्दन करने लग जाती हैं। धन्य–धन्य कहने लगते हैं लोग। और चल पडते हैं उसी राह पर। अत आगमिक धरातल पर, क्रान्ति के पथ पर अवश्य ही बढते जाना चाहिये। आप गुणग्राही दृष्टि रखे। अजरामर जी म सा के गुणो का अवलोकन करे एव उनके क्रान्तिकारी विचारो को ध्यान मे रखते हुए उन्होने जो राह बतायी है, उसकी सुरक्षा के लिए सजग बने, कटिबद्ध होवे। किसी भी प्रकार से मर्यादित रूप मे हमे निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की रक्षा करनी है। पूर्व पुरुषो की गुणावली को अपने हृदय मे उतारनी है, तभी जीवन मगलता की ओर प्रयाण कर सकेगा। ज्ञानाचार के पाचवे आचार सूत्र, अर्थ, तदुभय के लिए आदर्श रूप हैं अजरामर जी महाराज।

जो अर्थ का अनर्थ करता है उसका परिणाम कैसे क्या होता है, इसके लिए एक कथानक उपस्थिति कर देता हू।

यदि रास्ते मे कोई काच का टुकडा पडा है, तो जौहरी उसे उठाता नही पर अशुद्धि मे पडे अमूल्य हीरे के टुकडे उठाने मे वह कतराता भी नहीं। इसी प्रकार आप भी अपनी दृष्टि को गुणग्राही बनाये।

खीरकदम्बाचार्य के पास बहुत से विद्यार्थी बढने आते थे। पर मैं अभी नारद, पर्वत, वसु तीन विद्यार्थियो का ही उल्लेख कर रहा हू। वसु राजकुमार था। पढाई पूरी करने के बाद वसु राजा बना। वह जिस सिहासन पर बैठकर न्याय करता था वह आकाश मे अधर मे रहता था। लोग कहते थे कि यह सिहासन महाराज वसु की न्यायप्रियता की निशानी है। जिस दिन सम्राट वसु न्याय के बदले अन्याय का सहारा लेगे उस दिन यह सिहासन अधर मे नही रहेगा, अपितु जमीन पर आ जाएगा। सम्रट के न्याय की सुदूर प्रशसा फैली

हुई थी। एक बार पर्वत यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ मे अज शब्द आया। उन्होने बकरी अर्थ किया। तभी नारद भी घूमते–फिरते वहा पहुच गये। उन्होने कहा–तू गलत अर्थ कर रहा है। गुरुजी ने तो इसका अर्थ धान बताया पर पर्वत नहीं माना। दोनों विवाद मे उतर आये तब किसी ने सलाह दी कि राजा वसु के पास जाकर इसका न्याय कराना चाहिये। आपस मे शर्त कि जिसकी बात सही होगी उसे इनाम मिलेगा और जिसकी बात गलत होगी उसे मृत्युदण्ड मिलेगा। पर्वत की मा को जब यह ज्ञात हुआ तो सोचने लगी कि मेरा पुत्र गलत अर्थ बता रहा है। मैं जानती हू कि इसके गुरुजी ने अज का अर्थ पुराना धान बताया है। पर यदि यह मामला सम्राट के सामने चला गया तो वे तो बहुत न्यायप्रिय हैं। जब न्याय करेगे तो मेरे पुत्र की गलती साबित हो जाएगी और निश्चय ही उसे प्राणदण्ड मिलेगा। इस प्रकार सोचकर वह पुत्र की रक्षा के लिए सम्राट के पास जाकर चरणो मे सिर रखकर बोली कि पर्वत और नारद दोनों विवाद में पडे हैं। पर्वत गलत अर्थ बता रहा है। न जाने वह भूल गया है या स्वार्थ मे पडकर ऐसा कह रहा है और सारी बात बताकर दोनों के बीच हुई शर्त भी बतायी, तथा पुत्र के प्राण बचाने के लिये बहुत जोर दिया। सम्राट वसु ने उसे आश्वासन देकर विदा किया और स्वय सोच में पड गये कि अब किस प्रकार से न्याय करू। विचारो मे मन्थन चलने लगा। पर्वत उसका सहपाठी एव उसके अनल्प उपकारी गुरु का पुत्र है। गुरु पत्नी मा तुल्य होती है, और वह मेरे पास पुत्र के प्राणों की भीख लेकर आयी है। गुरु के अनत–अनत उपकारों से मैं कभी विस्मृत नहीं हो सकता अत विचार करने का समय नहीं है। जैसे भी हो मुझे न्याय पर्वत के पक्ष में ही देना होगा। ऐसा सोचकर वह न्याय सिहासन पर आसीन हो गया। दोनो मित्र पहुचे और न्याय मागा। वे सही बात जानते थे फिर भी उन्होंने नारद और पर्वत की अलग–अलग बात सुनी और सब कुछ जानते हुए भी निर्णय पर्वत के पक्ष मे दिया, अर्थात् अज का अर्थ बकरा ही बताया। उनके यह निर्णय देते ही वे सिहासन सहित जमीन पर आ गये। कथानक बहुत लम्बा चौडा है। विस्तार से कहने का समय नहीं, बस इतना अवश्य समझना है कि जब वैदिक सिद्धान्त मे भी गलत अर्थ करने पर ऐसा प्रसग उपस्थित होता है तो वीतराग सिद्धान्त का जो गलत अर्थ करता है तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उसका ससार बढ जाता है। अनत–अनत कर्मो का उर्जाजन कर लेता है। वही यदि सरल सरस रीति से वीतराग वाणी के अनुसार सिद्धान्त को समझाता है और कहता है कि जैसा मैंने वीतराग वाणी से पाया है वही मैं बता रहा हू। विशेष क्या कुछ है ये

तो ज्ञानी ही जाने। उनकी गहरी दृष्टि का अवलोकन करने की मुझमे पूर्ण क्षमता नही है। इस प्रकार से चलने वाला ज्ञान के पचम आचार का सम्यक्तया पालन कर साधना पथ पर आगे वढ जाता है। सभी को इसी विषय मे विचार करना है। अधिक से अधिक सरलता जीवन मे अपनाये। निर्ग्रन्थ श्रमण की सुरक्षा के लिये ही हर एक कार्य हो, हर प्रवृत्ति हो। वीतराग वाणी के अनुसार अपने जीवन को बनाये। वीतराग सिद्धान्तानुसार ही दूसरो को बताये, तभी जीवन की सार्थकता होगी। इससे दूसरो का तो उपकार करेगे ही साथ ही स्वय का जीवन भी वीतराग वाणी के अनुरूप आचरण से चमक उठेगा, और मगलमय दशा को प्राप्त हो जाएगा।

मोटा उपाश्रय 288

घाटकोपर, मुम्बई शुक्रवा